❖ विषय सूची ❖

क्रम सं.	प्रकरणों के नाम	पृष्ठ सं.
१.	अनुभूमिका	१
	'पुराना किरंतन'	
२.	वृथा कां निगमो रे	३७
३.	तमे जो जो रे मारा साध संघाती	९८
४.	हां रे मारा साध कुलीनां सांभलो	२४१
५.	हां रे मारा साध कुलीनां जो जो रे	३०७
६.	आवो अवसर केम भूलिए	३४४
	'भागवत का सार'	
७.	सुनियो साथ कहूं बिचार	३८०

✤ अनुभूमिका ✤

अहो! धाम के आत्मीय धामस्थ सुमन सुन्दरसाथजी एवम् मेरे प्यारे धर्मप्रचारक बन्धुओं!! हम लोग श्रीमन्निजानन्द सिद्धान्तानुयायी निजानन्दी प्रणामी समाज में अडिग रूपेण खड़े हैं। धर्मतत्त्व अत्यन्त ही निराला तत्त्व है। यसर्थ कहा भी गया है -

"धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्,
महाजनो येन गतः स पन्थाः"।

अतः हमारे धर्म सिद्धान्त के "महाजनो येन गतः स पन्थाः" में श्रीमन्निजानन्दाचार्य सद्‌गुरु श्री देवचन्द्रजी एवम् निष्कलंक बुद्धावतार महामति श्री प्राणनाथजी हैं। श्रीमन्निजानन्द सिद्धान्त "द्वे परार्धे अष्टा-विंशति कलौयुगे" में वेद, शास्त्र, पुराण प्रमाणवत् ब्रह्म लक्ष्य लेकर प्रकट हुआ है। यह सिद्धान्त सृष्टि मात्र के मानवात्माओं की आस्था पूर्ण करने में सक्षम और सबका आधारभूत है। इस बात की साक्षी के रूप में अकाट्यरूपेण चार सौ साल पूर्व ही हरिद्वार के कुम्भ के मेले में साबित हुई हैं। श्रीमन्निजानन्दाचार्य सद्‌गुरु श्री देवचन्द्रजी और निष्कलंक बुद्धावतार महामति

श्री प्राणनाथजी द्वारा प्रदत्त ज्ञानगर्भित श्री कुलजम स्वरूप साहेब-श्री तारतम सागर और श्री लालदास कृत आद्य बीतक साहेब श्री निजानन्दीय प्रणामी समाज के पथ-प्रदर्शक सारगर्भित ब्रह्म-लीलायुक्त ब्रह्मज्ञान ग्रंथ हैं।

अतः मैं यहाँ सार्वभौम रूपेण समाज एवम् वर्तमान धर्मप्रचारकों के समक्ष औकात पर[१] आकर असली बात प्रकट करने को स्वधर्म समझकर आगे बढ़ रहा हूँ क्योंकि सृष्टि के मूल आद्य वेद से लेकर साररूप ज्ञान-ग्रन्थ हुआ श्रीमद्भागवत महापुराण! जैसे -

वेद ने पुरान सास्त्र सब उपजे,
पीछे भारत परव अठार ।
दाझ न मिटी तिन व्यास की,
पीछे उदयो भागवत सार ॥

-(श्री किरंतन ग्रंथ, प्र. १३/चौ.२)।

उक्त श्रीमद्भागवत में वर्णित निम्नोक्त प्रमाण को निहारकर देखना और विचार-विवेक करना अत्यन्त जरूरी है। जैसे -

गोपिनां तत्पतीनां च
सर्वेषामेव देहिनाम् ।

१) असली बात प्रकट करना।

योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः
क्रीडने नेह देह भाक् ॥३६॥

अर्थ :- गोपियों के, उनके पतियों के और सम्पूर्ण शरीरधारियों के अन्तःकरणों में जो आत्मा रूप से विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वे ही तो अपना दिव्य-चिन्मय श्री विग्रह प्रकट करके यह ब्रह्मलीला कर रहे हैं। अतः क्यों कर रहे हैं? तो -

अनुग्रहाय भूतानां
मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीड़ा
याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥३७॥

-(भागवत, स्क.१०/अ.३३/३६,३७)।

अर्थ :- भगवान पूर्णब्रह्म सनातन स्वरूप जीवों पर कृपा करने के लिए ही अपने को मनुष्य रूप में प्रकट करते हैं और ऐसी ब्रह्मलीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर-मननकर जीव भगवत्-ब्रह्मपरायण हो जायें।

अतः संसार प्रसिद्ध त्यागी-वीतरागी अवधूत श्री शुकदेव मुनिजी कहते हैं - 'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्'- (भा. स्क.१०/अ.१४/३२)

सनातन पूर्णब्रह्म परमानन्द परमात्मा स्वरूप अक्षरातीत श्री कृष्ण की जो व्रज-रास नामक ब्रह्मलीला है, जिस रास लीला के प्रति रजोगुण ग्रस्त वैकुण्ठ राय परीक्षित द्वारा प्रश्न करने पर, उक्त ब्रह्मलीला के प्रति शंका-उपशंका करनेवाले परीक्षित को समझाते हुए स्पष्ट की गई बातों पर तो आप 'काष्ट भखी'[१] नामधारी विद्वान प्रचारकों को विश्वास है न? या नहीं? या इस विषय में भी आप 'गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास' तो नहीं हैं न ?

देखियेजी! बिना तारतमवाले श्री शुकदेव मुनिजी ब्रह्मलीला और ब्रह्म-स्वरूप को पहचानकर -समझकर परीक्षित को पहचान कराते हुए समझा रहे हैं। परन्तु तारतमवाले श्रीमन्निजानन्दी धर्मप्रचारक नामधारी विद्वान चर्मचक्षु, सुअर दृष्टि के परवश होकर स्वयं ब्रह्मलीला, ब्रह्मज्ञान एवम् ब्रह्म के स्वरूप को समझ नहीं पा रहे हैं। इससे बड़े कलंक की बात अन्य कोई हो सकती है? आश्चर्य! इनके नख से लेकर सिर तक शंका-उपशंका के सिवाय कुछ भी नहीं है। ऐसे 'काष्ट भखी'[१] जनों को श्रीमन्निजानन्दीय धर्म प्रचारक कहलाकर धर्म का दाना बरबाद करने पर किसने मजबूर

१) भगवत् - इष्ट विमुख, कर्मकाण्डी

किया? हाय रे हाय! शायद उन्हें उनके ही पेट ने मजबूर किया है, ऐसा प्रतीत हो रहा है, है न? धन्य-धन्य है, इन 'काष्ट भखी' जनों का जीवन!!

श्रीमद्भागवत के ज्ञान में से १) स्वर्ग के देवगुरु बृहस्पतिजी का अपने ही भाई की पत्नी ममता से जबरदस्ती नाजायज पुत्र भारद्वाज की उत्पत्ति २) चक्रवर्ती सम्राट राजा ययाति द्वारा हजार साल पर्यन्त की गई कामासक्त लीला और ३) चित्ररथ के पुत्र शशबिन्दु का दस हजार पत्नियों द्वारा कुल एक अरब सन्तान विस्तार आदि रजोगुण ग्रस्त लीलाओं को छोड़कर, त्याग-वैराग्ययुक्त, हिम्मतवर्धक चीरक भेष मार्ग का, पुनः बुद्धि जागृत हेतु उपयोगी सार-सतोगुणयुक्त ज्ञान को भी कुलजम स्वरूप साहेब - श्री तारतम सागर के किरंतन ग्रन्थ के अन्तिम में "पुराना किरंतन" नामक प्रकरण में रख दिया गया है। अतः जिन-जिन आत्माओं को ब्रह्मस्वरूप महामति श्री प्राणनाथजी के वचनों में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास है, उन्हें अब शुक-व्यासजी के ग्रन्थों की ओर जाने की कोई जरूरत नहीं है। उक्त स्वरूप के ज्ञान पर विश्वास न रखनेवालों की तो गतिविधि दूसरी

ही होती है। पुनः श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के ज्ञान में से ग्रहण करने योग्य ज्ञान को श्रीमद्तारतम सागर में श्री प्रकाश गुजराती और श्री प्रकाश हिन्दी - इन उभय ग्रन्थों में ''भागवत का सार'' नामक प्रकरण में रखकर ''बुद्धि जागृत को ज्ञान'' का आह्वान करते हुए निष्कलंक बुद्धावतार महामति श्री प्राणनाथजी स्वरूप ने श्री तारतम सागर- श्री कुलजम स्वरूप साहेब के अन्दर श्री परिक्रमा ग्रंथ के ''मंगलाचरण'' नामक प्रकरण में स्पष्ट कर कहा है कि -

''सास्त्र सबद मात्र जो बानी,
ताको कलस बानी सबदातीत''

अर्थात् श्री कुलजम स्वरूप साहेब-श्री तारतम सागर ग्रन्थ के अन्दर निहित ज्ञान आद्य वेदों से लेकर ''सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्र-सुनिश्चितः'' प्रमाणवत् ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' इति श्रुति - प्रमाणयुक्त स्वरूप के मुखारविन्द द्वारा प्रकट समस्त परोक्ष धर्मग्रन्थों का कलश और शिर मुकुटमणि है और ब्रह्म, ब्रह्मधाम एवम् ब्रह्मलीलायुक्त आत्मा-परमात्मा तत्त्व से परिपूर्ण है। उक्त स्वरूप निष्कलंक बुद्धावतार महामति श्री प्राणनाथजी

ने श्रीमन्निजानन्दी प्रणामी समाज को "बुद्धि जागृत" करनेवाले ज्ञान को हृदयाङ्गम करने के पश्चात् "आत्मा-जागृति" हेतु ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान में प्रवेश करने के लिए श्री प्रकाश हिन्दी ग्रन्थ में निम्नोक्त प्रकार से स्पष्ट कहा है। जैसे-

अब लीला हम जाहेर करें,
ज्यों सुख सैयां हिरदे धरें।
पीछे सुख होसी सबन,
पसरसी चौदे भवन ॥

-(श्री प्रकाश हिन्दी, प्र. ३७/चौ.१)।

अर्थात् अब मैं यहाँ अपने उस ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान को जाहिर करता हूँ, जिस ब्रह्मज्ञान में वर्णित ब्रह्मलीला को सर्वप्रथम ब्रह्मधाम की ब्रह्मात्माएँ अपनी लीला समझकर हृदय में धारण करेंगी। तत्पश्चात् यह लीला अन्यान्य सभी जीवात्माएँ ग्रहण करती जायेंगी। ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीला के माध्यम से इस ब्रह्माण्ड की तीनों सृष्टियों को सच्चिदानन्दमय अमरपद का सुख प्राप्त होगा। इस ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीला का विस्तार अब आगे फैलते-फैलते चौदह लोकों तक होगा।

अरे मेरे आत्मीय धर्मप्रचारक यारों-दोस्तों! उक्त चौपाई में वर्णित ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीला कौन-सी है, जिस ब्रह्मलीला के माध्यम से चौदह लोक की सर्वात्माओं को परमपद सच्चिदानन्दमय सुख की प्राप्ति होने की और इस ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीला का चौदह लोकों में प्रचार-प्रसार के माध्यम से विस्तार होने की भविष्यवाणी नहीं की गई है? पुनः यह भविष्यवाणी कहनेवाले स्वरूप कौन हैं? आप लोग इस ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञानयुक्त प्रत्यक्ष वाणी को समझे बिना द्वापर युग की परोक्ष वाणी श्रीमद्‌भागवत को लेकर श्री निजानन्द धर्म-सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार कर रहे हो या 'पढ़े सो भी पेट कारणे' - इस महावाक्य को सार्थक सिद्ध करते हुए जीवन गुजरान कर रहे हो? बोलो-बोलो, सीधा बोलो, दिल के भीतर का छल-कपट खोलो! अरे मेरे धाम के प्यारे दोस्तों! उक्त प्रकार का कर्म करते चल रहे हो, वह भी उक्त ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीला का प्रचार-प्रसार करना छोड़कर!! पुनः श्री कुलजम स्वरूप साहेब - श्री तारतम सागर और स्वधर्म सिद्धान्त के "महाजनो येन गतः स पन्थाः" उभय स्वरूपों के प्रति अँगुलियाँ उठाना[१] भी शुरू कर

१) बदनाम करना - अपकीर्ति फैलाना

दिया? उक्त स्वरूपों के सार्वभौमिक सैद्धान्तिक ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान के प्रति औन पौन करनेवाले[1], ऐड़ा-बैड़ा चलनेवाले[2] दुर्जन पाखण्डी मूढ़ाधिशों के अलावा दूसरे कोई हो सकते हैं? हरगिज़ नहीं न ?

अरे ... रे ... रे .....रे .....रे .....! हे मेरे आत्मीय प्रेमी धर्म-प्रचारक दोस्तों! वर्तमान धर्मप्रचारकों को अपने मस्तिष्क के निर्णयात्मक ज्ञान की आह्वानरूपी गर्जना भोले-भाले समाज के आगे करते हुए देखकर एक ओर मेरी अँतड़ियों में बल पड़ रहा है[3], तो दूसरी ओर वर्तमान धर्मप्रचारक श्री प्राणनाथजी और उनकी वाणी "श्री कुलजम स्वरूप साहेब-श्री तारतम सागर" में वर्णित ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान के प्रति अविश्वासरूपी अँगुलियों पर नाचने[4] में मजबूर हो गए हैं, ऐसा भी प्रतीत हो रहा है। अतः जिन्हें अपने इष्ट और ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीलाओं पर ही ठोस विश्वास नहीं है, हे मेरे प्राणप्यारे धामस्थ दोस्तों! "*संशयात्म विनश्यति*"- उन संशयशील आत्माओं का अवश्यमेव विनाश होनेवाला है क्योंकि

१) छल-कपट का व्यवहार करना
२) कुमार्ग पर चलना
३) हँसते-हँसते पेट में पीड़ा होना
४) वशीभूत होना

'विश्वास करके दौड़े जे, तारतम को फल सोई ले'-(प्रकाश हि. प्र.९/२०) एवम् 'विश्वासं फलदायकम्' - विश्वास ही साधकों को साध्य तत्त्वरूपी फल प्राप्त करानेवाला है।

उक्त प्रकार से यदि देखा जाय, तो वर्तमान श्रीमन्निजानन्दी सैद्धान्तिक नामधारी धर्मप्रचारकों पर तो निम्न चौपाई जैसे 'बीजा काष्ट भखीजन जे हेठां उतर्या, ते तां जल विना लेहेर पछटाए'-(किरंतन, प्र.६८/२३) ही खरी उतरती है। इन 'काष्ट भखी' दोस्तों के दिमाग में अभिमान-अहंकार के कारण कहूँ या चूहे का बच्चा बिल ही खोदता है[1]-इस मुहावरे द्वारा इंगित स्वपूर्वजों के अंकुर के प्रताप के कारण कहूँ? अहो! अथवा अपने ही इष्ट द्वारा प्रदत्त श्री तारतम सागररूपी ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्म-लीलाओं का रहस्य, वह भी हकीकत-मारफत दर्जे की समझ कहाँ से आये? इन 'काष्ट भखी' नामधारी धर्मप्रचारकों की दृष्टि और उनका जीवन तो निम्न 'सन्त वाणी' के अनुरूप ही है। जैसे -

चर्म चक्षु पावे नहीं,

रूह नैनन सों देख ।

१) किसी का जाति-स्वभाव नहीं छूटता

अजागलस्तनस्येव किया,
निरर्थक जन्म उल्लेख ।।

-(सन्त वाणी)

अर्थात् उक्त जनों की दृष्टि, तो चर्म चक्षु - सुअर दृष्टि और अजागलस्तनस्येव सदृश ही होती है। ऐसे 'काष्ट भखी' जनों को आत्मा-परमात्मा तत्त्व विषयक हकीकत-मारफत ब्रह्मज्ञान के रहस्य से कहाँ तात्पर्य है? उन्हें तो इसके बदले में इष्ट-लक्ष्य विमुख कर्मकाण्डरूपी विकारी ज्ञान ही सर्वस्व रूपेण कल्याणकारी दृष्टिगोचर होता है। है न, मेरे दोस्तों!

अतः उक्त बिचारे अब क्या करें, जब 'ब्रह्मज्ञान का सुख ताले लिख्या नहीं'। नसीब के हारे और परिस्थितियों के मारे इन बिचारों को उनके पूर्वजों का अंकुररूपी गुण ही परवश करके मार रहा है। उक्त गुण के परवश होकर मजबूरी में खींचे चले जाने के कारण ही इन नामधारी धर्मप्रचारकों की धर्म प्रचार-प्रसाररूपी मेहनत 'उदर निमितं बहुकृत वेषम्' सिद्ध हुई या नहीं? किंतु स्वपेट पालनार्थ तथा जीने के लिए नानारूप बदलने की जो आपकी निहित कला है, क्या वह आम जनता के समक्ष

प्रदर्शित नहीं होगी? कदाच ऐसा हुआ, तो आपकी दयनीय स्थिति देखकर आपके अन्य धर्मप्रचारक दोस्त कहेंगे - हाय रे हाय! मेरे प्यारे मित्रों!! धर्म सिद्धान्त प्रदत्त इष्ट 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' के प्रति किया गया आपका अहंकार-अभिमान कैसा निरर्थक सिद्ध हुआ? 'अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्' अर्थात् बकरी के गले के स्तन के समान व्यर्थ साबित नहीं हुआ ? बकरी के गले का स्तन न तो दूध देने का काम कर सकता है और न किसी अन्य ही काम का होता है। अतः आप स्वयं ''संशयात्म विनश्यति'' के अनुसार अपने ही संशयजन्य अविश्वास एवम् अभिमान के फलस्वरूप लोकप्रसिद्ध आत्मघाती महापापी सिद्ध नहीं हुए? ठण्डे दिमाग से अपनी ही आत्मा के लिए सोचिये जी!

मेरे स्वधामस्थ जन्म-जन्मान्तर के आत्मीय धर्मप्रचारकों! आप यदि आज के युगानुकूल गुण-ग्रस्त नहीं होते, तो शायद आपकी अक्ल इस तरह मारी नहीं जाती।[१] वर्तमान श्रीमन्निजानन्दी धर्मप्रचारकों का दिल-दिमाग शून्य-सा हो जाने के कारण ही राजा-प्रजा विषयक विवेचनात्मक ज्ञान लोप हुआ जा रहा

१) बुद्धि भ्रष्ट होना

है। इसका प्रतिफल क्या हो रहा है? अतः अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा[1] अर्थात् सत्य-असत्य की विवेचनात्मक एवम् सन्तुलनात्मक ज्ञान-शक्ति ही कपूर-सी हो गयी हो, ऐसा प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहा है। यदि धर्मप्रचारकों की उक्त-सी हालत नहीं होती, तो उनके अक्ल पर पत्थर[2] पड़ने से बच जाते और वे निष्कलंक बुद्धावतार महामति श्री प्राणनाथजी स्वरूप को और "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"-इति श्रुति प्रमाणयुक्त उक्त स्वरूप के श्री मुख से अवतरित ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीला से परिपूर्ण 'ब्रह्मवाणी' को जिस तरह समझकर हृदयाङ्गम करने का आदेश है, उसी प्रकार समझकर ग्रहण कर पाते। यदि धर्मप्रदत्त महाजनों के आदेशानुसार समझ सकने की क्षमता उनमें आती, तो क्या वे स्व-आत्मघाती बनते? अरे! हरगिज़ नहीं बनते। उक्त प्रकार से विचार-विवेकवत् समझने की शक्ति यदि उन्हें प्राप्त होती, तो इन 'काष्ट भखी' जनों के दिल-दिमाग ही बदल जाते और वे पुनः उक्त उभय विषयों के प्रति आकाश गंगा में नहाने[3]

१) जहाँ अव्यवस्था होती है, वहाँ भले-बुरे सब एक समान समझे जाते हैं। २) भले-बुरे का ज्ञान न होना। ३) असंभव को संभव करने की चेष्टा करना।

की चेष्टा करने से स्वतः ही डर जाते थे, है न?

हे मेरे आत्मा के अभिन्न यारों! जीवन भर स्वधर्म सैद्धान्तिक ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीलाओं का प्रचार-प्रसार करते–करते अन्त समय में शुभ कर्मफल प्राप्त करने के बदले में स्वधर्म सिद्धान्त विरुद्ध, स्वइष्ट विमुख परिणाम सामने आते ही जब सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुँह काला[१] होगा, तो सच्चे सैद्धान्तिक ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीलाओं के प्रचारक झूठे प्रचारकों के अलकतरा सदृश काले मुँह देखकर कैसे सहन कर सकेंगे? हाय रे हाय! अपने दोस्तों की ऐसी हालत देखकर वे अपने आपको कैसे सँभाल सकेंगे? उक्त कारणवश स्वधाम में दिये हुये वचन के प्रति कटिबद्ध होकर कहता हूँ कि-

मैं भूलों तो तूं मुझे, पलमें दीजे बताए।
तूं भूले तो मैं तुझे, देऊंगी तुरंत जगाए ।।

-(श्री मारफत सागर, प्र.१/चौ.६८)।

अरे यारों! उक्त वचनों के पालनार्थ कहता हूँ, न कि मैं अपने दोस्तों के बीच एक का एक खाये जाने का[२] धन्धा कर रहा हूँ। मेरे अतिप्यारे श्रीमन्निजानन्दीय धर्मप्रचारक यारों! मैं तो

१) सच्चा सर्वत्र पूजित होता है, झूठे का कोई विश्वास नहीं करता।
२) आपस में द्वेष करना।

दोनों ओर से बन्धन में पड़ गया हूँ। मैं क्या करूँ? अपनी आँखें बन्द कर चुप्पी साधकर बैठूँ, तो 'मौनं सम्मति लक्षणं' सिद्ध होता है। अतः एक ओर तो मेरा मौन धारण करना भी स्वगुरु-ज्ञान द्रोहियों के समर्थन का द्योतक होने के कारण इस प्रकार कलम पकड़ने पर मजबूर हो गया हूँ, तो दूसरी ओर अल खामोश नीम राजी[1] अर्थात् देखते-देखते जानते-जानते भी मौन रहना स्वीकृति का लक्षण है - यह मुहावरा मुझे झकझोर कर रहा है। मेरे 'आगे कूप तो पीछे खाड़' होने के कारण भी एक तो स्वधर्म, दूसरे अपने ही धाम के दोस्त समझकर कहता हूँ कि हे मेरे एकात्मीय यारों! हम लोग श्रीमन्नि-जानन्दी धर्मप्रचारकों के स्थान पर खड़े हैं। यसर्थ कलिकाल के छः गुणों जैसे अहंकार, अभिमान, मान, प्रतिष्ठा, ईर्ष्या और द्वेष सहित, 'अन्यस्य दोषगुण चिन्तनमासु त्यक्त्वा' अर्थात् अपने मान्य-पूज्य स्वरूपों के गुण-दोष चिन्तन करने की आदत शीघ्रातिशीघ्र परित्याग कर दो। अन्यथा 'स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः' अपने-आप को बुद्धिमान माननेवाले तथा स्वयं को निष्कलंक बुद्धावतार महामति श्री

१) मौन रहना स्वीकृति का लक्षण है।

प्राणनाथजी स्वरूप से भी उग्रमतिवाला विद्वान होने की हेकड़ी जताते हुए धाक जमानेवालों के पाखण्डपन की विडम्बना यथाशीघ्र ही समाज के समक्ष आने में देरी नहीं लगेगी।

हे मेरे जागनी ब्रह्माण्ड के धर्मप्रचारक यारों! कठोपनिषद् में शायद एक बात आज के कलिगुण ग्रस्त स्वधर्म सिद्धान्त च्युत कुमार्गी मूढ़ाधिशों को समझाने के लिए ही कहा है कि आत्मा-परमात्मा तत्त्व एवम् ब्रह्मलीला का रहस्यमय ज्ञान कोई साधारण बात नहीं है। जैसे-

'अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्'

पुनः

'हि अणुप्रमाणात् अणीयान् अतर्क्यम्'

अर्थात् यह अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु से भी अधिक सूक्ष्म है। यसर्थ तर्क से अतीत है। पुनः-

'नैषा तर्केण मतिरापनेया'

'एषा मतिः तर्केण न आपनेया'

-(कठोपनिषद्, वल्ली २/ श्लोक ८-९)।

अर्थ :- यह आत्मज्ञान रूपी बुद्धि तर्क से नहीं मिल सकती। अहम्जानामि - मैं जानता हूँ कि इसे तो ब्रह्मस्वरूप सद्गुरु के चरणों में श्रद्धा - विश्वास और प्रेम के माध्यम से पुनः

सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त करना होगा। तब 'माया गई पोताने घेर' अर्थात् माया दूर होगी और परमात्मा श्री राजजी दिल में प्रकट (विराजमान) होंगे। यसर्थ -

ते माटे तमे सुणजो साथ,
एक कहुं अनुपम वात ।
चरचा सुणजो दिन ने रात,
आपण ने त्रुठा प्राणनाथ।

-(श्री रास ग्रन्थ, प्र.२/चौ.१७)।

अर्थात् हे धामस्थ सुन्दरसाथजी! आप ध्यानपूर्वक सुनिये। मैं एक अनुपम बात कहता हूँ। आप दिन-रात धनीजी की चर्चा सुनें क्योंकि प्राणप्रियतम सद्गुरु धनी हम पर प्रसन्न होकर तारतम वाणी की वर्षा कर रहे हैं।

अतः हे मेरे धर्मप्रचार-प्रसार क्षेत्र के श्रीमन्निजानन्दीय धर्मप्रचारक सम्राटों! आप अपनी ही छाती पर हाथ रखकर निष्पक्ष रूप से सत्यवादी बनकर 'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।' अर्थात् सत्य बोलो! धर्माचरण करो!! प्रमाद रहित होकर विचार-विवेक करो। अरे बोलो .... बोलो .... बोलो न। उक्त चौपाई में रात-दिन श्री धनीजी की

चर्चा सुनने और मनन करने को कहा है। इस दुस्तर शक्तिशाली माया से उबरने-बचने के विषय में वह चर्चा उपमा से रहित अनुपम, सार में भी अतिश्रेष्ठ सार रूप है। अतः कौन-से धर्मग्रन्थ की चर्चा सुनने को कहा गया है रात-दिन? धनी सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी स्वरूप हमारे ऊपर जिस तारतम ज्ञान की वर्षा कर रहे हैं, वह किस ग्रन्थ का ज्ञान है? अरे महामति से भी उग्रमतिवाले प्रचारक दोस्तों! बोलो-बोलो, मुँह तो खोलो!! किस ग्रन्थ की ज्ञान-चर्चा सुनने और सुनाने को कहा है? बताओ न!

पुनश्च:

अब लीला हम जाहेर करें,
ज्यों सुख सैयां हिरदे धरें।
पीछे सुख होसी सबन,
पसरसी चौदे भवन ।।

-(श्री प्रकाश हिन्दी, प्र.३७/चौ.१)।

अर्थात् अब हम अखण्ड परमधाम के आनन्दमयी अकथ्य उस ब्रह्मलीला को प्रकट करते हैं, जिसका मन में स्मरण-चिन्तन करके सर्वप्रथम ब्रह्मात्माओं को निजघर का भूला हुआ सुख स्मरण में आ जायेगा। बाद में इस

ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान के परमसुख के मनन-चिन्तन के अनुभव द्वारा संसार के अन्य सभी जीवों को अमरपद के -आठ प्रकार के भिस्त के सच्चिदानन्दमय सुख प्राप्त होंगे। यह ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीला चौदह लोक में फैल जायेगी।

अब उक्त चौपाई के आधार पर हे मेरे धामस्थ धर्मप्रचारक यारों! यह तो स्पष्ट कर दो कि 'द्वै परार्धे अष्टाविंशति कलौयुगे' प्रमाणवत् 'अक्षरात्परतः परः' अक्षरातीत ब्रह्मस्वरूप को हरिद्वार के कुम्भ मेले में आम जनता के समक्ष विभिन्न मत-मतान्तरों ने 'विजियाभिनन्द बुद्ध निष्कलंकावतार'-'बुद्ध-कल्कि' अवतार घोषित किया था, इस बात पर तो आप लोगों को पूर्ण विश्वास है न? यदि उक्त विषय में पूर्ण विश्वास है, तो उन्हीं स्वरूप द्वारा प्रदत्त ब्रह्मलीलामय ब्रह्मवाणी को समाज के समक्ष रखने के बदले, उस सैद्धान्तिक ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मवाणी और ब्रह्म स्वरूप पर अँगुलियाँ उठाने से पहले आपको चुल्लू भर पानी में डूब मरना नहीं चाहिये था? बोलिये -बोलिये बकूवादी सम्राटों! हिम्मत करके दिल के छल-कपट खोलकर बोलिये। यह मौका आप हाथ से जाने मत दीजिये। इस

तरह आपको दूसरा कौन पूछेगा? आप तो महामतिजी से भी उग्रमतिवाले न ठहरे। आपको कौन कुछ कह सके और पूछ सके, है न? इस तरह कमर बाँधकर जवाब देने का और उन स्वरूप से भी उग्रमतिवाले विद्वान साबित होने का शुभातिशुभ अवसर आपको पुनः अकाट्य ही नहीं मिलेगा। आप तो महामतिजी से भी उग्र सामर्थ्यशाली हैं। बोलियेजी! चुल्लू भर पानी में डूबकर मरना चाहिये कि नहीं? अरे जवाब दीजियेजी! यह पीछे हटने का नहीं, कमर बाँधकर जवाब देने का मौका है।

अच्छाजी! अब उक्त चौपाई के आधार पर जवाब दीजिये कि सर्वप्रथम धामस्थ सैयाँ-ब्रह्मात्माएँ ही वे सुख लेंगी। तत्पश्चात् उस ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान के द्वारा क्षर पुरुष आदिनारायण सम्बन्धी स्वप्नवत् समस्त जीव सृष्टियों का अंकुर बदलाकर यह ब्रह्मज्ञान उन्हें अखण्ड भिस्त के सच्चिदानन्दमय सुखों को प्राप्त करायेगा। अतः वह कौन-सी लीला है तथा वह ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान कहाँ है? किनके मुखारविन्द से अवतरित हुआ है? किस ग्रन्थ में वर्णित ज्ञान को ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान कहा है? हे श्रीमन्निजानन्दी सैद्धान्तिक

धर्मप्रचारक सम्राटों! उक्त कथित ब्रह्म-लीलामय ब्रह्मज्ञान का प्रचार-प्रसार करने की जगह पर बैठकर आप क्या कर रहे हैं? सृष्टि मात्र की जीवात्माओं को पार लगाने में सक्षम ब्रह्ममंत्राधार ब्रह्मज्ञानमय लीला को छिपाकर तोता-थोथा ज्ञान क्यों बघार रहे हो? थोड़ी-सी शर्म तो रखो! 'पसरसी चौदे भवन' कौन लीलामय ज्ञान चौदह लोक में पहुँचाने एवम् फैलाने को कहा है? अतः निम्नोक्त प्रमाण निहारकर देखने का कष्ट करें। कहा है कि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'-इति श्रुति। अतः उक्त कथित स्वरूप की निष्पक्ष विराट दृष्टियुक्त सिद्धान्त में पक्षपात की गुञ्जाइश ही कहाँ है?

पुनः निम्नोक्त चौपाइयाँ देखते हुए विचार-विवेक करते-करते आगे बढ़ें, जिससे आप धर्मप्रचारकों की भी 'तस्मिन्दृष्टे परावरे' हो जाय। तब क्या होगा? अरे दोस्तों! होगा यह कि आप लोग भी महामति श्री प्राणनाथजी के विरोधी न होकर सहयोगी बन जायेंगे तथा सैद्धान्तिक ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान का ही प्रचार-प्रसार करने लगेंगे। तोता-थोथा ज्ञान बघारने का धन्धा छोड़ देंगे, नहीं? यसर्थ -

हवे जागी जुओ मारा साथजी,
ए छे आपण जोग ।
त्रण लीला चोथी घरतणी,
चारेनो एहमां भोग ।।
-(श्री कलश गुजराती, प्र.१२/चौ.१)।

हे धामस्थ स्वधर्म प्रेमी श्री सुन्दरसाथजी! अब आप सब तारतम ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा जागृत करके इस जागनी के सुख को विचार-विवेकवत् देखो! यह जागनी के ब्रह्माण्ड की लीलाओं के सुख सुहागिनियों के लिए ग्रहण करके अपनी-अपनी आत्मा जागृत करने योग्य हैं। तीनों लीलाओं-व्रज, रास तथा नवतनपुरी - जागनी के व्रज की ३४ साल की एवम् चौथी-श्री परमधाम के २५ पक्ष की लीला का सुख इस जागनी के ब्रह्माण्ड के जागनी रास की लीला में इस पञ्चभौतिक शरीर द्वारा अनुभव कर अपनी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी करके स्वधाम में उठना है।

अतः हे निजानन्दी धर्मप्रचारकों! उक्त चौपाई के माध्यम से महामति श्री प्राणनाथजी श्री कलश गुजराती ग्रंथ में गुजराती समाज को 'त्रण लीला चोथी घरतणी' द्वारा ब्रह्मलीलामय

ब्रह्मज्ञान का बोध प्रदान करते हुए कहते हैं कि ब्रज, रास एवम् नवतनपुरी की ३४ साल की लीलाओं में से ब्रज का सुख घोर नींद का था और रास का सुख स्वप्नवत् था, दोनों लीलाओं के दोनों प्रकार को समझो। श्री ५ नवतनपुरी के जागनी ब्रह्मांड का ब्रज-३४ साल की लीला का सुख तारतम ज्ञान सम्बन्धी था। परन्तु 'ए बन्धेज कियो अति उत्तम, पर धाम की निध सो कही तारतम' अर्थात् आड़ीका लीला के दौरान दैनिक दस सखियों सहित श्री राजजी का दिन में तीन-तीन बार दर्शन करने पर भी धाम दरवाजा नहीं खुला। कारण, यह प्रामाणिक बात है कि आँख धोखे में डाल देती है और कान धोखे से उबार लेता है। जैसे -

नाश्रमः कारणं मुक्तेः दर्शनानि न कारणम्।
तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ।।

-(गरूड़ पुराण)।

अर्थात् आश्रम धर्म से, कर्मरूपी धर्म से पुनः साक्षात् दर्शन से भी मुक्ति नहीं है, सिवाय ज्ञान के। इस बात की समझ-सहूर लेकर "तारतम को तारतम, अंग इन्द्रावती विस्तार" श्री कुलजम स्वरूप साहेब - श्री तारतम सागर के

ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान को समझे बिना "समझे बिना सुख पार को नाहीं" तुल्य है। उपरान्त 'चोथी घरतणी' श्री २५ पक्ष का ज्ञान ही श्रीमन्निजानन्द सैद्धान्तिक ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान है। यह अविकल्प सत्य बात है।

और भी -

अब जाग देखो सुख जागनी,
ए सुख सुहागिन जोग ।
तीन लीला चौथी घरकी,
इन चारों को यामें भोग।।
-(श्री कलश हिन्दी, प्र.२३/चौ.१)।

अर्थ - निष्कलंकबुद्धावतार महामति श्री प्राणनाथजी स्वरूप श्री कलश हिन्दी ग्रन्थ में हिन्दू समाज को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे धामस्थ प्यारे सुन्दरसाथजी! अब अपनी आत्मा को जागृत करके इस जागनी लीला के सुख को देखो और ग्रहण करो। ये सुखप्रद लीलाएँ तुम सुहागिनों के देखने और ग्रहण करने योग्य हैं। इनमें तीनों - व्रज, रास और नवतनपुरी (जागनी के व्रज की ३४ साल) की लीलाएँ हैं। पुनः चौथी लीला श्री परमधाम के २५ पक्षों में, की जानेवाली लीला है। उक्त चारों

लीलाओं के सुख का अनुभव जागनी के ब्रह्माण्ड के जागनी रास में इसी पञ्चभौतिक तन द्वारा विचार-विवेकवत् मनन-चिन्तन के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभव कर स्व-आत्मा जागृत कर निजधाम में उठना है।

अरे ..... रे .... रे ! हे मेरे धामस्थ एकात्मीय यारों! जिन लीलाओं और ज्ञान को आप लोग छिपा रहे हैं, ठुकरा रहे हैं, पुनः जिस पर अँगुलियाँ भी उठा रहे हैं, ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति''-इति श्रुति स्वरूप महामति श्री प्राणनाथजी ब्रह्म-लीलामय ब्रह्मज्ञान विषयक उन्हीं, 'त्रण लीला चोथी घर-तणी' अर्थात् चारों लीलाओं को एक बार श्री कलश गुजराती ग्रंथ में होते हुए भी पुनः श्री कलश हिन्दी ग्रंथ में 'तीन लीला चौथी घरकी' कहकर जोर देकर पकड़ा रहे हैं। अतः उक्त तीन लीलाएँ और धाम की चौथी लीला ही आत्मा-परमात्मा का मिलान कराने में सक्षम है, तो क्या इस ब्रह्म-लीलामय ब्रह्मज्ञान द्वारा ही सर्वात्माएँ ब्रह्म और ब्रह्मधाम प्राप्त नहीं कर सकती हैं? आप श्रीमन्निजानन्द सैद्धान्तिक ब्रह्मज्ञानमय ब्रह्मलीलाओं के प्रचारक होकर 'चोट्टी कुतिया जलेबियों की रखवाली'[१]-इस कहावत को

१) रखवाला ही यदि चोर हो, तो रखवाली कैसे हो सकती है?

साकार सिद्ध क्यों कर रहे हैं? उक्त ब्रह्म-लीलामय ब्रह्मज्ञान के बदले आप लोगों ने श्रीमद्भागवत में से पहली-स्वर्ग के गुरु बृहस्पति द्वारा भारद्वाज के उत्पत्ति की लीला, दूसरी-चक्रवर्ती सम्राट राजा ययाति के हजार साल की कामासक्त लीला और तीसरी - चित्ररथ के पुत्र शशबिन्दु के एक अरब सन्तान-विस्तार की लीलाओं को ही 'तीन लीला चौथी घरकी' तो नहीं मान लिया है न? यदि ऐसा ही हो, तो आप लोगों के लिए 'चौथी घरकी' लीला के बदले में संजमपुरी (जमपुरी) ही परमधाम नहीं होगा? तब तो आप लोग बड़े नसीबदार और महामति स्वरूप से भी अति उग्रमतिवाले कहलायेंगे क्योंकि महामति स्वरूप प्रदत्त परमधाम में तो २५ पक्ष ही हैं। आप लोगों के जमपुरीरूपी परमधाम में तो ८४ लाख योनीरूपी पक्ष हैं, है न? भले 'तुण्डे-तुण्डे मतिर्भिन्नम्' की तरह वास्तव में जितनी खोपड़ी, उतनी ही अलग-अलग मति। अतः इसे प्राकृतिक देन समझकर सन्तोष धारण करना पड़ता है। इस विषय में कोई क्या कर सकता है? अपना-अपना स्वाद!

पुनश्चः -

कह्या खुदाएने निसानी तेरी,
न सकेगा कहे हकीकत मेरी ।
मरदों से बात न होवे इन,
केहेनी तीन रात और चौथा दिन ।।

-(श्री बड़ा कयामतनामा, प्र.१४/चौ.२५)।

(सूचना - सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी और श्री राजजी के बीच हुए सम्वाद के दौरान सद्गुरु ने पूछा था। इसकी साक्षी कुरान धर्मग्रन्थ में है।)

अर्थ - सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी द्वारा पूछने पर जवाब देते हुए श्री राजजी ने कहा - तेरी बात सत्य है कि तेरे वंशज श्री बिहारीजी तारतम ज्ञान का प्रचार-प्रसार करके मेरे ज्ञान का यथार्थ बोध दुनिया को नहीं दे सकेंगे। इनसे तो मर्दों या ब्रह्मात्माओं को प्रबोध देने की बात बिलकुल नहीं बनेगी। हमें तो दुनिया में व्रज-रास अर्थात् लैल तुल कद्र की रात्रि को जागनी के ब्रह्माण्ड में परमधाम की श्रेष्ठांगनाओं - ब्रह्मात्माओं के लिये ही प्रकट करना है। उक्त ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान के माध्यम से ही सृष्टि के समस्त जीवों को भी सच्चिदानन्दमय अमरपदरूपी आठों भिस्त में कायम करना है।

यसर्थ हे मेरे जागनी ब्रह्माण्ड के नामधारी धर्मप्रचारक दोस्तों! आप लोग यदि कलिकाल-रूपी मायावी गुण अहंकार- अभिमानरूपी काले कुत्ते की अँगुलियों पर नाचने[१] से बच पाये हों, तो "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इति श्रुति कथन से प्रमाणित स्वरूप की अप्रतिहत असीम निष्पक्ष दृष्टि को आँखें फाड़कर देखिये और विचार-विवेक भी कीजिये। उनकी विराट-विशाल दृष्टि में ब्रह्मदृष्टि छिपी हुई है। वे स्वरूप हिन्दू-मुसलिम की संकुचित दृष्टि के घेरे में कैसे हो सकते हैं क्योंकि वे स्वरूप तो क्षर पुरुष-नारायणी सृष्टि की मानवात्माओं मात्र को ही नहीं, अपितु यावत् जड़-चेतन को गति-मुक्ति प्रदान करनेवाले स्वरूप हैं।

अतः उक्त कथित चौपाइयों के माध्यम से उनके कार्य-क्षेत्र को देखिये। वे श्री कलश गुजराती और हिन्दी ग्रन्थ की चौपाइयों द्वारा वेद पक्ष अथवा हिन्दू समाज की आत्माओं को 'तीन लीला चौथी घरकी' समझाते हुए पकड़ा रहे हैं। पुनः श्री बड़ा कयामतनामा ग्रन्थ की उक्त कथित चौपाई, 'केहेनी तीन रात और चौथा दिन' द्वारा कतेब पक्ष की मुसलिम रूहों को भी वही, 'तीन लीला चौथी घरकी'

१) वशीभूत होना

समझाते हुए पकड़ा रहे हैं। यही तो "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इति श्रुति-द्वारा इंगित स्वरूप की असीम विशाल ब्रह्मदृष्टि के लक्षण हैं।

अतः-

कुरान तफसीर जो हुसेनी,
बुजरक एह पेड़से केहेनी ।
मरद तीनों पर है मुदार,
जो कलाम अल्ला कहे सिरदार ।।

पुनश्च :-

'ए तीनों सूरत हैं एक,
सो रसूल तीनों सरूप बिसेक'
-(श्री बड़ा कयामतनामा, प्र.१२/चौ. १,२)।

अर्थ - कुरान की जो टीका या अनुवाद हुसैन साहेब ने किया है, उसे पहले से ही महान टीका के रूप में स्वीकारा गया है। वैसे भी कुरान की जिन आयतों में कयामत (जागनी) के समय के तीनों शक्तिशाली-तेजस्वी स्वरूपों को बड़ा माना गया है, वे ही कयामत का संदेश देनेवाली विशिष्ट आयतें (स्वरूप) मानी गयी हैं।

फिर भी -

वास्तव में मुहम्मद के बसरी, मलकी और हकी-

ये तीनों स्वरूप खुदाई आदेश के हैं और एक ही हैं। अतः

'पीउ पांच बेर हम वास्ते,

सागर में डास्या आप'

-(श्री प्रकाश हि, प्र.१७/९)।

अर्थ : मूल-मिलावेवाले धनी श्री राजजी के जोश ने संसार में हमारे लिए पाँच बार-व्रज के, रास के, अरब के तृतीय श्याम स्वरूप, सद्गुरु और महामति स्वरूपों में होकर पञ्चभौतिक तन धारण किया। मूल-मिलावेवाले श्री राजजी ने जागनी के ब्रह्माण्ड के कार्यकलाप का सारा मुद्दा भी इन तीन मर्द स्वरूपों पर ही सौंपा है। जैसे -

'मरद तीनों पर है मुदार'

पुनश्चः

'ए तीनों सूरत हैं एक,

सो रसूल तीनों सरूप बिसेक'

अतः उक्त तीनों स्वरूप - बसरी, मलकी और हकी में से बसरी स्वरूप 'रास खेल के आये बरारब स्याम' अर्थात् बरारब -अरबवाले तृतीय श्याम स्वरूप मुहम्मद साहेब हैं। मलकी स्वरूप

सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी हैं और हकी स्वरूप श्री मेहराज अर्थात् महामति श्री प्राणनाथजी हैं। इन तीनों स्वरूपों में से प्रथम-बसरी स्वरूप श्री मुहम्मद साहेब ने अक्षर परे अक्षरातीत-नूर परे नूर तजल्लाह में पहुँचकर खुदा और अर्श अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्मधामरूपी लक्ष्य सहित जुल्फेकार खुदा - ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट किया तथा भविष्य में कयामत के समय खुदा-ब्रह्म के ब्रह्मात्माओं के साथ नासूत-खेल में आने का संदेश उतारा। उनके द्वारा प्रदत्त लक्ष्य ही श्रीमन्निजानन्द सिद्धान्त का लक्ष्य-ब्रह्म और ब्रह्मधाम है। दूसरे - मलकी स्वरूप सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी तारतमरूपी कुंजी लाये। पुनः तीसरे-हकी स्वरूप निष्कलंक बुद्धावतार महामति श्री प्राणनाथजी ने दोनों पक्षों के धर्मग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट करके चौदह लोक ब्रह्माण्ड के नश्वर जीवों को भी अमरपद प्राप्त करा दिया।

यथार्थ ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान प्रदत्त करनेवाले श्रीमन्निजानन्द सैद्धान्तिक धर्म के महामति श्री प्राणनाथजी को वि. सं. १७३५ में ही हरिद्वार के कुम्भ मेले में विभिन्न मत-मतान्तरों के बीच सर्वधर्म सिद्धान्तवालों ने

उनके ज्ञान का समर्थन कर उन्हें 'विजियाभिनन्द बुद्ध निष्कलंकावतार' की उपाधि से सम्मानित किया था और उस समय उन्हें ब्रह्म-चबूतरे पर 'ब्रह्म स्वरूप' के स्थान पर रखकर नवखण्डों की समस्त आम जनता ने मिलकर नयी आरती के नाम से उनकी आरती उतारी थी।

तो फिर धर्म सिद्धान्त के सैद्धान्तिक ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगे वर्तमान श्रीमन्निजानन्दी प्रचारक अन्य धर्मवालों के समक्ष अपना धर्म-सिद्धान्त पेश करने में हिचकिचाते हुए काँप क्यों रहे हैं? पुनः यह भी कहते फिर रहे हैं कि 'श्री प्राणनाथजी की सभी चौपाइयों को आज के युग में लेकर चल पाना संभव नहीं है।' वाह रे वाह ! हे नामधारी धर्मप्रचारकों! यदि ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान का प्रचार-प्रसार संभव नहीं है, तो ब्रह्मात्माओं सहित अन्यान्य जीवात्माओं से क्या आप घास कटवायेंगे? या श्रीमद्भागवत की तीनों रजोगुणी लीलाओं का मनन-चिन्तन कराते हुए संजमपुरी के ८४ लाख पक्ष में फिरायेंगे? अरे नामधारी धर्मप्रचारक दोस्तों! मर्द स्वरूपों द्वारा प्रदत्त सर्वशास्त्र सम्मत सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने के

स्थान पर खड़े होकर आप सब डरपोक, पामर, नामर्द अथवा नपुंसक होने का कारण क्या है? कहीं यह सैद्धान्तिक श्री कुलजम स्वरूप साहेब - श्री तारतम सागर के ब्रह्मलीलामय ब्रह्मज्ञान और "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इति श्रुति प्रमाण से प्रमाणित स्वरूप के ज्ञान का मनन-चिन्तन छोड़कर उन्हीं स्वरूप पर अँगुलियाँ उठाने के अपने ही कृत कर्म का प्रतिफल तो नहीं है? यह तो आश्चर्यजनक एवम् विचारणीय प्रसंग है, नहीं?

हे वर्तमान श्रीमन्निजानन्दीय नामधारी प्रचारकों! अथवा मेरे प्रियातिप्रिय दोस्तों! यह जागनी रास नामक ब्रह्माण्ड है, जहाँ हमें 'तारतम का तारतम' प्राप्त है। यसर्थ हे मेरे आत्मीय धर्मप्रचारक दोस्तों! मैं तो सौ बात की एक ही बात कहता हूँ कि आप सब श्रीमन्निजा-नन्दी धर्म सिद्धान्त के प्रचारकों के स्थान पर खड़े होकर श्री प्राणनाथजी के समाज को धोखा देते हुए अपने धर्म सिद्धान्त को बेइज्जत करनेवाले 'क्लैब्यं मा स्म गमः' नामर्द-नपुंसक मत बनिए!! अतः हे मेरे धामस्थ प्यारे दोस्तों! बसरी, मलकी और हकी - इन तीनों मर्द स्वरूपों द्वारा दिया हुआ श्रीमन्निजानन्द सिद्धांत मर्द

सिद्धांत है। जिस सिद्धांत ने चौदह लोक के तीनों सृष्टिओं को मुक्ति देने का दावा लिया है। यसर्थ मर्द सिद्धांत के प्रचार हेतु मर्द होकर कटिबद्ध बनो और मर्द स्वरूप द्वारा प्रदत्त सिद्धांत को ही आगे लगाओ। यही सबको मुक्ति देनेवाला सिद्धांत है। यही मेरी आप लोगों के प्रति आंतरिक अभ्यर्थना है।

'सुज्ञेषु किं बहुना'-

-लेखक

दीनदयाल

नोट : अरे मेरे प्यारातिप्यारे श्रीमन्निजानन्दी धर्मप्रचारकों! 'श्री प्राणनाथ साहित्य' विषयक मेरे द्वारा लेखन-प्रकाशन में आये हुए जितने भी ग्रन्थादि हैं, वे सब मेरे धाम के 'पाछल साथ' पीछे आनेवाली आत्माओं के लिए हैं। 'श्री कुलजम स्वरूप साहेब - श्री तारतम सागर और मूल बीतक साहेब' के आधार पर मेरी समझ में कम-से-कम ८,००० से अधिक ब्रह्मात्माएँ संसार-सागर के पथभ्रष्ट नामधारी प्रचारकों के स्वार्थपूर्ण उलझन में फँसी हुई हैं। वे सब मेरा साहित्य देखकर विचार-विवेक जरूर करेंगी कि 'श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र' वाले ने

ऐसा क्यों लिखा? क्या कारण है? वे आत्माएँ कारण जरूर पता लगायेंगी और सही श्रीमन्निजानन्दीय सैद्धान्तिक धर्म-मार्ग पकड़कर स्वधाम में आयेंगी। इस आधार पर ही मैंने अपना सारा साहित्य प्रकाशित किया है। अतः वर्तमान कुपथगामी सम्राटों को इस विषय में सिर दर्द महसूस करने की जरूरत नहीं है!! मेरे द्वारा प्रकाशित जितने भी धर्म ग्रंथ हैं, हे मेरे सुन्दरसाथजी ! इन्हें पूजना नहीं, परंतु बार-बार पढ़ना है। इति-

-प्रणाम।

"पुराना किरंतन"

राग मारु

श्री किरंतन ग्रंथ में दर्ज 'पुराना किरंतन' अंतर्गत के प्रकरण सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी स्वरूप के समय में ही श्री मेहराज ठाकुर - श्री इन्द्रावती के मुखारविन्द से प्रकट हुए थे। जब पिता श्री केशव ठाकुर दोनों पुत्रों-श्री गोवर्धन ठाकुर और श्री मेहराज ठाकुर को श्यामजी के मंदिर में कथाकार कानजी भट्ट के पास सत्संग के लिए ले गए, तब धर्मयुद्ध में तारतम ज्ञानरूपी कवच द्वारा दोनों भाइयों ने एक ही प्रश्न द्वारा कथाकार कानजी भट्ट को परास्त कर दिया। तारतम ज्ञानरूपी कवच पहनकर दोनों भाई अब शेर की तरह चौड़ी छाती लेकर जामनगर स्थित कथाकारों के कथा-मण्डान में फिरने लगे। इस तरह फिरते - फिरते जब श्री मेहराज ठाकुर को अपने सद्गुरु के तारतम ज्ञान की महत्ता पर अविकल्प दृढ़ विश्वास हो गया, तब वे तारतम ज्ञान द्वारा ब्रह्म के नाम पर थोथा ज्ञान बघारनेवाले कथाकारों का मुखमर्दन करते फिरने लगे। श्री सद्गुरु द्वारा प्राप्त अक्षरातीत के लक्ष्ययुक्त ज्ञान द्वारा डंके की चोट पर सारे जामनगर के कथाकारों को माया, ब्रह्म, मंत्र,

लक्ष्य, सत, असत्, नाशवंत, अविनाशी आदि के प्रति कान पकड़ाकर ही छोड़ा। अतः 'पुराना किरंतन' के ये प्रकरण श्री मेहराज ठाकुर के इसी उन्नतशील अवधिकाल के दौरान प्रकट हुये हैं। इन प्रकरणों में *'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम्'* द्वारा ब्रह्मनाम - श्री कृष्ण, 'तीव्रेण भक्ति योगेन यजेत् पुरुषं परम्' द्वारा उत्तम पुरुष पूर्णब्रह्म श्री कृष्ण की भक्ति एवम् 'कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्' द्वारा मात्र 'कृष्णभक्ति', 'श्री कृष्णनाम संकीर्तन' द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, इस तरह अविकल्परूपेण निश्चितकर बताने-वाले श्रीमद्भागवत महापुराण का बातुनी - वास्तविक अर्थ लिये बिना जाहिरी अर्थ द्वारा भक्तों को कर्मकाण्ड में बाँधकर जमपुरी के मार्ग पर चलानेवाले बाह्याभिचारी आडम्बरयुक्त कथाकारों का परिचय कराया गया है। अस्तु-

।। वृथा कां निगमो रे ।।

वृथा कां निगमो रे,
पामी पदारथ चार ।
उतम मानखो खंड भरथनो,
श्रेष्ठ कुली सिरदार ।। १ ।।

भावार्थ :- श्री मेहराज ठाकुर सृष्टि की मानवात्माओं को संबोधित करते हुए कह रहे हैं, "हे बुद्धिजीवी नरात्माओं! श्रीमद्भागवत में वर्णन आता है कि सृष्टिकर्ता जब सृष्टि की रचना करते-करते गये और उन्हें संतोष नहीं हुआ, तब उन्होंने अपने ही अनुरूप तदोगत रूप और आकारयुक्त मनुष्य योनि की रचना की। तब कहीं जाकर उन्हें आत्मा में सन्तोष हुआ। ८४ लाख योनियों में से 'चतुर्लक्षाणि मानव' - ४ लाख मनुष्य योनि है। शेष ८० लाख योनियाँ अन्य जीवों की है। ये 'चतुर्लक्षाणि मानव' सृष्टि से पहले परमपिता परमात्मा के धाम में सुषुप्ति अवस्था में पड़े हुए थे। उनमें भी अन्य योनियों के जीवों की तरह सदसत् विचार-विवेक नहीं था। भूत-भविष्य-वर्तमान देखने का अथवा कर्म-अकर्म का भी ज्ञान नहीं था। परमपिता परमात्मा ने उन्हें बुद्धि देकर मूर्च्छावस्था से जागृत अवस्था प्रदान की। परमात्मा द्वारा प्राप्त सदसत् के विचार-विवेकशील बुद्धि होने के कारण ही इस मानव तन को ८४ लाख योनि के चक्कर से बाहर निकलने का द्वार-दरवाजा कहा गया है।

पुनः जागृत अवस्था युक्त मानव तन में

भी जीव अपने-आप नहीं पहुँच पाता। अन्य योनि में होते हुए उस जीव ने कभी गन्ना बनकर अपने मधुर रस द्वारा किसी को तृप्त किया, गौ बनकर गौरस द्वारा लोगों पर उपकार किया, तो कभी आम बनकर अमीरस द्वारा लोगों को शीतलता प्रदान की, तब यदि परमात्मा की दृष्टि उस जीव पर पड़ी और परमात्मा ने विचार किया कि बहुत कष्ट उठाकर यह जीव परोपकार द्वारा पुण्य कर्म संचित कर रहा है। अतः इसे मानव योनि में उत्पन्न कर एक अवसर प्रदान करें। इस तरह नजर में लेकर परमात्मा उस जीव को मानव योनि में चढ़ा देते हैं, विचार-विवेक प्रदान करते हैं। भूत को देखकर भविष्य सुधारने के लिए वर्तमान में जागृत अवस्थायुक्त मानव तन इस तरह कई जन्मों के संचित पुण्य कर्मों के आधार पर मिलता है। अतः ८० लाख योनि में भटकते-भटकते करोड़ों गुना कष्ट सहन करने के बाद प्राप्त हुए इस मानव तन को व्यर्थ क्यों गँवा रहे हो ? हे बुद्धिजीवी आत्माओं!

इस मानव तन में आने के बाद मनुष्य को शास्त्रों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - ये चार पदार्थ प्राप्त होते हैं, जिनमें से धर्म, अर्थ और काम ये तीनों तो साधन हैं और मात्र संसार

में रहते हुए काम में आनेवाले दृष्टान्तरूप पदार्थ हैं। एक मात्र मोक्ष ही परमात्मा के धाम में पहुँचानेवाला तत्त्व है। किंतु वह भी साधन ही सिद्ध हुआ क्योंकि मोक्ष तो अखण्ड मुक्ति को कहा जाता है। अतः सम्पूर्ण शास्त्रों का चिन्तन एवम् अवगाहन कर मानव सृष्टि की इस कमी को पूरा करने के लिए अखण्ड मुक्ति प्राप्त करानेवाले सिद्धान्त रूप चार नये पदार्थ लेकर बुद्ध-कल्कि अवतार स्वरूप सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी और महामति श्री प्राणनाथजी आये। इन दोनों स्वरूपों ने सृष्टि के मानव मात्र को दृष्टान्तरूप चार पदार्थ छुड़ाकर सिद्धान्तरूपी चार नये पदार्थ पकड़ाये। अतः ये चार नए पदार्थ कौन-कौन से हैं? *'उतम मानखो खंड भरथनो, श्रेष्ठ कुली सिरदार'*।

८४ लाख योनियों में से ८० लाख योनि के जीव मूर्च्छावस्था में हैं। अन्य ४ लाख मनुष्य योनि, जो जागृत अवस्थायुक्त कहलाते हैं क्योंकि उनमें सदसत् विचार-विवेकयुक्त बुद्धि है तथा वे भूत, भविष्य और वर्तमान - तीनों कालों का ज्ञान लेकर चलनेवाले हैं। ऐसे १)उत्तम मानव योनि को प्राप्त करना, पुनः वह मानव तन भी कहाँ का? चौदह लोकों में से

सात पाताल लोक नीचे और छः स्वर्ग लोक ऊपर, दोनों के मध्य में स्थित मर्त्यलोक, उसके भी मध्य में स्थित जम्बू द्वीप और जम्बू द्वीप के भी नव खण्डों में से २) उत्तमातिउत्तम भरतजी का खण्ड, जिसका गुणगान स्वर्गादि लोकों के देवी-देवता भी जैसे-**'गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।'** इस प्रकार गाते हैं और जहाँ थोड़ा भक्तिरूपी पुण्य करने पर भी उसका करोड़ों गुना फल प्राप्त होता है। ऐसे भरतखण्ड का अमूल्य मानव तन, उसमें भी भविष्यवक्ताओं द्वारा भविष्य बताते समय सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में से भी पापाचार, व्यभिचार, दुराचार और भ्रष्टाचार का कई गुना विस्तारवाला कलियुग। पुनः कलियुग तो कई होते गए, किंतु **'द्वे परार्धे अष्टाविंशति कलौयुगे'** अर्थात् भविष्य-वक्ताओं ने दूसरे परार्ध के जिस ३) २८वें कलियुग के जन्म, को श्रेष्ठ बताते हुए इंगित करके कहा कि - इसी २८ वें कलियुग में अवतार रूप में स्वयं ब्रह्म आकर सृष्टि के मानव मात्र के तरण-तारण का द्वार खोलकर उन्हें गति-मुक्ति प्रदान करेंगे। अतः इस २८वें कलियुग को परमात्मा के चरण प्राप्त करानेवाला युग

कहा गया है। ऐसे श्रेष्ठ कलियुग में प्राप्त जन्म, पुनः उक्त तीनों पदार्थों को सार्थक बनानेवाला तथा अक्षरातीत अखण्ड ब्रह्मधाम से संपूर्ण मानवात्मा को अक्षरातीत लक्ष्ययुक्त मार्ग पर अनन्य परा दशधा प्रेमलक्षणा भक्तिरूपी साधन द्वारा चलाकर ४) अखण्ड मुक्ति प्राप्त करानेवाला तारतम ज्ञान, इस तारतम ज्ञान को देनेवाले अग्रगण्य सिरदार स्वरूप सद्गुरु-निजानन्दाचार्य श्री देवचन्द्रजी अर्थात् तारे रूप स्वर्ग-वैकुण्ठ के देवी-देवताओं को भी अक्षरातीत लक्ष्यरूपी प्रकाश देनेवाले चन्द्र स्वरूप सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी को प्राप्त करके भी इस मानव तन को व्यर्थ क्यों गँवा रहे हो?

सेठे तमने सारी सनंधे,
सोंप्युं छे धन सार।
अनेक जवेर जतन करी,
तमे लाव्या छो आणीवार॥ २॥

भावार्थ :- अपने ही अनुरूप अपनी आकृतिवाले अन्य योनियों से न्यारे मानव योनि की रचना कर, जब सेठ - सृष्टिकर्ता परमात्मा को सन्तोष हुआ, तब अपनी जिज्ञासा से अच्छी

प्रकार से उत्पन्न 'चतुर्लक्षाणि मानव' मात्र को विचार-विवेकरूपी तराजू के साथ सुषुप्ति अवस्था से जागृत अवस्था में परिणत कर उक्त चार पदार्थयुक्त मानव तन में सत् का व्यापार करने के लिए भेज दिया। विचार-विवेकरूपी तराजू के साथ हमारे मालिक ने हमें साररूप धन अर्थात् सात्विक गुण जैसे - प्रेम, विश्वास, ज्ञान, भक्ति, वैराग्यरूपी धन-रत्न देकर व्यापार द्वारा उक्त मूल धन में वृद्धि करके धाम में आने के लिए भेजा है। पुनः तुम्हें इस बार का मानव तन तथा उक्त नये चार पदार्थ का अधिकार ऐसे ही नहीं मिल गया है। ८० लाख योनि में होते समय, जो कर्म किया, जैसे - गाय होकर कितनों को अपना दूध पिलाया, ईख बनकर रस पिलाया आदि ऐसे सञ्चित पुण्य जवेर हैं। इस सञ्चित पुण्यरूपी जवेरों का जतन-एकत्रित करके ही तुम विचार-विवेकरहित मूर्छित अवस्था से सद्सत विचार-विवेकयुक्त जागृत अवस्था में मालिक-परमात्मा के हुकम से पहुँचे हो। अतः तुम अपने सञ्चित पुण्यरूपी जवेरों का फलरूपी मानव तन लेकर ही इस बार संसाररूपी बाजार में आये हो।

सत वोहोरीने सत ग्रेहेजो,
राखजो रूडी प्रकार।

आणी भोमे रखे भूलतां,
पछे सेठ तणो वेहेवार ।। ३ ।।

भावार्थ :- हे जिज्ञासु व्यापारी आत्माओं! इस बार हमें जो मानव तन प्राप्त हुआ है, उस तन में जीवात्मा के सेठ-मालिक परमपिता परमात्मा ने हमें विचार-विवेकरूपी तराजू भी दिया है। सेठ द्वारा प्राप्त इस विचार-विवेक तराजूरूपी साधन द्वारा इस संसाररूपी बाजार में से सच्चे वस्तु की पहचान करो। विचार-विवेकद्वारा तोल-मोलकर ठहराओ कि जिस वस्तु-मंत्र की तुम लोग खरीदी कर रहे हो, वह सत्य परमात्मा के नामयुक्त चिंतामणिरूपी मंत्र ही है न ? या कहीं सत के नाम पर मृगजल सदृश सत का भास मात्र तो नहीं है न? इस तरह गुण, अंग, इन्द्रियों द्वारा ज्ञान के आधार पर ठहराने के पश्चात् उस सत-परमात्मा के नामरूपी वस्तु-मंत्र को खरीदकर अन्तःकरण में दृढ़ता के साथ ग्रहण करना। पुनः उक्त चिन्तामणि रूपी धन को अन्तःकरण में अच्छे प्रकार से जतन करके रखना । यह मानव योनिरूपी भोम हमें व्यर्थ गँवाने के लिए नहीं मिली है। यसर्थ इस संसाररूपी बाजार में सत और असत् के प्रति विचार-विवेक करके "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"-"नेहनानाऽस्ति

किञ्चन'' सत्य परमात्मा का ही नाम सत्य है, उसके अलावा सब असत्य है तथा उनका ही धाम अखण्ड और त्रिकाल अविचल है, इस तरह गहन छान-बीन द्वारा अकाट्य-रूपेण ठहराकर उन चिन्तामणिरूपी परमात्मा नामरूपी धन को अपने मन-मन्दिररूपी अन्तःकरण में प्रेम से रीझाकर-जतन करके रखना। रात-दिन, श्वास-श्वास उनके मनन-चिन्तन में लगाना। पुनः एक बात ध्यान में रखना कि जिस पंचविषययुक्त नश्वर, क्षणिक सुखदायी बाजार में तुम लोग व्यापार करने आये हो, वह देखने में तो सुखदायी और रसयुक्त लगता है। किन्तु बड़ा ही निरस एवम् दुःखदायी है। इस मानव तन में आकर पंचविषययुक्त इन्द्रिय सुख भोगने में जो सुख का अनुभव होता है, वह इन्द्रियजन्य सुख ही भूलन है। अतः इस मानव तनरूपी भोम में आकर इन्द्रियजन्य सुख के प्रति लालायित होकर भूलना-चूकना नहीं। इस जगन्नाटक-रूपी बाजार में ही हीरारूपी सत ब्रह्म और काँचरूपी विषयजन्य स्वाद में भूलानेवाले असत् ब्रह्म - दोनों का व्यापार होता है। इन्द्रियजन्य सुखरूपी नकली चमक के प्रति आकर्षित होकर हीरे के स्थान पर काँच खरीदने

की भूल मत करना। इस मानवतनरूपी भोम में आकर यदि ऐसी भूल की, तो पीछे यह तन छोड़ने के बाद परमपिता परमात्मा के प्रतिनिधि स्वरूप सेठ-यमराज के साथ पाप-पुण्य का लेखा-जोखा देने का व्यवहार करना पड़ेगा। उसके आगे तो जिस श्वास में इस बाजार में कदम रखा, वहाँ से लेकर बाजार छोड़ते अंतिम श्वास तक का हिसाब रखना पड़ेगा। अतः व्यापार करते समय लापरवाही - भूल के कारण प्रेम, विश्वास, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य रूपी मूल धन को असत् में लगाकर असत् की खरीदी की, तो सेठ के साथ व्यापार करते समय पछताना पड़ेगा।

अनेक वार तरफडी मरीने,
दुख देखी आव्या छो पार ।
लाख चोरासी भमीने आव्या,
आंहीं मध देस वेपार ।। ४ ।।

भावार्थ :- यह तन धारण करने से पहले अन्य ८० लाख योनियों में जन्म लेते-मरते, जठराग्नि की पीड़ा में तड़पते-तड़पते तुमने अनेकों बार चक्कर काटे हैं। मूर्च्छावस्था योनियों में जन्म ले-ले कर एक-दूसरे की खुराक बनकर ९-९ योनि में कइयों बार भ्रमण करते

हुए 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणम्' रूपी असहनीय ताप को सहन करके अंत में परमपिता परमात्मा की दया-कृपा से मानव तन को प्राप्त हुए हो। यह मानव तन ही ८४ के चक्कर को उलंघ कर बेहद से भी परे परमात्मा के अखण्ड धाम में जाने का मूल दरवाजा है। अतः ८४ के चक्कर में फिरते-फिरते १४ लोकों में उत्तम तथा ६ स्वर्ग और ७ पाताल में से बीच के मर्त्यलोक, उसके भी मध्य में स्थित जम्बू द्वीप, जम्बू द्वीप के भी मध्य में स्थित उत्तम भरतखण्ड के बीच सत-असत् मिश्रित जगन्नाटकरूपी बाजार में परमात्मा के नामरूपी सत वस्तु का व्यापार करने तुम लोग आये हो। यसर्थ भूतकाल के दुःख को देखकर वर्तमान में प्राप्त मानव तन में परमात्मा द्वारा दिए हुए मूल धन द्वारा सत का व्यापार करो तथा मूल धन में वृद्धि करके भविष्य सुधारने का कर्म करो।

हाट पीठ रलियामणां,
चोटा चोरासी बजार।
मन चितवी वस्त आंहीं मले,
पण खरा जोइए खरीददार॥ ५ ॥

भावार्थ :- इस बाजार में तो विचार-विवेकवत् व्यापार करने की जरूरत है क्योंकि यह बाजार तो बड़ा भारी विस्तारवाला है। इस मायावी असत्, जड़, दुःखरूपी बाजार में हाट-छोटे-छोटे बाजार लगानेवाले अर्थात् स्वामी नारायण संप्रदाय, राधा वल्लभी, कापड़ी कलंदर आदि तथा पीठ-बड़े-बड़े बाजार लगानेवाले अर्थात् विशेष करके चार सम्प्रदायों का प्रचार-प्रसार करनेवाले कर्मकाण्डी आचार्य तथा महन्तजन अपने-अपने धर्म-पद्धतिरूपी दुकान को सुन्दर आकर्षणयुक्त बाहरी चमक-दमक तथा मन को मोहित कर भूला देनेवाली चकाचौंध रोशनी से सजाकर बैठे हैं। इस तरह एक ओर ब्रह्म के नाम पर नकली चमकयुक्त अब्रह्म एवम् कर्मकाण्ड का बाजार लगाकर विभिन्न धर्म एवं मठ के आचार्य, महन्तगण गति-मुक्ति के नामधारी ठेकेदार बनकर साधनशील आत्माओं को लक्ष्य की भयंकरता एवम् साधन की तीक्ष्णता का भय दिखाकर कर्मकाण्ड के बन्धन में बाँधकर अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं, तो दूसरी ओर इसी चौरासी के बाजार के बीच चोटा-चौरस्ता भी है, जहाँ चारों ओर चार मठ-चार धामवाले अपना

बाजार लगाकर बैठे हैं। वे चार वेदों का सहारा लेकर परमात्मा तत्त्वरूपी वस्तु के नाम पर साधनशील ग्राहकों के आगे त्रिदेवा आदि नाशवन्त देवी-देवताओं की भक्ति और नामरूपी वस्तु का विक्रय करने हेतु बाजार खोलकर बैठे हैं। इस चौरस्ते के बाजार में चारों ओर से भक्तजन खरीदी करने आते हैं। आये हुए भक्तों को स्वर्ग-वैकुण्ठ सदृश नाशवन्त लक्ष्यों का मंत्र देकर अजर-अमर, अखण्ड मुक्तिस्थान से विमुख बनाकर स्वर्ग-वैकुण्ठ में ही भटकाते रहते हैं। विभिन्न वेद, पुराणों के अन्दर के एक-एक श्लोक द्वारा अपने ही ब्रह्म को अजर-अमर सिद्ध करके ब्रह्म के नाम पर भक्तों को कर्म में बाँध देते हैं। अतः सच्चे ज्ञान के आधार पर यदि देखें, तो इस चोटा के वेद, पुराण, उपनिषद् आदि शास्त्ररूपी बाजार के अन्दर ही हीरेरूपी सच्चे परमात्मा की भक्ति भी है और काँचरूपी त्रिदेवा की भक्ति भी है। किन्तु सत-असत्, सच्चे-झूठे की छान-बीन करनेवाला अकाट्य ज्ञान चाहिए। वेदों में तो कर्म, उपासना, तप आदि का बड़ा भारी गुणगान गाया गया है। पर लक्ष्य तय किये बिना कर्म, उपासना, तप आदि सब कुछ व्यर्थ है। यसर्थ पहले वेद, पुराण, उपनिषद् आदि के ज्ञानाधार

आद-अनाद अविनाशी लक्ष्यरूपी वस्तु की पहचान करो क्योंकि इस बाजार में तो अपने मनपसन्द स्वर्ग, वैकुण्ठ, निराकार आदि हर प्रकार की वस्तु मिलती है। परन्तु इन सब में से सच्चे वस्तु-अखण्ड अविनाशी ब्रह्म का नाम और लक्ष्यरूपी वस्तु की परख रखनेवाला विचार-विवेकशील व्यापारी होना चाहिए। ज्ञान के द्वारा असत् को उड़ाकर अविनाशी लक्ष्ययुक्त हीरारूपी चिन्तामणि मंत्र की परख करनेवाले खरा खरीददार - सच्चे जवेरी बनो। हीरारूपी सच्चे अक्षरातीत परमात्मा की भक्ति और नाम को इसी तन में होकर खरीदनेवाली सच्ची, चालाक, होशियार साधनशील आत्मा ही इस सत-असत् मिश्रित बाजार के बीच से अविनाशी परमात्मा के भजन-भक्तिरूपी वस्तु को खरीदकर मूल धन में वृद्धि कर सकेगी ।

एणी बजारे कूड कपट,
छल छे भेद अपार ।
चौद भवननी खरीद आंहींनुं,
मांहे कोई कोई छे साहूकार ॥ ६ ॥

भावार्थ :- हे ग्राहक आत्माओं! उक्त प्रकार वर्णित संसाररूपी बाजार में धर्म के नाम पर

अनेकों छल-कपट, कूटनीति आदि का व्यापार चलता है। तरह-तरह के छलछिद्र रचे जाते हैं। सत वस्तु का व्यापार करने आई आत्माओं के आगे विभिन्न मत-मतान्तर,सम्प्रदायवाले, अवतारवादी, संन्यासी आदि अब्रह्मरूपी काँच को चमकाकर ब्रह्म के नाम पर छल-कपट द्वारा अपने भक्तों को धोखा देकर ठग लेते हैं। पुनः उक्त छोटे-छोटे और बड़े मत-मतान्तर, सम्प्रदाय व संन्यास मत के कर्मकाण्डी आचार्य-गुरु, जिनके अन्दर स्व-आत्मा की पहचान, स्व-आत्मा की गति-मुक्ति का ज्ञान भी नहीं है, अब्रह्म की बड़ी भारी बड़ी-बड़ाई करके, स्वर्ग-वैकुण्ठादि अपने लक्ष्य को भयंकर और सर्वोत्तम बताकर नश्वर इष्ट की साधना में फँसा देते हैं और उनसे छलछिद्र के बल पर कई गुना धन हड़प लेते हैं। किंतु कर्मभूमि मृत्युलोक के अलावा जो अन्य १३ भोग्यभूमियाँ हैं, उन भोग्यभूमियों में बैठकर अपने पुण्य-सुख का भोग करनेवाले जीवात्माओं सहित त्रिदेवा भी यहीं की कमाई खा रहे हैं और फिर भी वे स्वर्ग-वैकुण्ठ प्राप्त करने के बाद भी अपने भोग्य सुख को धिक्कारते हुए कर्मभूमि - मृत्युलोक में तन प्राप्त करनेवाली मानवात्माओं का गुणगान

क्यों करते हैं ? इस बात को तो समझो! यहाँ कमाए हुए पुण्य-सुख का उपभोग करनेवालों में से कोई-कोई जैसे - *'सत्यवादी नाम केते लेऊं, कै हुए तरन तारन' अर्थात् ध्रुव, प्रह्लाद जैसे भक्त पुनः मुख्यतः त्रिदेवा में सायुज्य मुक्ति प्राप्त करनेवाले ही साहूकार* अजर-अमर होकर बैठे हैं क्योंकि *'त्रिगुण को नाहीं फेर'*। अतः सुख के अधिकारी बनकर बैठे हैं।

चौद लोक कमायुं खाए आंहींनुं,
नथी बीजुं कोय ठाम ।
अधखिण वारी आंहीं पामिए,
ए धन मूल अमान ।। ७ ।।

भावार्थ :- चौदह लोक की जितनी भी जीवात्माएँ भोग्य भूमि में हैं, वहाँ बैठकर वे जो पुण्य-सुख का उपभोग कर रही हैं, उन सबके द्वारा कमाया हुआ पुण्य फल यहीं का है। जीवात्माएँ तो क्या, स्वयं त्रिदेवा को भी प्राप्त पुण्य-फल यहीं मृत्युलोक की ही कमाई है। कर्मभूमि-मृत्युलोक के अलावा स्वर्ग, वैकुण्ठ आदि अन्य किसी भी स्थान में पुण्य नहीं कमाया जा सकता । अतः पुण्य कमाने का स्थान तो मात्र यह १४ लोक मध्ये बीच का देश है। इस

भूमि की ऐसी अमूल्य क़ीमत होते हुए भी परमात्मा के समय के आगे इस मानव तन के अवसर को आधा क्षण मात्र बताया गया है।

एक समय वैकुण्ठ में विष्णु भगवान दातौन करने जा रहे थे। अचानक नारदजी दौड़ते-दौड़ते आए और कहने लगे, "हे भगवन्! वह रावण जन्म लेने जा रहा है। उसे रोकिए!" विष्णु भगवान दातौन करते ही रहे। फिर थोड़ी देर में नारदजी आए और कहने लगे, "हे पालनकर्ता! वह रावण जन्म ले चुका है। वह आगे चलकर भविष्य कहे प्रमाण अजर-अमर होने के लिए तपस्या करेगा, उसे रोकिए।" तब भी विष्णु भगवान ने सुनकर नारदजी की बातों पर गौर नहीं किया। इस तरह करते-करते रावण ने तपस्या करके अजर-अमर होने का वरदान प्राप्त किया, सीता का हरण किया और अन्त में राम भगवान ने अवतार लेकर उसका संहार भी कर दिया। पुनः नारदजी दौड़ते-दौड़ते आए और कहा, "अरे! रावण तो मारा भी गया।" तब विष्णु भगवानजी ने कहा, "अरे! आपने तो मुझे शांति से दातौन करने भी नहीं दिया।" इस तरह विष्णुजी के दातौन करना शुरू करने से लेकर दातौन करना पूरा करने तक के समय में ही रावण के जन्म से लेकर और संहार तक

सब कुछ हो गया। अतः इस भूमि में प्राप्त तन द्वारा प्राप्त की जानेवाली सत वस्तु-परमात्मा तत्त्व को प्राप्त करने का अवसर-वारो मानव तन के आधा क्षण समान है, परंतु प्राप्त होनेवाली वस्तु मूल धन-परमात्मा तत्त्व की क़ीमत अमान-असीम, अतुल्य है। जैसे *'पर न आवे तोले एकने मुख श्री कृष्ण कहंत।'*

खरी वस्त आंहीं गोप छे,
जो जो चोटा पीठ हाट।
बोहोरजो परखुं करी,
आवी कुली बेठो छे पाट ।। ८ ।।

भावार्थ :- परंतु हे आत्माओं! हम जिस सत वस्तु का व्यापार यहाँ करने आए हैं, वह खरी वस्त - सच्चा नामरूपी कृष्ण तत्त्व अर्थात् जिसे भागवत में *'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम्'* कहते हुए ठोस (दृढ़) कर बताया, वह यहाँ गोप्य है। परंतु कहाँ-क्यों? अतः गोप्य कहने का तात्पर्य है कि यह ८४ का बाजार एक चोटा-चार रास्ते के बीच लगा है, जिसमें हाट और पीठरूप बनकर विभिन्न छोटे-छोटे मत-मतान्तर जैसे स्वामी नारायण, राधावल्लभी, कापड़ी-कलंदर आदि भी अपनी दुकान सुन्दर-

बाहरी चमक-दमकयुक्त आकर्षित करनेवाली वस्तुओं से सजाकर बैठे हैं। यह चोटा-चार रास्तारूप चार बड़े सम्प्रदाय चार वेदों के आधार पर मुक्तिदाता तो बनकर बैठ गए, परंतु इन्होंने वेदों के अंदर छिपे बातुनी सच्चे कृष्णनाम रूपी तत्त्व को गोप्य कहकर छिपा दिया। उन्हें वेदों में ब्रह्मतत्त्व नहीं मिला, ऐसा नहीं है। उन्होंने 'दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः' पुनः 'ह्यक्षरात्परतः परः' इस तरह कहते हुए वह सार तत्त्व अक्षर परे अक्षरातीत में है ऐसा तो कहा, परंतु कूट-कपट, छलछिद्र रचकर धन ऐंठने का व्यापार करने के लिए मानवात्माओं को कर्म में फँसा दिया। अतः हे चतुर्लक्षाणी ग्राहकों! इस चार रास्तारूप चोटा में लगे हाट-पीठवाली दुकानों में ही काँच-स्वर्ग से लेकर हीरे-अक्षरातीत तक की वस्तुएँ मिलती हैं। अस्तु वह हीरा खरीदनेवाले जवेरी की भाँति ही वेद, पुराण, उपनिषद् आदि सद्ग्रन्थों का गुह्य अर्थ लेकर, विचार-विवेक पहुँचाकर, सत वस्तु की परख करके ऐसे तत्त्व को ग्रहण करना जिसे लेने पर पछताना न पड़े। यह स्वर्ग, वैकुण्ठ आदि भोग्यभूमियाँ क्षणिक सुखदायी हैं और महाप्रलय में नाश होनेवाली हैं। ऐसे कच्चे मकान में बैठने पर अंत-महाप्रलय काल में पछताना पड़ेगा। पुनः इस अमूल्य और आधा क्षण सदृश अवसर

को क्यों भूल जाते हो? राजतख्तरूपी पाट पर कुली-कलियुग बैठकर शासन चला रहा है। यही कलियुग बातुन में हमारे पाट-अन्तःकरण में मनरूप होकर बैठा है। एक ओर जिस कलियुग की सिफ़त सृष्टि के आद से ही त्रिदेवा आदि देव 'कलिर्धन्य कलिर्धन्य कलिर्धन्यो महेश्वर !' (पुराण सं.३२/१) कहते हुए गाते आये हैं, दूसरी ओर पिण्ड में बैठे उसी मनरूपी कलियुग को 'मन के हारे हारिए, मन के जीते जीत' कहकर सत वस्तु प्राप्त कराने में सहायक कहा है। पुनः तीनों युगों में १००-१०० वर्ष में की गई भक्ति द्वारा प्राप्त होनेवाला फल कलियुग में पाँच सेकण्ड की भक्ति द्वारा कमाया जा सकता है। शुभ कर्म का भी फल इस युग में दूसरे युगों की अपेक्षा १०० गुना ज्यादा भोगने को मिलता है और अशुभ कर्म का भी भोग अन्य युगों की अपेक्षा १०० गुना ज्यादा भोगना पड़ता है क्योंकि 'जे बड़ो लाभ, ते बड़ो जोखम'। अतः ऐसा फल देने के लिए कलियुग पाट पर बैठा है। क्षणिक कलिकाल में सत वस्तु की पहचान करने में चूकना नहीं ! नहीं तो भारी जोखम है!!

आ भोम अंधेरी माहें आमलां,
आंकडियो कोहेडा अनंत ।

वस्त खरी माहें अखंड छे,
तमे जो जो जवेरी बुधवंत ॥ ९ ॥

भावार्थ :- जाहिर में इस ब्रह्माण्डरूपी भोम में भूलनरूपी अंधेर छाई हुई है तथा बातुन में समझें, तो अपने पिण्ड-शरीर में विपरीत चलनेवाली अपनी आंतिरक वृत्तियाँ ही अंधेररूप बनी हुई हैं। इस शरीररूपी भोम के अन्दर सत, रज, तम-ये तीनों गुण आमलां - भँवरीरूप बनकर बार-बार मन के परवश होकर इन्द्रिय आदि अंगों को बहा ले जाते हैं। पुनः इस पिण्ड और ब्रह्माण्ड के अन्दर आत्मा को सच्ची वस्तु प्राप्त करने देने में बाधक बननेवाली वेदों द्वारा कूटनीतिपूर्ण खड़ी की गई कर्म, अकर्म, विकर्म रूप अनेक ऐसी आँकड़ियाँ हैं, जिसके कारण कोहेडारूप झूठी नश्वर वस्तुएँ भी सत प्रतीत होती हैं। सत का भासमात्र करानेवाली झूठी वस्तुओं को कोहेडा कहा है। क्रम से देखें तो सबसे पहले १) शरीर ही कोहेडा है। पुनः २) शरीर के अन्दर के गुण, अंग, इन्द्रियाँ ३) पाँच विषय ४) कर्म, उपासना, ज्ञान ५) लोक ६) कुल और ७) वेद-ये तीनों मर्यादाएँ ८) कुल-कुटुम्बियों के बीच पटी हुई मोह-ममता की बारीकियों का तो पार ही नहीं

है। ये बारीक-बारीक अनन्त आँकड़ियाँ असत्‌रूप होते हुए भी कोहेडारूप अर्थात् सत्-सी लगती हैं। मन उसी के पीछे भागता है और मन के परवश होकर गुण, अंग, इन्द्रियाँ भी जीव को सत् वस्तु प्राप्त कराने से वंचित कर देती हैं। परंतु हे सत् वस्तु का व्यापार करने आई मुमुक्षु आत्माओं! 'एक माहें ते जीव नेहेकेवल जी' अर्थात् इस भोम में आत्मा तत्त्व और ब्रह्म तत्त्व का एक सम्बन्ध है। दोनों का मिलान करानेवाली साधना हीरारूपी भक्ति है। इस भक्तिरूपी व्यापार द्वारा हजार गुना लाभ अर्थात् चिन्तामणिरूप ब्रह्मधाम की प्राप्ति होगी। आत्म-ब्रह्म तत्त्व का बोध ही अखण्ड धन है। वह ब्रह्म का नामरूप चिन्तामणि वस्तु भी उसी प्रकार इस कोहेडे के अन्दर छिप गयी है, जिस प्रकार इस नश्वर शरीर के अन्दर अखण्ड अविनाशी चेतन-जीव रहता है। परन्तु होशियार होकर व्यापार करना। इस नामरूपी तत्त्व की पहचान करना बड़ी बुद्धिवाले बुधवन्त जवेरी का ही काम है। झूठे हीरेरूप कर्म के बन्धन में पड़कर संसार की ओर लगोगे, तो तुम्हारी लाखों रुपये रूप अमूल्य मानव जीवन की मेहनत बरबाद हो जाएगी। लाख-

लाख रुपये तुल्य एक-एक श्वास के द्वारा सत वस्तु का व्यापार करो ।

आ भोम विस्मी सत माटे,
वस्त आडी छे पाल।
अनेक रखोपा करी वस्तनां,
वीट्यां छे जमजाल ॥१०॥

भावार्थ :- हे जिज्ञासु-मुमुक्षु आत्माओं! यह शरीररूपी भोम अत्यन्त विस्मी-कठिन है। इस भोम द्वारा साधन कर साधक को साध्य तत्त्व तक पहुँचना बहुत विषम - कठिन है। कारण 'अंतर मुश्किल पहुँचना, रंग लाग्या उपला देख' शरीर के अन्दर ही अनेक दीवारें पालरूप बनकर खड़ी हैं, जो अंतर तक पहुँचने नहीं देती। शारीरिक दृष्टि द्वारा अंतर तक नहीं पहुँचा जा सकता। पुनः इस सत वस्तु-आत्मा के रखोपा रूप बनकर बाहर से अनेक द्वारपाल - आठ पहरिया खड़े हैं। ये द्वारपाल विपरीत चलनेवाले हमारे गुण, अंग, इन्द्रिय, अंतःकरण, उनके विषय, १० प्राण-पान, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कुर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय आदि ने सत वस्तु जीव को इस प्रकार घिर रखा है, जिस प्रकार जम की जाली जीव को

घिर लेती है। जन्म से ही घिरी हुई इस जाली में जीव इस प्रकार जकड़ जाता है कि वह मृत्यु पर्यन्त उस जाल से छुट नहीं पाता। उसी प्रकार उक्त द्वारपालों से घिरा जीव अंतिम श्वास तक आत्म तत्त्व के व्यापार के लिए तड़पता है और तड़पते-तड़पते ही अमूल्य अवसर गँवा देता है।

खरो खोजी हसे जाण जवेरी,
ते जोसे द्रढ मन धीर।
वस्त अखंडने तेहज लेसे,
जे होसे वचिखिण वीर ॥ ११ ॥

भावार्थ :- अतः ऐसे बाजार के बीच में यदि हीरारूप सत वस्तु-ब्रह्म तत्त्व की पहचान करनेवाले खरे-सच्चे, खोज करनेवाले तथा प्रयत्नशील ग्राहक हों, वे ही अपने मन को साधकर शांतिपूर्वक धैर्य धारण करके बाजार में लगे विभिन्न हाट-पीठ-दुकानों की वस्तुओं जैसे वेद, पुराण, उपनिषद्, भागवत, गीता आदि को टटोल-टटोल कर देखेंगे। पुनः उक्त प्रकार से विचार-विवेक पहुँचाकर, धैर्यपूर्ण मन से प्रयत्न कर ढूँढ़नेवाले साधक-ग्राहक, जाण-जवेरी ही उक्त अखण्ड ब्रह्मधाम सदृश सच्चे हीरेरूपी वस्तु को खरीद सकेंगे। ऐसे वीर-

वचिखिण-बुद्धिवन्त, होशियार और जानकार ग्राहक ही जवेरी की तरह सत वस्तु, ब्रह्म - ब्रह्मधाम की पहचान कर काँच सदृश चमकनेवाले क्षणिक सुखदायी स्वर्ग, वैकुण्ठ सदृश नकली हीरारूप नग में न फँसकर अखण्ड ब्रह्मधाम प्राप्त कर अखण्ड होकर बैठेंगे।

ए धन बोहोरसे ते गोप रेहेसे,
तेने करसे सहु जन हास।
वस्त लेई ज्यारे थासे वेगलो,
त्यारे सहु कोई केहेसे स्याबास ॥१२॥

भावार्थ :- इस ब्रह्मतत्त्व धनरूप वस्तु को जो बुद्धिवन्त ग्राहक विचार-विवेक पहुँचाकर छान-बीन करके खरीदेगा, दृढ़तापूर्वक ठहराकर अन्तःकरण में धारण कर लेगा, तत्पश्चात् *'जिन पाया तिन माहें समाया, राखत जोर छिपाई'* अर्थात् वह ग्राहक जीवनभर गुप्त रूप से उस प्राप्त हीरेरूपी सत वस्तु-ब्रह्मतत्त्व का श्वास-श्वास व्यापार करता जायेगा, दूसरों को दिखाये बिना पल-पल उसमें वृद्धि करता जायेगा। अन्य भौतिक वस्तु-सांसारिक, व्यापार करनेवाले ग्राहक, जिन्होंने हीरा सदृश मात्र जाहिरी चमकवाले काँचरूप स्वर्ग,

वैकुण्ठरूपी वस्तु का व्यापार किया है, उक्त बुद्धिवन्त ग्राहक को हँसी का पात्र मानकर उसकी हँसी उड़ायेंगे। 'तेरा जीवन तो व्यर्थ है, धिक्कार के पात्र है।' इस प्रकार कहकर तिरस्कृत दृष्टि से उसे देखेंगे और उसकी गरीबता पर खिल-खिलाकर हँसेंगे। परन्तु वह दृढ़तापूर्वक विचार-विवेक कर ठहराया हुआ प्रयत्नशील ग्राहक जब अपनी कमाई-ब्रह्मतत्त्व प्राप्त करानेवाली भक्ति द्वारा साधना कर ब्रह्मबोध प्राप्त कर लेगा और उसे अक्षरातीत अखण्ड धाम ले जाने के लिए अद्वैत ब्रह्मधाम से अद्वैत परमात्मा प्रेमरूपी सुखपाल लेकर आएँगे, और उनके दूत उस भक्त को पंखा-चँवर डुलाते हुए ले जायेंगे, तब तो काँच की खरीदी करनेवाले ग्राहक उन्हें ब्रह्मधाम जाता देखकर कहेंगे कि "जीवन तो इसका धन्य-धन्य है। यह तो शाबाशी का पात्र है। इसने किस तरह चतुराई से विचार-विवेक पहुँचाकर सत वस्तु की कमाई की। हमारा जीवन तो व्यर्थ गया। धन्य है उसका जीवन! जन्म हो, तो ऐसा हो। इसने तो ८४ के चक्कर से निकालनेवाले मनुष्य जीवन को सार्थक बना लिया।"

वेद वैराट बंने कोहेडा,

फरे छे अवला फेर।

प्रगट कहे मुख पाधरुं,
पण तोहे न जाय अंधेर ॥ १३ ॥

भावार्थ :- इस प्रकार आत्मा-परमात्मा तत्त्व तक पहुँचने नहीं देने में वेद और वैराट-पीण्ड दोनों ही कोहेडा अर्थात् उलझनरूप हैं। दोनों - वेद और वैराट की उत्पत्ति की चलन वृत्ति उलटी है। दोनों ही गुण, अंग, इन्द्रियों को मन के परवश कराकर कर्म के बंधन में बाँधकर जीव को उसके मालिक के विमुख बना देते हैं। देखो न! वेद पुरुष ब्रह्माजी ने अपने मुख से प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट ही कहा है कि *"नेत-नेत अर्थात् मैं जहाँ तक गया, उतना भर में ब्रह्म नहीं मिला। परंतु ब्रह्म नहीं है, ऐसा नहीं है। ब्रह्म है, पर मुझे मिला नहीं।"* इस तरह प्रत्यक्ष स्पष्ट कहा हुआ जानकर भी वैराट के प्राणी-जीव कर्म के ही पीछे लगे हुए हैं। उसका पीछा छोड़ते नहीं हैं। इतना होने पर भी अज्ञानता रूपी अंधेर जाता नहीं है। कर्म की गति-विधि जानकर भी, कर्म में फँसकर लोग मुक्ति चाहते हैं, इससे बड़े आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है!

साध कोहेडो एने तोहज कहे छे,
जो सवले अवलुं भासे ।

सत वस्त कोई देखे नहीं,
असतने सहु प्रकासे ।। १४ ।।

भावार्थ :- हे साधक ग्राहकों! वेद और वैराट - इन दोनों को कोहेडा -उलझनरूप इसीलिए तो कहा गया क्योंकि यह वेद और वैराट दोनों कोहेडा-सा गुणयुक्त है अर्थात् दोनों असत्य-झूठ होते हुए भी सत-सच्चे से भासते हैं अर्थात् वैराट में चेतन-आत्मा जड़-सी अस्तित्वहीन-सी लगती है और जड़ - शरीर सच्चा सदा अजर-अमर-सा लगता है। पुनः वेद में भी ऊपरी अर्थ ने अन्दर के लक्ष्यार्थ ब्रह्मतत्त्व बोध को ढाँप दिया। यसर्थ सत्य आत्मा और लक्ष्यार्थ भेद वेद को नहीं मिल सका। अतः ऊपरी अर्थ से असत् शरीर को सत्य मान बैठे और कर्म में ही मग्न हो गए। इस शरीर-ज्ञान ने आत्मा तक पहुँचने नहीं दिया। शरीर और कर्म में ही उलझ गये। पिण्ड और ब्रह्माण्ड - दोनों में ही ऊपर का-जाहिरी प्रकाश फैला हुआ है। झूठ के साम्राज्य का विस्तार इतना फैला हुआ है कि झूठ ही अच्छा लगता है, सच्चा लगता है। आत्मा तत्त्व को तो सुनने और समझने का भी जी नहीं चाहता। पुनः वेदों में भी कर्म को इतनी प्रधानता दी, इतना महान बताया गया कि कर्म के आगे लक्ष्य

का चिंतन, लक्ष्यबोध असत्-सा लगने लगा। झूठ के साम्राज्य में कितना बल है, देखो!

कोई सत वोहोरे कोई असत वोहोरे,
कोई बंधाय बंध।
वेपार एणी पेरे करे वेहेवारिया,
ए चोटो एणी सनंध॥१५॥

भावार्थः- इस चोटा-चार रास्तारूपी बाजार में जो हाट-पीठ है, उसमें तीन प्रकार के व्यापारी हैं। उनमें से कोई सत नाम से सत मकान को खरीदते हैं, तो कोई झूठ नाम के चिंतन द्वारा असत् मकान को खरीदते हैं अर्थात कोई मूल से लाये हुए धन द्वारा सत नाम का चिन्तन करके वैकुण्ठ और गोलोक धामरूपी सत मकान की खरीददारी करते हैं, तो कोई काँच सदृश असत् साधना द्वारा असत् मकान स्वर्ग और नर्क का व्यापार करते हैं। कोई कर्मरूपी बन्धन में बन्धकर कर्म को ही सर्वेसर्वा मान बैठे हैं और बारम्बार मनुष्य योनि में जन्मते-मरते हैं। अतः इनकी ऊर्ध्व अथवा अधःगति नहीं होती। वे बारम्बार मृत्युलोक में जन्मते-मरते रहते हैं। किंतु कर्म में चूकने का भारी डर है। इस प्रकार यहाँ व्यापार का व्यवहार करनेवाले तीन प्रकार

के व्यापारी हैं। एक ऊपर वैकुण्ठ और गोलोक की ओर जानेवाले, दूसरे स्वर्ग और पाताल की ओर जानेवाले तथा तीसरे मृत्युलोक में ही जन्मते-मरते रहनेवाले। अतः यह चोटा-चार रास्तावाला बाजार इस प्रकार का है।

एणे अंधेर कोहेडे अनेक बांध्या,
वस्त खरी नव जुए।
बंध बंधावी बजार माहें,
पछे वारो वछूटे घणुं रुए ॥१६॥

भावार्थ :- इन अन्धेर अज्ञानता की ओर ले जानेवाले कोहेडे ने वैराट के प्राणियों को अनेकों प्रकार से कर्म बन्धन में बाँध दिया है अर्थात् पीण्ड-शरीर में देखें, तो *'भरम से भरम भरमाना'* - भ्रमरूप नींद द्वारा उत्पन्न जीव भ्रम के कारण सत्-असत् में विवेचन न कर पाने के फलस्वरूप जड़ में ही फँसे रहे और चेतन-आत्मा तत्त्व तक नहीं पहुँच पाते। आत्मा तक पहुँचने में बाधक बननेवाली षट् ऊर्मी जैसे - शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और प्यास जीव की साधना में बाधक बनती है। जीव त्रिताप से पीड़ित होकर नाना प्रकार के दुःख भोगता है। धन का मद, यौवन का मद, ज्ञान का मद

आदि तरह-तरह से जीव को माया की ओर लगाकर लक्ष्य की ओर से पछाड़ देते हैं। वेदों द्वारा प्रदत्त कर्म, उपासना और ज्ञान ये तीनों भी कर्म के बन्धन में डालनेवाले काण्ड ही हैं, जिसमें उलझकर जीव कभी निकल ही नहीं पाता। इस प्रकार जीव इस संसाररूपी बाजार में पैर रखते ही संचित कर्मों द्वारा प्राप्त प्रारब्ध-पिण्डरूप बंधन में मूल से ही बँधकर आता है। फिर जैसे-जैसे उसकी अवस्था बढ़ते जाती है, उतना ही बन्धन मजबूत होते जाता है। जीवन भर उस तत्त्व से चूकने के बाद जब अन्तकाल में इस ८४ के चक्कर से निकलनेवाले मानव तनरूपी बारी (दरवाजे) से बाहर निकलने का समय आता है, तब मानव जीवन में किए हुए कर्म पर पछताते हुए रोते-रोते ८४ में चला जाता है।

कोइक करे हजारगणां,
केहेने ते मूलगां जाय।
कोई बंधाई पडे फंद माहें,
कोई कोठी धजा केहेवाए ।। १७ ।।

भावार्थ :- इस ८४ के बाजार में आकर किसी जीव ने मूल धन से १ के द्वारा हजार गुना नफा भी प्राप्त किया। ध्रुव, प्रह्लाद जैसे बड़े-

बड़े भक्तों ने वैकुण्ठ में प्राप्त होनेवाली चार मुक्तियों द्वारा हजार गुना अखण्ड सुख प्राप्त किया, परंतु *'जहां लगे छे ब्रह्माण्ड'* - जब तक प्राकृतिक प्रलय न हो, तब तक अखण्ड सुख के भागी बने। पुनः कई जीवों ने तो इस बाजार में आते समय लेकर आए मानव तन के चार पदार्थ तथा प्रेम और विश्वासरूपी मूल धन को भी गँवाकर भारी नुकसान उठाया और चौरासी में जाने का रास्ता बनाया। इस प्रकार किसी ने कर्मरूपी बंधन में फँसकर बारम्बार जन्म-मरण की ही कमाई की, तो कोई मूल धन द्वारा श्वास-श्वास व्यापार कर विष्णुरूपी सारूप्य मुक्ति प्राप्त कर ध्वजायुक्त भव्य कोठी-वैकुण्ठ के अधिकारी बने। जैसे - ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा आदि भक्त।

कोई बोहोरे सत वस्तने,
रास जवेर खरचाए।
अखंड धन तेने अनन्त आव्युं,
ते चौदे भवन धणी थाय।।१८।।

भावार्थ :- कोई-कोई जीव सत वस्तु-सच्चे कृष्ण तत्त्व की खरीदीकर उसे जतन करने के लिए प्रेम, विश्वास, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि

रास जवेररूपी समूह एक-एक श्वास भी खर्च कर डालते हैं। इस तरह कोई-कोई समुचित जवेर खर्च कर चिन्तामणिरूप प्रभु को प्राप्त करते हैं। चिन्तामणिरूप परमात्मा-धनी को प्राप्त करके ऐसे सच्चे, बुधवन्त, प्रयत्नशील जीव अमूल्य और बेशुमार धन के अखण्ड भागी बनकर अखण्ड वैकुण्ठ में चौदह लोक के मालिक विष्णु समान होकर अखण्ड सुख के भोगी बनते हैं।

बीजो फेरो ए स्याने करे,
थयो ते सेठ सरीख ।
टली वाणोतर धणी थयो,
ते अखंड सुख लेसे अंत्रीख ॥१९॥

भावार्थ :- जिसने इस बाजार में आकर सत-हीरे सदृश अक्षरातीत परमात्मा की प्रेम लक्षणा भक्तिरूपी वस्तु की खरीदी की, वह तो अब ब्रह्म को प्राप्त कर ब्रह्म समान ही बन गया। दृष्टान्तरूप में जिस प्रकार विष्णु की भक्ति करनेवाले भक्त वैकुण्ठ में नवधा भक्ति द्वारा विष्णु में सारूप्य मुक्ति प्राप्त कर विष्णु समान होकर बैठते हैं। अतः सेठ-ब्रह्म-मालिक समान बना जीव अब दूसरी बार इस खारे समुद्र में

व्यापार करने के लिए धक्का क्यों खाएगा ? हरगिज़ नहीं खायेगा। इस मानव तन में बार-बार जन्मना और मरना विलायत के व्यापार सदृश है। बार-बार जन्म धारण करते जीव को माँ के गर्भवास में स्थित खारे जल में वास करना पड़ता है। माँ के द्वारा खाए हुए विभिन्न तीखे, नमकयुक्त पदार्थ गर्भ में स्थित जीव पर 'नमक पर मिर्च डाले' सदृश कार्य करते हैं। अतः जिस प्रकार खारे जल से युक्त बड़े-बड़े समुद्र पार कर व्यापारी दूसरे देशों में व्यापार करने जाते हैं और इतना जोखम उठाकर व्यापार करते-करते अपना मूल धन भी गँवा आते हैं, उसी प्रकार बार-बार जन्म धारण करता जीव बारम्बार खारे जल में वास करते-करते प्राप्त मानव तन में आकर मूल धन को गँवाकर काँच ही खरीद बैठता है। परंतु इस बाजार में आकर जिसने सत वस्तु का व्यापार किया और स्वयं धनी-मालिक समान बन बैठा अर्थात् परमात्मा के साथ एकाकार हो गया, उसका तो अब व्यापार करने का सिलसिला ही टल गया। अब उसमें कोई भी कमी नहीं रह गई। अतः अब वह ऊपर स्थित पाँचवीं क्षर समष्टि और नीचे स्थित १३ लोकों के मध्य स्थित वैकुण्ठ-अधर (अंत्रीख)

में बैठकर अखण्ड सुख का भोग करेगा, किंतु *'जहां लो छे ब्रह्माण्ड'* अर्थात् प्राकृतिक प्रलय तक ही।

कोण फेरी करे वली,
अखंड धन आवे अपार।
साहूकारी तमे करो ने नेहेचल,
तो निध पामो निरधार ॥ २० ॥

भावार्थ :- उक्त प्रकार से जो जीव सेठ के समान होकर अखण्ड सुख का भागीदार बन गया, वह पुनः इस संसार सागर में व्यापार करने के लिए क्यों आएगा? उसे तो अखण्ड अपार धन प्राप्त हो चुका। अब उसमें क्या कमी है, जिसके लिए उसे इस भयंकर खारे जलयुक्त संसार सागर में धक्का खाने की क्या आवश्यकता पड़े ? अतः हे बुद्धिवन्त ग्राहकों। बड़ी बुद्ध के साहूकारों !! इस मानव तनरूप भोम में आकर ८४ के बाजार से निकलने के लिए यहाँ लगे हाट-पीठ में से ऐसी वस्तु की खरीदी करो, जिसके द्वारा नेहेचल-अखण्ड धनरूपी सुख का लाभ हो। सच्चा हीरा खरीदकर व्यापार करोगे, तो चिन्तामणिरूपी निध अवश्य ही प्राप्त कर सकोगे। अतः अखण्ड धन प्राप्त करने का

अवसर यही है, इसे चूको नहीं! हाथ से जाने मत दो!!

खोटा साटे साचुं जडे छे,
एवी मली छे बजार।
लाभ अलेखे आ फेरा तणो,
जो राखी सको वेहेवार ॥२१॥

भावार्थ :- हे धामस्थ मुमुक्षु आत्माओं! यह शरीर झूठा है, क्षणिक है। किंतु इस झूठे, क्षणभंगुर तन द्वारा भी सच्चे हीरे सदृश सत परमात्मा की भजन-भक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसी झूठे शरीर द्वारा १४ लोक के धनी बन सकते हैं, ऐसे हीरेरूपी रत्न भी इस ८४ के बाजार में मिलते हैं। यह संसाररूपी बाजार सत और झूठ का मिश्रण है। किंतु झूठे, नश्वर और क्षणभंगुर मानव तन द्वारा अनगिनत, अपार लाभ भी कमाया जा सकता है। यह फेरा हमें ऐसे ही व्यर्थ गँवाने के लिए नहीं मिला है। इस मानव तनरूपी फेरे में आकर यदि हम व्यवहार को रख सकेंगे अर्थात् इन्द्रियों को इस तरह सँभाल सकेंगे कि 'आज दिन भर में कर्म करते, मेरे द्वारा कोई अनर्थ तो नहीं हुआ, कोई मुझसे दुःखी तो नहीं है!' इस तरह दम-दम, श्वास-श्वास

अपने व्यवहार को सँभालते रहने पर इस फेरे के श्वास-श्वास द्वारा हमें एक पल के करोड़ों गुना लाभ मिल सकता है।

आ फेरो छे एणी सनंधनो,
जो कोई रूदे विचारो।
साधो साहुकारो कहुं छुं पुकारी,
तमे जीती अखंड कां हारो॥२२॥

भावार्थ :- अतः यह मानव तनरूपी फेरा इसी प्रकार का है। एक ओर इस फेरे द्वारा ८४ को प्राप्त होना भी संभव है और दूसरी ओर व्यवहार सँभालनेवालों को इसी तन द्वारा नेहेचल-अखण्ड सुख भी प्राप्त होता है। अतः हे साधनशील साहूकारों! हे सत का व्यापार करनेवाली प्रयत्नशील आत्माओं!! इस तन के महत्त्व को हृदय द्वारा समझकर व्यापार करो। मैं इसीलिए तुम सबसे बारम्बार पुकार-पुकार कर कह रहा हूँ कि इस फेरे में ८४ का चक्कर मत खरीदो। इस ८४ के चक्कर से बचकर अखण्ड सुख के भागी बनो। यह तन ८४ से जीती हुई बाजी है। इस फेरे में यदि चूककर हाथ में आया हुआ अखण्ड सुख प्राप्ति का सुअवसर तुम सब गँवा दोगे, तो हाथ में आई

जीती हुई बाजी हार बैठोगे। यसर्थ जीती हुई बाजी-अखण्ड सुख की प्राप्ति करनेवाले भागीदार बनने की जगह हारकर ८४ के चक्कर में क्यों छलाँग लगा रहे हो?

आ भोमनी गत सुणो रे साधो,
प्रगट कहुं छुं प्रकासी।
आंखें देखी आप बंधाए,
पछे खाए सहु जम फांसी ॥२३॥

भावार्थ :- हे ग्राहक साधुओं! इस मानव तनरूपी भोम की गति-विधि को सुनकर इस पर विचार-विवेक करो!! इस भोम में बड़े-से-बड़े राजा जैसे रावण, हिरण्यकश्यपु, पुनः महान धुरन्धर भीम, कर्ण, भीष्म आदि भी हुए। देखो तो! कैसे-कैसों को इस भोम ने अशुभ कर्मरूपी बन्धन में बाँधकर अपने पेट में ले लिया है। कितने अपनी आँखों के सामने जा रहे हैं, अपने को जन्म देनेवाले माता-पिता भी गये और अपने को भी कुछ देर में निश्चय ही वही रास्ता पकड़ना है। अतः गये हुए को, जाते हुये को और जाने के समय को अपनी आँखों से देखते-देखते भी अपनी आत्मा को क्षणिक मोह, ममता, लोभ के परवश करके अशुभ कर्मरूपी

बन्धन में स्वतः ही बँधा रहे हो और परलोक के अखण्ड जीवन की चिन्ता किये बिना क्षणिक जीवन के इस लोक के अभिमान में अंधे बनकर जीवन गँवा रहे हो। पीछे - बाद में जब यमराज इस जन्म में अज्ञानवश किए गए तुम्हारे कर्मों की फाँसी के फंदे में डालने के लिए तुम्हें जमपुरी ले जायेगा, तब वहाँ लोभ, अभिमान, चतुराई आदि काम नहीं आयेंगे। पुनः इस भोम में जो भी आये, सब दो दिन का तमाशा रचकर चले गए। अपितु ये बातें मैं तुम सबको प्रत्यक्ष प्रकाशित कर कह रहा हूँ।

वणजे ते आवे सहु एकला,
आणी भोमें आवी करे संग।
रास खरीद सरवे वीसरी,
पछे लागी रहे तेसूं रंग ।।२४ ।।

भावार्थ :- व्यापार करने आते समय तो सभी इस बाजार के बीच अकेले ही आते हैं और माता के गर्भ से निकलते समय दोनों मुट्ठी में प्रभु नाम की यादरूपी धन और अपने सेठ द्वारा दिए हुए मूल धन को कई गुना बढ़ाकर लाने की, ली हुई प्रतिज्ञा का ज्ञान अर्थात् श्वासरूपी जेवर और प्रतिज्ञा - ये दोनों वस्तुएँ बाँधकर लाते

हैं, परंतु माँ के गर्भ से बाहर निकलते ही च्याँ-च्याँ करते हुए रोते-रोते मुट्ठी में बाँधकर लाई हुई सारी वस्तु भूल बैठते हैं और इस भूमिका में आते ही दूसरे का संग करने लगते हैं। प्रभु के बदले माँ-बाप, कुटुम्बीजनों से व्यवहार करने लगते हैं। धीरे-धीरे यौवनावस्था में पहुँचकर जोड़ी में परिणत हो जाते हैं और अन्त में *'करोड़िया माहें जाल जी'* मकड़ी की तरह अपने ही द्वारा तैयार किए गए परिवार-व्यवहार, कुटुम्बीजन, बाल-बच्चेरूपी जाल में फँसकर सारा मूल धन उन्हीं के पालन-पोषण में, उन्हीं की ममता में लगा देते हैं। इस प्रकार सेठ से आते समय लाया हुआ प्रभु नाम के आनन्द का सारा धन और माँ के गर्भ में होते श्वास-श्वास हीरा खरीदने की प्रतिज्ञा ये दोनों ही भूल गए। परमात्मा से रंग लगाने की प्रतिज्ञा करके आए थे और हम यहाँ आकर किससे रंग लगा बैठे, विचार तो करो?

एणे स्वांगे संसार बांध्यो,
कोई कपट कारण रूप।
बीजा तो आमलां अनेक छे,
पण आंकडी आ अदभूत ।।२५।।

भावार्थ :- इस संसाररूपी नाट्यशाला में सभी लोग मेरा-मेरा करके सम्बन्ध बाँधते हैं, ममता बढ़ाते हैं, कर्म करते हैं, इस प्रकार से तरह -तरह से स्वांग करते हैं। क्षणिक सुख के लिए किस तरह स्वांग रचते हैं। देखो! देखो!! जिस प्रकार रंगमञ्च में नाटक के दौरान एक ही पुरुष राजा का स्वांग रचता है, पुनः कुँवारी औरत का स्वांग रचता है तथा भिखारी होकर भी वही गली-गली फिरने का स्वांग करता है। तीनों ही क्षणिक स्वांग मात्र हैं, सच्चा तो केवल वह है, जो विभिन्न स्वांग रचकर लोगों का मनोरंजन करता है, उसी प्रकार शरीर को रूपवन्त बनाना, वस्त्र का सिनगार करना आदि स्वांग ही है। सच्ची तो केवल आत्मा है, जो लाखों वर्ष पहले भी एकरूप में थी और बाद में भी उसी रूप में रहेगी। यहाँ आकर आत्मा क्षणिक में माता-पिता, भाई-बहन आदि का रूप धारण करती है। किंतु इस क्षणिक जीवन की ममता में पड़कर लाखों का जीवन भूल बैठना ही बड़ी मूर्खता है। इस संसाररूपी नाट्यमञ्च में आकर संसार के प्राणी मात्र ममता बाँधकर बन्धन में पड़े हैं। माया की कला को तो देखो! इसने शरीर के गुण, अंग, इन्द्रियों को वश में करके, इस शरीर को आत्मा के साथ के कपट का कारणरूप

बना दी। माया के परवश होकर यह शरीर ऊर्ध्व गति-आत्मा की ओर जाने के बदले, जहाँ से इसकी उत्पत्ति हुई है अर्थात् अधोगति की ओर ही खींचता है तथा इन्द्रियाँ भी अधोगति की ओर ही प्रवृत्त होती हैं। शरीर और इन्द्रियों के अधोगति की ओर खींचने के कारण ८४ का दुःख भोगना पड़ता है, जीव को। कपट में भूलाकर जीव को दुःखदाई नर्क में पहुँचाने में ये शरीर ही कारण रूप बनता है। अतः यह कपटरूप शरीर ही दुश्मन बनकर जीव को शारीरिक ममता में फँसाकर दुःख भोगने का कारण रूप है। अब शरीर तो उलटी ओर खींचने लगा, परंतु इस शरीर के अन्दर इन्द्रिय, प्राण, गुण ऐसी अनेकों भँवरियाँ उठती हैं, जो अपने संपूर्ण बल द्वारा जीव को अधोगति की ओर खींचती है। परंतु इसके अन्दर भी अनेकों ऐसी आँकड़ियाँ हैं, जो अद्भुत अथवा आश्चर्यजनक हैं। जिस प्रकार ब्रह्म के अनन्त गुण हैं, उसी प्रकार माया के भी अनन्त गुण हैं। ये मायावी गुण ही ऐसी आँकड़ियाँ हैं, जो अधिष्ठात्री इन्द्रियों को यह पहचान करने नहीं देती कि आँख के अन्दर ऐसा कौन-सा तत्त्व है अथवा कान के अन्दर ऐसा कौन-सा तत्त्व है, जिसके

द्वारा देखने अथवा सुनने का कर्म होता है। इन्द्रियों के अन्दर पहुँचकर यह मायारूप आँकड़ियाँ ही आत्मा की पहचान में पर्दारूप बनती हैं।

आप तणी सुध विसरी,
कोई ओलखाय नहीं पर।
तेमां सगा समंधी थईने बेठां,
कहे आ अमारुं घर ॥२६॥

भावार्थ :- इस माया के बीच पड़ते ही अर्थात् माँ के गर्भ से बाहर आते ही जीव यह सुध खो बैठता है कि मैं कौन हूँ? शरीर, गुण, अंग, इन्द्रियों को वह अपना मानने लगता है और अपनी मूल सुध-बुध को भूलाकर अपने लाखों के जीवन को और अपने सेठ को ही विस्मृत कर बैठता है। शरीर को सच्चा मानकर शारीरिक सम्बन्धों को ही पकड़ बैठता है और कहता है कि ये कुटुम्बीजन ही मेरे अपने हैं, दूसरे सब पराये हैं। संसार के अपने जो पराये हैं, उन परायों को अपना मान बैठता है और परलोक के मार्ग की ओर लगानेवाले, क्षणिक जीवन के अनर्थ से बचानेवाले, अपार जीवन की याद दिलानेवाले अपने मूल सम्बन्धी को पराया कर बैठे। इस प्रकार लाखों के जीवन को भूलाकर

८४ के दुःख में भेजनेवाले दुश्मनों के बीच सगे-सम्बन्धी बनकर यह जीव कहने लगता है कि, 'आ अमारुं घर' अर्थात् यह घर, जमीन, कुटुम्बीजन ही मेरे अपने हैं। अतः जब तन की नाड़ी ही अपनी नहीं है, तो घर की नारी से क्या अपेक्षा करें। हे मुमुक्षु आत्माओं! माया के इस जबरदस्त अमल को हलका मत जानो!

आपोपुं तिहां बांधीने आपे,
सरवा अंगे द्रढ मन।
रात दिवस सेवा करे,
एम बंधाणां सहु जन ॥ २७ ॥

भावार्थः- इस प्रकार कुटुम्बी, सगे-सम्बन्धियों की ममता में अपना तन, मन, धन कुर्बान कर अपने-आप स्वतः को ही बन्धन में डालकर बैठे हैं। ये शरीर सम्बन्धी कुटुम्बीजन ही हमारे सर्वस्व हैं, ऐसा जानकर दृढ़ता से अपने दसों इन्द्रिय तथा चारों अन्तःकरण उनकी ही सेवा में खर्चने लगे। उसी को अपना जानकर रात-दिन श्वास-श्वास उनकी सेवा में उतारने लगे। परंतु जिसे वे अपना कहते हैं, वह उन्हें अपना नहीं कहता। जीवन भर मेरा-मेरा करते जिसे बटोरते-बटोरते एक-एक श्वास लिया,

अन्त में उसी को छोड़कर अकेले ही चले जाते हैं। मेरापन में यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। इस तरह सृष्टि के शुरू से लेकर एक-दो नहीं सभी जीवात्माएँ नख से लेकर शिर तक इस मायावी बन्धन में फँसी हुई हैं।

चीठी आवे चाले ततखिण,
जाय ते करता रुदन।
झाझी सेवा जेहनी करतां,
ते दिए छे हाथ अगिन ॥२८॥

भावार्थ :- जब सेठ-यमदूत के पास से चिट्ठी आएगी अर्थात् जब चिट्ठीरूपी यमदूत आयेगा, तब जीव को उसी क्षण यह तन छोड़कर चलना पड़ता है, जीव चला ही जाता है। जीवन भर मेरा-मेरा करते-करते जीव जिन वस्तुओं का संग्रह करते आया था, अन्त में उन्हीं वस्तुओं को छोड़कर दो बातों पर पछताते-पछताते उसे यमराज के फन्द में जाना पड़ता है। वे दो बातें ये हैं, एक तो यह है कि जीवन भर जो धन संग्रह किया था, उसका भोग भी नहीं कर पाया, दूसरी -इस जीवन में आकर मैंने परलोक के लिए कोई कमाई नहीं की । इन दोनों बातों के विषय में अपने द्वारा की गई मूर्खता पर अपने जीवन को

धिक्कारते हुए छाती कूटते-कूटते, रोते-रोते जीव चला जाता है। अब जिसको अपना जानकर जीवनभर ज्यादा ममता बाँधकर पालन-पोषण किया था, उस जीव को अन्त समय में परिवार के वे सगे-सम्बन्धी सेवा के बदले क्या देते हैं? *'ते दिए छे हाथ अगिन'* अर्थात् अपने ही हाथ से अग्नि लगाकर भस्म कर देते हैं। हे ग्राहक पिपासु आत्माओं! देखो सेवा का बदला!! जिसके साथ सम्बन्ध की पहचान रखी थी, उसे ही अग्नि में खाक कर डाला। यही है अद्भुत आँकड़ियों में से एक मुख्य आँकड़ी।

माहें तो कोय नव ओलखे,
ओलखाणने खोरी बाले।
ए सगाई आ भोम तणी,
ते सनमंध एणी पेरे पाले ॥२९॥

भावार्थ :- सम्बन्धी के जीवन्त होते अन्दर के चेतन-माहें की तो पहचान नहीं की। पुनः जिसकी पहचान की थी, जिसे जीवन भर प्रधानता देते आए थे, उस ओलखाण-शरीर को तो खोरनी-मुर्दे को टोंच-टोंचकर जलानेवाले लम्बे लकड़े की लाठी द्वारा टोंच-टोंचकर जला

डालते हैं। इस संसाररूपी भोम में परस्पर सम्बन्धी की पहचान कर सम्बन्ध का पालन इस तरह किया जाता है। ऐसा स्वार्थपूर्ण सम्बन्ध पालन करने के लिए जीव इस क्षणिक सम्बन्ध में भूलकर कर्म के बन्धन में बँध जाता है और अपने परलोक के लाखों के जीवन को अपने ही हाथों गँवा बैठता है। अन्त में सम्बन्ध पालन का स्वांग करते-करते जीव को रोते-पछताते ही जाना पड़ता है।

आणी भोमे तमने भूलव्यां,
सुध गई सरीर।
पड्या ते फंद अंधेर मांहें,
तेणे चितडुं न आवे धीर ॥३०॥

भावार्थ :- जिस प्रकार ब्रह्म के अनन्त गुण हैं, उसी प्रकार माया के भी अनन्त गुण हैं। अतः इस मानव तनरूपी भोम में आते ही इस मायावी शरीर को माया की प्रबल शक्तियों ने सब कुछ विस्मृत करा दिया अर्थात् पिण्ड जीवात्मा का घर है और ब्रह्माण्ड जीवात्मा सम्बन्धी कुटुम्बी-जनों का घर है। यसर्थ पिण्ड की इन्द्रियों ने और ब्रह्माण्ड के कुटुम्बीजनों ने जीव से परमात्मा की बुद्धि-स्मरणरूपी प्रतिज्ञा छीन

ली। अब जीवात्मा को यह भी सुध नहीं रही कि 'मैं कैसे शरीर में हूँ?' भूलन का मूल अज्ञान को कहते हैं। मायारूपी अंधकार-अज्ञान-भूलन ने मूल की स्मृति को ही विस्मृत करा दिया। अब मायावी अंधकाररूपी फन्द में फँस जाने के कारण जीव का मन, चित्तड़ुं-चित्त कोई भी अन्तःकरण स्थिर नहीं रहा। निश्चय में ही धैर्यता होती है। मूल की बातों में ही निश्चयता न मिलने पर जीव अपना धैर्य खो बैठा। अब बिना धैर्य के जीव मायावी फंद से कैसे छूट पायेगा? हरगिज़ नहीं!

साथी हता जे मांहेला,
तेणे दीठां आप अचेत।
जेनी जे जतन करतां,
तेणे बांध्यां बंध विसेष॥ ३१॥

भावार्थ :- साथी-जीवात्मारूपी राजा के अंतरंग प्रजारूप अष्ट पहरियों - १० इन्द्रियों, ४ अन्तःकरणों, इन्द्रियों के सिपाही सेनापति मन, मंत्री - बुद्धि इन सभी प्रजा ने आप स्वयं-राजा को ही अचेत देखा। देखा कि *'पीत्वा मोहमयी मदिरा'* अर्थात् जीवरूपी राजा तो मोहमयी मदिरा के नशे में रत होकर अचेत-सा

पड़ा है। अब क्या किया जाय? तो राजारूप जीव ने जिन-प्रजारूप इन्द्रियों, सेनापति, मंत्री आदि को जतन से उनका भरण-पोषण करके 'भविष्य में ये मेरे राज्य की रक्षा करेंगे'-ऐसा सोचकर रखा था, उसी प्रजा ने क्या किया? उन प्रजारूपी इन्द्रियों ने अपने राजा के विमुख होकर मायावी कर्म किया और अपने राजारूपी जीव को कर्मरूपी विशेष - *'गहना कर्मणो गतिः' गहनशील - न* छुटने योग्य बंधन में बाँधकर ८४ के दुःख में जकड़ दिया। जिस प्रकार यहाँ इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि अंगों द्वारा किए गए कलंकित कर्मों की सूक्ष्म छाप जीव पर पड़ती है। शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण आदि तो यहीं तक के हैं। दुःख-सुख तो जीव को भोगना पड़ता है। अब जीव तो गया, ८४ के चक्कर में!

घर मंदिर सहु वीसरयां
वीसरयां सेठ समरथ।
माल लुसानुं जाय रे मूरखो,
तमे कां निगमो ए ग्रथ॥३२॥

भावार्थ :- मायारूपी मद के नशे में मस्त होकर अचेत अवस्था में जीव ने पिण्ड-शरीर के अन्दर स्थित षट्चक्र - छः कमलों में से मूल

परात्मा का वास जिस कमल में होता है अर्थात् जीव स्वयं षट्चक्र-षट्कमल अतः शास्त्रों में वर्णित षट्चक्रों में से जिस हृदयचक्र - हृदयकमलरूपी घर-मंदिर में वास करता है, उस मंदिर में उसे किस प्रकार से रहना है तथा वह इस संसाररूपी बाजार में कहाँ से व्यापार करने आया है, इन दोनों ही बातों की सुध-बुध खो बैठा और विचार करने लगा, "समरथ सेठ-अद्वैत परब्रह्म परमात्मा ने मूल घर से आते समय मुझे कैसा माल देकर, कैसी प्रतिज्ञा कराकर इस संसाररूपी बाजार में व्यापार करने के लिए भेजा था? मैं जब मन्दिर छोड़कर सेठ के घर जाऊँगा, तो मेरी क्या दशा होगी?" अतः हे सत वस्तु का व्यापार करने आई ग्राहक आत्माओं! घर से आते समय अद्वैत परब्रह्म परमात्मा-सेठ ने जो इश्क, ईमान, ज्ञान, भक्ति, वैराग्यरूपी माल देकर हमें इस बाजार में व्यापार करने भेजा था, उस माल को काम, क्रोध,लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या, तृष्णारूपी चोरों के लशकर लूटकर ले जा रहे हैं। अतः हे मूर्ख आत्माओं! तुम सब ऐसे मूल ग्रथ-धन को गँवाकर क्या करना चाहते हो? मूल-धन को ही गँवा दोगे, तो व्यापार कैसे करोगे? इस तरह मूल-धन गँवाकर तुम सब मूर्ख क्यों बन रहे हो?

धन पोतानुं नव साचवो,

लूसे छे चोर चंडाल।

अधखिण माटे आप बंधावो,

हवणां वही जासे ततकाल ॥ ३३ ॥

भावार्थ :- हे धामस्थ पिपासु आत्माओं! तुम्हारा मूल धन ये, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, तृष्णा, छल-कपटरूपी चोर - चाण्डालों के लशकर लूट लिये जा रहे हैं। अपने मूल धन का इन चोर-चाण्डालों से जतन क्यों नहीं करते? इस आधे क्षण के जीवन में माया के परवश होकर, अपना मूल धन लुटाकर अपने को ८४ के बन्धन में क्यों बाँध रहे हो? यह पंचभौतिक शरीर तो पानी के बुलबुले सदृश क्षणिक-क्षणभंगुर है। अभी चला जाएगा। अतः पानी के बुलबुले सदृश इस क्षणभंगुर जीवन में भूलकर अपना लाखों का जीवन क्यों गँवा रहे हो? क्षणिक तन के जतन के लिए तो क्या-कुछ नहीं करते, तो इस क्षणिक जीवन के आगे लाखों वर्ष के जीवन के प्रति कुछ भी चिन्ता-फिक्र नहीं? क्षणिक जीवन के लिए महान नुकसान करके अपना यह अमूल्य तन व्यर्थ मत गँवाओ।

बांध्यो संसार एणी पेरे,

लागे नहीं कोई लाग।

जाए बंधाणां सहु जमपुरी,
केहने नथी टलवानो माग ।। ३४ ।।

भावार्थ :- इस प्रकार अज्ञानवश संसार के प्राणी क्षणिक जीवन की चिन्ता में अशुभ कर्म करके, कर्मरूपी बन्धन में बँधते चले जा रहे हैं। परलोक विषय की चिन्ता, ध्यान, मनन, विश्वास ही कलिकाल ने छीन लिया है। यह घोर जघन्य कलिकाल का समय ऐसा है कि इस काल में यदि किसी को परलोक विषयक बातें सुनाएँ-समझाएँ, तो कलिकाल के प्रभाव के फलस्वरूप हृदय में मायावी ममतारूपी तह पट जाने के कारण परलोक विषयक शब्द-वचन किसी के हृदय पर असर ही नहीं करते। मूल से ही परलोक विषयक विश्वास छीन जाने के कारण परलोक की बातें मौत-सी लगती हैं। परलोक विषय में किसी को लाग-समय नहीं है। इस तरह मायारूपी मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर, माया के परवश होकर अनर्थ कर्म करते हैं और कर्मरूपी बन्धन में बँधकर जमपुरी जाते हैं, जा रहे हैं। उक्त प्रकार के कर्मों के कारण किसी के भी पास उस जमपुरी के दुःख से बचने का माग-मार्ग नहीं रह जाता। अतः सभी को जमपुरी के मार्ग - ८४ के बन्धन में उलझाने

का कार्य माया ही कराती है।

लेखुं देसे जमदूत ने,
जे कीधुं छे आंहीं वेपार।
साचुं झूठुं तरत जोसे,
ए धरमराज वेहेवार।।३५।।

भावार्थ :-हे ग्राहक आत्माओं! जब यह क्षणिक जीवन पूरा होगा, तब यहाँ इस जीवन में तुमने मूल धन द्वारा जो-जितना भी व्यापार किया होगा, उन सारे कर्मों का हिसाब, लेखा-जोखा सेठ-धर्मराज के आगे होगा। वह धर्मराज तुम्हारे द्वारा किए गए एक-एक कर्म का हिसाब तुम्हें देगा। धर्मराज तो शुभ और अशुभ-दोनों कर्म तुरन्त ही देख लेगा, समझ जायेगा। जिस प्रकार यहाँ संसाररूपी बाजार में तुम लोग सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा करते आए हो, वैसा यमराज के दरबार में नहीं चलेगा। धर्मराज तुम्हारे एक-एक कर्म को तौलकर देखेगा। यदि इस संसाररूपी बाजार से तुमने दूसरों के लिए सुख खरीदा हो, तो तुम्हें भी धर्मराज के दरबार में सुख मिलेगा और यदि दुःख खरीदा हो, तो दुःख मिलेगा। फैसला इस प्रकार होगा। किंतु इतना फर्क होगा कि चाहे शुभ कर्म का फल हो

या अशुभ कर्म का फल, यहाँ की अपेक्षा वहाँ सौ गुना बढ़कर मिलेगा क्योंकि यह न्याय संसार का-सा न्याय नहीं है कि प्रलोभनवश न्यायाधीश तुम्हारे झूठे कर्मों को भी स्वीकार कर बदले में सुख ही दे देगा! वह तो धर्मराज के हाथ का व्यापार है। वहाँ थोड़ा-सा भी स्वार्थ-मतलब नहीं चलेगा!!

वेपार करतां जे बंध बांध्या,
ते लेखुं लेसे सहु तंत।
एकना सहस्त्रगणां करतां,
मारया अनेक जीव जंत॥३६॥

भावार्थ :- यहाँ संसाररूपी बाजार में आकर हम जो शुभ और अशुभ कर्मरूपी व्यापार करते हैं, वह कर्मरूपी बन्धन जीवात्मा को सूक्ष्म देह में बाँधता है। तन से, धन से अर्थात् स्थूल द्वारा इस बाजार में जो कुछ भी तुच्छ-अनिष्ट अथवा अशुभ कर्म बनता है, उसका लेखा-जोखा भारी कष्टप्रद होगा। पुनः मन अर्थात् सूक्ष्म द्वारा किए गए तुच्छ-अनिष्ट, शुभ-अशुभ कर्मों का तौल-मोल, लेखा-जोखा यमराज यह तन छोड़ते तुरन्त ही लेगा। वहाँ एक छोटे से कर्म का हिसाब छूटेगा नहीं। यहाँ संसार में एक जीव को सुख

देने के लिए हजारों जीवों का संहार किया जाता है। जैसे एक बच्चे को सुख देने के लिए माता-पिता-हजारों जीवों (मुर्गी, मछली) का संहार करते हैं, एक शेर का पेट भरने के लिए सहस्रों बकरियों का संहार किया जाता है। ऐसे सभी अनिष्ट कर्मों का हिसाब यमराज तुरन्त लेकर ही निर्णय करेगा।

लांचे तो तिहां नव छूटिए,
सगा न ओलखाण कोय।
मार भूंडा छे जमदूतना,
दया ते पिंडने न होय॥३७॥

भावार्थ :- हे धर्मस्थ आत्माओं! उस धर्मराजरूपी न्यायाधीश के शासन में लांचे-लांच (घूस) देकर असत् को सत में परिवर्तित कर दोषी को निर्दोषी नहीं बनाया जा सकेगा। वह धर्मराज यहाँ के न्यायाधिशों की तरह रिश्वतखोर नहीं है। वहाँ, यहाँ की तरह रिश्वत देकर निर्दोष होकर नहीं छूट सकोगे। फिर वहाँ कोई सगे-सम्बन्धी मदद करनेवाले भी नहीं होंगे। उजाड़-वीरान यमपुरी के बीच में यमदूत की मार खानी पड़ेगी। वहाँ तो केवल एक धर्म का ही सहारा रहेगा। अपने द्वारा किए गए सत्कर्म

ही वहाँ यमराज के मूगदल (गदा) के आगे ढाल बनकर हमारा बचाव करेंगे। यहाँ दूसरे जीवों को दुःख पहुँचानेवाले, अनिष्ट कर्म करनेवाले अत्याचारी हिंसक जीवों के ऊपर बदले में यमदूत की कष्टदायक मार (भूंडा मार) सहन करनी पड़ेगी । वह जीव के सूक्ष्म पिण्ड के ऊपर कभी दया नहीं करेगा। बल्कि वह तो धोबी की तरह सूक्ष्म देह को भली प्रकार से धोयेगा ।

धरम तणां सुख भोगवो,
पाप तणां ल्यो दुख ।
अगिन चोरासी लाख भोगवी,
अंते आव्या मनुख ।। ३८ ।।

भावार्थ :- हर मनुष्य 'परलोक में मुझे दुःख न मिले', ऐसा ही चाहता है। एक हिंसक कसाई को ही पूछो, वह भी 'मुझे स्वर्ग जाना है' ऐसा ही कहेगा। 'नर्क में जाना है' ऐसा कोई नहीं कहेगा। एक सिंह को पालने का धर्म करके, इस धर्म का सुख परलोक में भोगने की इच्छा रखनेवाला मानव एक जीव को पालने के लिए हजारों बकरियों, कबूतर आदि की हिंसा करता है। ऐसे हिंसक कर्म द्वारा भी यदि स्वर्ग, वैकुण्ठ का सुख मिलता, तो नर्क जायेगा कौन? इस

प्रकार के कर्म द्वारा हे जीवात्माओं! तुम धर्म खरीद रहे हो या धर्म के नाम पर पाप खरीद रहे हो? विचार करो! चौरासी के अग्नि सदृश दुःख भोगकर प्रभु दया से अन्त में मनुष्य जीवन में आने पर भी यदि तुम्हारी पशुवत् बुद्धि नहीं मिटी, तो फिर उसके बाद तुम कहाँ जाओगे? विचार-विवेक तो करो!

एके वोहोरया भगवानजी,
ते जाए नहीं जमपुर।
संगत कीधी तेणे साधतणी,
जई वैकुंठ कीधां घर॥३९॥

भावार्थ :- इस संसाररूपी बाजार में आकर जिस व्यापारीरूपी जीवात्मा ने हीरारूपी विष्णु-भक्ति की खरीदी की तथा उस हीरारूपी भक्ति में दिन दो गुना रात चौगुना वृद्धि कर अपनी भक्ति, तपस्या, चिन्तन-मनन के बल पर विष्णु भगवान के साथ एकाकार हो गयी, वह जमपुरी नहीं जायेगी क्योंकि उसने साधु की संगत की और साधु ने उसे विष्णु नाम दिया। उस हीरारूपी नाम द्वारा उसने इस जीवन में भक्तिरूपी कमाई की। साधु के संग के कारण सब कुछ छोड़कर वह विष्णु भक्ति में लीन रही। क्षणिक

जीवन के त्याग, वैराग्य के आधार पर लाखों वर्षों का अखण्ड सुख प्राप्त कर वैकुण्ठ में घर कर वहाँ के सुख की पात्र बन गयी। अब वह जब तक विष्णु लोक रहेगा, वहाँ तक सुख भोगती रहेगी।

एणी पेरे वेपार थाय,
हाट पीठ बजार।
आ भोमनी अनेक आंकडी,
तेनो केटलो कहुं विस्तार ॥४०॥

भावार्थ :- अतः हे जिज्ञासु व्यापारी आत्माओं ! इन विभिन्न मत-मतान्तरों, धर्म, सम्प्रदाय, मठरूपी बाजार के बीच में साधु की संगत से नामरूपी वस्तु को विचार-विवेकवत् पहचानकर भक्तिरूपी मार्ग द्वारा धैर्य रखकर, हिम्मत लेकर, निरन्तर क्रियाशील होकर व्यापार करना होगा। इस बाजार से यदि उक्त प्रकार से व्यापार कर सकोगी, तभी ८४ के चक्कर से बचकर अखण्ड सुख की पात्र बन सकोगी। अन्यथा इस दुस्तर हाट-पीठ में लगे ८४ के बाजार से अच्छी वस्तु को प्राप्त कर पाना मुश्किल है। पुनः वह नामरूपी हीरा सदृश वस्तु को प्राप्त कर लेने के बाद भी इस पिण्डरूपी

भोम अथवा ब्रह्माण्ड द्वारा उस नामरूपी तत्त्व को साधने में बाधक बननेवाली उलझनरूपी अनेक आँकड़ियाँ-जाल जीवात्मा के चारों ओर घिरी हुई हैं। उनका विस्तार-वर्णन बहुत है। उन सबका विस्तार मैं कहाँ तक समझाऊँ? अतः

मनुष्याणां सहस्त्रेषु
कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां
कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

-(गीता, अ. ७/श्लो. ३)।

मनुष्य योनि में आकर भी हजारों में से कोई विरला ही वैकुण्ठादि लोकों को प्राप्त कर पाता है अर्थात् वैकुण्ठ जाना भी सरल नहीं है।

झाझुं कहे दुख सहुने लागे,
सत वचन ना सेहेवाए।
सत सहुए उथापियुं,
असत ब्रह्मांड न माए॥४१॥

भावार्थ :- ज्यादा (झाझुं) कहने पर सभी को दुःख लगता है। सत्य का नाम सुनते ही झूठे में मिले हुए जीव नाक-भौंह चढ़ाने लगते हैं। दुःख सहन करने की बात सुनते ही दूर भाग

जाते हैं। कलिकाल में मोहरूपी मदिरा के मायावी नशे में उन्मत्त जीव इन्द्रिय सुख को ही सर्वेसर्वा मानकर उसी में गल रहे हैं। अतः वे परलोक के उदार सुख के प्रति विश्वास लाकर यहाँ दुःख उठाने के लिए कैसे तैयार होंगे? हरगिज़ नहीं! सत्य को सभी ने उखाड़ कर उजाड़-सा बना दिया है, नहीं के समान कर डाला है। *'सागर सब एक रस'* अर्थात् सब एक ही ओर चले जा रहे हैं। चारों ओर असत् का ही बोलबाला है। दूसरे जीव को दुःख देने में, उसकी हिंसा करने में, उसके साथ कुकर्म करने में किसी को जरा-सा भी संकोच नहीं होता। इस प्रकार असत् तो ब्रह्माण्ड में भी नहीं समा पा रहा है। असत् ने ब्रह्माण्ड की सीमा ही पार कर ली है। यह कलिकाल ऐसा है!!

हवे जे हेत वांछे आपणुं,
ते सुणजो सत द्रढ मन।
वाट लेजो वैकुंठ तणी,
तमे रखे जातां पुरी जम ।।४२।।

भावार्थ :- अन्ततोगत्त्वा हे मुमुक्षु जीवात्माओं! तुम सब में जिस किसी को परलोक पर विश्वास हो, शास्त्र, पुराणों की बातों

पर श्रद्धा हो, 'मैं भी एक रोज मरूँगा' - ऐसा भान हो, जो परलोक में अपना कल्याण (हेत) चाहता (वांछे) हो और जिसे ८४ के दुःख से डर लगता हो, वह इस बात को दृढ़ मन करके सुने। शास्त्रों की बातों पर विश्वास करके दुष्ट मन के बहाव में न बहे। विचार-विवेक कर हिंसक वृत्ति को छोड़ दो। दूसरों को दुःख के बदले सुख पहुँचाने की कोशिश करो। हीरारूपी भक्ति प्राप्त करके अशुभ कर्म छोड़कर त्याग, वैराग्य, धैर्य धारण कर वैकुण्ठ पहुँचानेवाले सत् कर्म करो। ऐसे कर्म मत करो, जो तुम्हें जमपुरी की ओर ले जायें। जमपुरी जाने का कर्म करके वैकुण्ठ के सुख की आशा मत रखो।

दुखने साटे अखंड सुख आवे,
अधखिण मांहे आज।
साहुकारो साधो वेहेवारियो,
एम सुणो कहे मेहेराज॥४३॥

भावार्थ :- हे साहूकारों! साधक और सत का व्यापार करने आई व्यापारी आत्माओं !! इस क्षणिक जीवन को समझो!!! समझ ऐसी रखो, जो आप्तपुरुषों ने शास्त्रों में बतायी हो। अपने मानव जीवन के महत्त्व को यहीं

समझकर मानव का कर्तव्यरूपी कर्म करो। जिस मानव तन को १४ लोक के मालिक त्रिदेवा भी धन्य-धन्य कह रहे हैं, उसे प्राप्त करने के लिए ललचा रहे हैं, उस क्षणिक जीवन में क्षणिक दुःख सहन कर यदि तुम सब सत वस्तु का व्यापार कर सकोगे, तो लाखों वर्षों के जीवन में अखण्ड सुख के भागी बन सकोगे। पुनः क्षणिक जीवन में मायावी मद के नशे में उन्मत्त होकर कुकर्म करते-कराते पंचविषय में ही भूले रहोगे, तो यहाँ की मूर्खता के कारण यमराज के द्वारा ८४ में कठिन दुःख सहन करना पड़ेगा। अतः आधे क्षण में किए गए कुकर्म के बदले में प्राप्त होनेवाले १०० गुना दुःख के बदले लाखों का सुख प्राप्त करो। इस तरह आप (श्री मेहराज) सभी को सतर्क कर रहे हैं।

– (किरंतन, प्र. १२५/चौ. ४३) ।

।। तमे जो जो रे मारा साध संघाती ।।

तमे जो जो रे मारा साध संघाती,
आ विस्व तणी जे वाट।
हार कतार चाले केडा बेडी,
भवसागरनो घाट ।। १ ।।

भावार्थ :- वेद, शास्त्रों की बातों को मानकर

आत्मा-परमात्मा विषयक साधन करनेवाली, पुनः जिस प्रकार मैं संसार को ठुकराकर परलोक बनाना चाहता हूँ, उसी तरह संसार को नश्वर समझकर परलोक विषय चिन्तित रहनेवाली हे मेरी साथी साधक आत्माओं! तुम सब इस संसार के मार्ग को देखो कि संसार के लोग किस मार्ग पर चल रहे हैं!! संसार के लोग हार कतार-ऊँट कतार, भेड़ कतार, चींटी हार की तरह एक के पीछे बिना समझे, बिना विचार-विवेक किये आँख बन्द करके कैसे चले जा रहे हैं! मूल से ही मार्ग पर चलानेवालों ने उन्हें जिस मार्ग पर चलाया, उसी को पकड़कर चलते चले जा रहे हैं। किंतु ये सब जा कहाँ रहे हैं? ये सब भवसागर-संसार में अधर्म कर्म करते हुए जमपुरीरूपी घाट में उतरते जा रहे हैं। यहाँ किया हुआ कर्म उन्हें सीधे जमपुरी के घाट में उतार रहा है। जैसे कामाक्षी देवी के ऊपर दिन में सैकड़ों बकरों की बली चढ़ाई जाती है। धर्म के नाम पर ऐसे हिंसक कर्म करने, अश्वमेध, नरमेध, अजमेध पुनः घर-घर में तरह-तरह के हिंसक मेध करनेवाले ये जीवात्मा कहाँ जा रहे हैं? हे मेरी साथी साधनशील आत्माओं! संसार के इस मार्ग को विचार-विवेकवत् देखो!!

स्वाथी मारग चाले संजमपुरी,
भार भरी रे अलेखे।
कुटम परिवार लादा सहु लादे,
आगली अजाडी कोई न देखे ।। २ ।।

भावार्थ :- देखो! हिंसा करते हुए मायावी विकार से ग्रस्त होकर कामी, क्रोधी, लोभी और कुकर्मी बनना स्वाथी-सरल है। यह स्वतः ही हो जाता है। जिस प्रकार सीढ़ी उतरना सरल होता है, परंतु चढ़ना मुश्किल होता है। उसी प्रकार माया के परवश होकर कुकृत्य करके जमपुरी रूपी घाट उतारनेवाला कर्म करना सरल है, किंतु सतगुण धारण करके, समदृष्टी, समव्यवहार करके ऊर्ध्व-वैकुण्ठ की सीढ़ी चढ़ने का मार्ग बड़ा कठिन है। अतः तुम सब क्यों नाना प्रकार के अनगिनत अशुभ कुकृत्यों का भार, पुनः *'मेरे न होने पर घर उजड़ जायेगा, सब मर जायेंगे'* - ऐसा मानकर कुटुम्ब-परिवार का पालन-पोषणरूपी भार जीवन भर लादे-हुये अधोगति के मार्ग पर चल रहे हो। इस प्रकार प्रभु-भजन भूलकर अशुभ कर्मों के भागीदार बनकर स्वयं ही अपना परलोक क्यों बिगाड़ रहे हो? 'मैं अपने परिवार का पालन-पोषण कर रहा हूँ,' ऐसा अभिमान लादकर अपना जीवन

ही बिगाड़ रहे हो। अरे! तुम क्या पालन-पोषण करोगे किसी का!! सबके पालनकर्ता तो वे प्रभु हैं। क्या तुम सब मृत्यु के बाद आगली-सामने आनेवाले अजाडी-वीरान जमपुरी के दुःख को यहाँ देख नहीं रहे हो, जो धन मद, जन मद और तन मद के नशे में चूर होकर मस्त हाथी का-सा कर्म करते चले जा रहे हो? *'जैसे भी हो मुझे धन प्राप्त हो, मेरा जीवन सुखी हो'* सबको यही धुन लगी है। यहाँ के क्षणिक, दुःखदायी व्यवहार को निभाने की चिन्ता सभी को है, *'परलोक बिगड़ रहा है'* - इसकी चिन्ता किसी को नहीं है। वह पीछे मिलनेवाले अखण्ड धाम के उदार सुख पर विश्वास कैसे करें? अभी जो नगद हाथ में है, उसकी चिन्ता ज्यादा है। अतः सारी दुनिया नगद के पीछे फिर रही है।

दुस्तर दोष न विचारे मद माता,
लडसडती चाल चाले।
उनमद थका अभिमान करे,
अने कंठ बांहोडीयो घाले ॥ ३ ॥

भावार्थ :- मोहमयी मदिरा में उन्मत्त होकर अनर्थ कुकर्म करके मरने के बाद दुस्तर योनि को प्राप्त करके कहाँ जाना पड़ेगा, जमपुरी के

लाखों वर्षों के भयंकर दुःख को खरीद तो रहे हैं, परंतु कैसे भोगेंगे, इन बातों पर विचार नहीं करते। जैसे-तैसे कुकर्म करके, छिना-झपटी और कुचाल चलकर शूरवीर बनकर *'सिर जाये तो जाये, पर धन मेरे ही हाथ में आये'* ऐसे कर्म कर रहे हैं। एक तो यौवन मद, धन मद और बल मद के नशे में उन्मत्त हैं। पुनः उसमें भी मान-प्रतिष्ठा मिले, तो *'मदमाते मरकट'* की तरह अभिमान में चूर होकर जोड़ी मिलकर एक-दूसरे के कण्ठ में बाँहें डालकर इस तरह फिरते हैं कि मानो वे किसी नए संसार में हों। ऐसी बेसुध मदमत्त जीवात्माओं को मौत और परलोक सम्बन्धी बातें सुनाने के पहले खुद को भी डरना पड़ता है।

उतम आगल वाट देखाडे,
मधम अधम सहु वासे।
भार करमनुं लेखुं रे अलेखे,
मनमां विचारी कोय नव त्रासे॥४॥

भावार्थ :- वेदों का अध्ययन करके वैदिक मार्ग के ज्ञाता ब्राह्मण चारों वर्णों में सबसे उत्तम कहलाते हैं। ये ब्राह्मण एक-दूसरे की जोड़ी में बाँधकर दो लोगों को एक-दूसरे की भक्ति में

लगा देते हैं और वैदिक मार्ग का अनुकरण करने का उपदेश देते हुए कहते हैं कि "तुम दोनों परस्पर भक्ति करना। एक-दूसरे को नहीं छोड़ना। औरत को अपने पति के सिवाय धर्म, ध्यान, भजन आदि करने की जरूरत नहीं है।" इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा बताये गये वैदिक मार्ग पर चलकर सभी लोग परलोक, परमात्मा को भूल बैठे हैं। चाहे मधम अर्थात् क्षत्रिय अथवा वैश्य हों अथवा अधम अर्थात् क्षुद्र हों, सभी उन्हीं के बताये हुए मार्ग पर चल रहे हैं। किंतु अपने द्वारा किए गए बेहिसाब अशुभ कर्मों का भार जीवन भर ढोते-ढोते अन्त में उक्त अशुभ कर्मों का दुःख लाखों वर्ष के जीवन में भोगना पड़ेगा। अतः '८४ के चक्कर में फँसकर मैं क्या करूँगा?' इस विषय में मन में विचार कर कोई नहीं डरता है। परलोक के दुःख के विषय में किसी को जरा-सी भी चिन्ता नहीं है।

बलिया बीक न आणे केहनी,
सांभले न कांई देखे।
साचा ए सूर धीर कहिए,
जे ए दोषने न लेखे ॥ ५ ॥

भावार्थ :- हे मुमुक्षु आत्माओं ! देखो-देखो!!

इस कलिकाल के लोग ऐसे बलिया-बलशाली अथवा शक्ति संपन्न हैं कि वे कभी यमपुरी में प्राप्त होनेवाले दुःखों की याद तक अपने मन में नहीं लाते। जमपुरी के कठिन और भयावह दुःख की वे कभी परवाह ही नहीं करते। साधु-सन्त अपने-अपने वचनों में चिल्ला रहे हैं, शास्त्र, पुराण आदि सद्ग्रन्थ पुकार रहे हैं, पुनः अपने पूर्वज अपनी ही आँखों के सामने जा रहे हैं, यह सब सुनते और देखते हुए भी अभिमान में ऐसे उन्मत्त हैं कि मानो उन्होंने मौत को ही वश में क्यों न कर लिया हो, मानो वे सदा अमर रहेंगे। इस प्रकार अभिमान में उन्मत्त होकर सभी मन मुताबिक़ अनर्थ कर्म करते चले जा रहे हैं। इनके कर्म, अभिमान, मद, और बल की उन्मत्तता को देखकर जमपुरी के मालिक यमराज इनके अन्दर जमपुरी के दुःख प्रति की निश्चिन्तता के विषय में कहते हैं कि सच्चा शूरवीर, बलवान, हिम्मतदार तो इन्हें कहना चाहिए। अहो! देखो तो!! कितने शूरवीर हैं ये कि जमपुरी के भयंकर दुःख से भी डरते नहीं!! ऐसे कठिन, दुस्तर दुःख को भी ये कलियुग के लोग गिनते नहीं!!!

काएर केम चाले एणी वाटे,
जेने लागे ते जमनो त्रास।

रात दिवस रुए कलकले,
सूकाए ते लोही ने मांस ।। ६ ।।

भावार्थ :- अतः हे धामस्थ जिज्ञासु आत्माओं! जो कायर अर्थात् डरपोक होगा, जमपुरी के दुःख के विषय में सुनते ही जिसका हक्का-बक्का छूट जाता हो, वह कुकर्म करके ऐसे मार्ग पर कैसे चल सकेगा? जिस मार्ग पर चलने से उसे जमपुरी के दुःख में अर्थात् जमघाट में उतरना पड़े। यमराज का डर उसे निरन्तर याद दिलाता रहेगा। अतः ऐसा जीव तो जमपुरी के दुःख के डर से रात-दिन कलकलाते हुए, रोते हुए प्रभु से यही पुकार करेगा, "हे प्रभु! उस जमपुरी के दुःख से मुझे बचाइए। उस दुःख में मुझे मत डालिए।" इस प्रकार रात-दिन रोते-रोते, पुकार करते-करते ही अपने तन का लहू और मांस सूखा देगा और प्रभु से प्रार्थना करते-करते ही अपने जीवन का अन्त कर देगा क्योंकि वह जानता है कि यहाँ वह भले सौ रोगों से पीड़ित होकर सौ वर्षों तक रोता-चिल्लाता रहे और जमपुरी का दुःख भले एक सेकेन्ड का ही हो, परन्तु जमपुरी का दुःख बढ़कर होगा। अतः ऐसे दुःख के घाट में उतरने के मार्ग पर वह कायर कैसे चल सकेगा?

वैकुंठनी पण विस्मी वाट,
ते जेम तेम सहेवाय।
संजमपुरीनां दुख घणां दोहेलां,
ते जिभ्याए न कहेवाय ॥ ७ ॥

भावार्थ :- हे आत्माओं! इस संसार से दो मार्ग से जीव पार होते हैं। एक मीर घाट और दूसरे तीर घाट। वैकुण्ठ मीर घाट है और जमपुरी तीर घाट है। व्यापार में चूककर निषेध कर्म करनेवाले जीव तीर घाट उतरेंगे अर्थात् जमपुरी जायेंगे, जो वैतरणी नदी के तीर पर है। जो भक्त विधि कर्म करके साधु की संगत से हीरारूपी वैकुण्ठ की भक्ति प्राप्त करते हैं, वे मीर घाट अर्थात् वैकुण्ठ जायेंगे, परंतु हीरारूपी भक्ति प्राप्त करने के बाद भी वैकुण्ठ का मार्ग चलना अत्यन्त कठिन है। राख घसनी पड़ती है। सतगुण धारण करके विनम्र बनना पड़ता है। काम, क्रोध, लोभ आदि से बचकर चलना बड़ा मुश्किल हो जाता है। परंतु इतना होते हुए भी यह दुःख तो क्षणिक अर्थात् ज्यादा से ज्यादा १०० वर्ष जैसे-तैसे भी सहन किया जा सकता है, किंतु जमपुरी का दुःख तो अत्यन्त ही कठिन है। वह तो इस जिह्वा द्वारा कहा भी नहीं जा

सकता, भोगना तो छोड़ ही दो। राजा परीक्षित और शुकदेव की दशा कैसी हुई थी? *'छपन रह्या बिना सांभल्या, तेतां सुणी न सक्यो राय'* अतः ८४ का दुःख ऐसा ही दुस्तर एवम् कठिन है।

आ सुपन तणां सुख सहू को वांछे,
ओल्या साख्यात दुख कोई न जाणे।
संजमपुरीनी वाट छे वस्ती,
ते माटे सहु कोय ताणे ॥ ८ ॥

भावार्थ :- स्वप्न के क्षणिक सुख की कामना संसार के सभी जीव करते हैं। इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होनेवाले नगद सुख की ही सारी दुनिया दीवानी (पागल) बन बैठी है। वास्तव में यहाँ का क्षणिक सुख तो परलोक का भास मात्र है। परन्तु वह परलोक का सुख तो पीछे मिलनेवाला है। नगद न होने पर उस उदार सुख की आशा कोई नहीं करते। सब यही सोचते हैं कि 'पाँच लाख रुपया पचास वर्ष बाद मिलने से, तो अभी का पाँच रुपया ही बड़ा है। परलोक का सुख पाँच लाख रुपया सदृश है।' परन्तु यहाँ के पाँच रुपये भर के सुख के फलस्वरूप कुकर्मों के कारण जमपुरी में जाकर लाखों वर्षों का अथाह दुःख सहन करना पड़ेगा, यह कोई विचार नहीं

करते। यसर्थ *'गहना कर्मणो गतिः'* शास्त्र, पुराणों द्वारा की गई ऐसी पुकार सुनते-सुनते भी जीव क्यों उस दुःखदायी मार्ग पर चल रहा है? जमपुरी का मार्ग चलना सरल है, क्योंकि उस मार्ग पर तो बस्ती-की-बस्ती चली जा रही है। 'इस मार्ग पर बस्ती है। अपने सभी साथी तो जा रहे हैं, तो मुझे जाने में क्या डर है?' ऐसा सोचकर संसार के सभी जीव कामी, क्रोधी, लोभी बनकर स्वतः ही उस मार्ग पर चले जा रहे हैं।

उजड मारग वैकुंठ केरो,
ते माटे कोय न चाले।
बेहेतल नहीं माहें चोर मले,
दूथामां पग कोई न घाले।। ९ ।।

भावार्थ :- हे मुमुक्षु आत्माओं! वैकुण्ठ का मार्ग जमपुरी का-सा सरल और बस्तीवाला नहीं है। वह तो रणभूमि-सा उजाड़ अथवा वीरान है। वैकुण्ठ के इस वीरान मार्ग पर कोई भी सहायक-साथी नहीं मिलते। इस मार्ग पर तो अकेले ही चलना पड़ता है। निर्गुण मार्ग में होकर हिमालय की गुफा में, निर्जन वन में, नदी के तट पर, जल में डूबकर जीवन को निभाना यह बड़ा उजाड़ मार्ग है। श्रृंगी ऋषि, विश्वामित्र,

सौभरि ऋषि आदि का जीवन इस मार्ग का दृष्टांत है। यसर्थ इस उजाड़ मार्ग पर जमपुरी जानेवाला कर्म करनेवाले (तथा सर्गुण के पुजारी) कोई भी जीव चल नहीं सकते । इस प्रकार एक तो यह मार्ग ऐसा उजाड़ है। दूसरे बस्ती न होने के कारण इस मार्ग पर अनेक चोर-डाकू आदि लुटेरे मिलते हैं, जो भक्ति के लिए निर्गुण होकर निर्जन वन में तपस्या करनेवाली आत्माओं को उनकी तपस्या से च्युत करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। जैसे - *'सुरगण आई कपाट उघाडे'* अर्थात् एकाग्र होकर तपस्या में मस्त, प्रभु-चिन्तन में तल्लीन इन्द्रियों के अधिष्ठात्रि देवगण आकर इन्द्रियों के कपाट खोलकर उन्हें प्रभु चिन्तन से विमुख और माया के प्रति मोहित बना देते हैं। जिस प्रकार नरनारायण को तपस्या से विचलित करने के लिए इन्द्र ने इन्द्रलोक की अप्सराओं को भेजा था। अतः *'छल बल वल कर आई समिपा, अंचल बात बुतावे दीपा'* अर्थात् विभिन्न रूप धारण कर मोहमयी माया तपस्वियों की तपस्या में विघ्न डालकर उनके हृदयधाम के अन्दर जल रही तपस्यारूपी अग्नि की लौ को बुझा देती है। उक्त प्रकार से उजाड़

वीरान, रणभूमि सदृश वैकुण्ठ के मार्ग पर शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, प्यास-ये षट ऊर्मी सदृश अनेक चोर मिलते हैं। पुनः पंचविषय सदृश अनेक डाकू भी मिलते हैं। ये कभी भी तपस्वी से अलग नहीं होते। सदा साथ ही चलते हैं। ये पंचविषय का बीज करोड़ों वर्षों की तपस्या के बाद भी निष्क्रिय नहीं होता। यह तो तपस्वी के अन्दर दबी हुई चिंगारी की तरह सदा मौके की फिराक में रहता है और जरा-सी हवा मिलने पर तुरन्त भभक उठता है। जिस प्रकार कई वर्षों तक तपस्या करने के बाद भी नदी के तट पर खड़े सौभरि ऋषि के अन्दर के कामदेव ने जल में मछली का संभोग देखने पर तूफान मचाया था, जिसके फलस्वरूप सौभरि ऋषि ने मानधाता राजा की पचास कन्याओं से विवाह कर अपनी भोग की तृष्णा को शांत किया था। अतः तरह-तरह के चोरों, डाकुओं, लुटेरों से युक्त इस वैकुण्ठ के मार्ग पर चलना दूथा अर्थात् जलते हुए तावे में पैर रखने अथवा पिघलाए हुए शीशे पर चलने सदृश कठिन है। अतः ऐसे कठिन, उजाड़ मार्ग पर कौन पैर रख सके, कदम बढ़ा सके?

वस्ती विना लिए चोर लूसी,
आडा दोष घणां रे दुकाल।

लोही मांस न रहे अंग मांही,
आडी खाइयो पर्वत पाल ॥१०॥

भावार्थ :- अतः वैकुण्ठ के उजाड़-वीरान बिना बस्ती के मार्ग पर चलने से काम, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपटरूपी चोर ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, तपस्या,त्यागरूपी धन को लूट लेंगे। इन चोरों से उक्त अमूल्य धन की रक्षा करना बड़ा भारी और कठिन है। एक ओर तो ये चोर हैं। पुनः दूसरी ओर कठिन और भयावह अनेक दुःख आड़े आयेंगे और तपस्वी, व्यापारी आत्माओं को मार्ग से च्युत करने के लिए सदैव तत्पर रहेंगे। एक ओर काम का दमन किया, तो दूसरी ओर लोभ पर्वतरूप होकर खड़ा है। पुनः लोभ का दमन किया, तो तीसरी ओर तृष्णा सिर ऊँचा किये खड़ी है। तृष्णा को मुश्किल से शांत किया, तो चौथी ओर स्वाद मुँह बाये खड़ा है। इस प्रकार के कठिन, कभी न मिटनेवाले निर्मूल बेहिसाब दुःख आड़े होंगे। इन सबको येन-केन-प्रकारेण दमन करते-करते तपस्वी आत्माओं के शरीर में न लोहू रह जायेगा और न मांस ! हड्डी मात्र कंकालरूप होकर भी आगे बढ़नेवाले तपस्वियों के मार्ग में एक ओर ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, त्याग, तपस्या द्वारा उत्पन्न

होनेवाला अभिमान पर्वत सदृश आड़ा आएगा, तो दूसरी ओर क्रोध और मान-प्रतिष्ठारूपी खाई गहरी में गहरी पाल-दिवालरूप में सामने आएगी। इस प्रकार पर्वतरूपी पाल-दिवाल और खाईरूपी खाड़ में ठोकर खाकर वैकुण्ठ के उजाड़ मार्ग पर चलनेवाले तपस्वी गिर जायेंगे। देखो .... देखो ! नारद के मोहनीरूप और मारकण्डेय के माया के दर्शन करने की इच्छारूपी पर्वत सदृश अभिमान ने उन्हें किस खाई में ढकेल दिया था।

ते माटे सहु चाले संजमपुरी,
ऊवट कोणे न अगमाय।
संजमपुरीना दोष जाग्या पछी,
श्रवणांए न संभलाय ।। ११ ।।

भावार्थ :- इस प्रकार निर्गुण होकर तपस्या करते-करते भी पर्वत सदृश अभिमान और खाई सदृश क्रोध और मान-प्रतिष्ठा सदृश पर्वत को पार करना मुश्किल और कठिन जानकर कोई भी उस उजाड़ मार्ग पर चलना नहीं चाहते। पुनः दूसरी ओर बस्ती न मिलने पर चोर-डाकुओं का भी डर है। इससे तो संजमपुरी का मार्ग बड़ा सरल है क्योंकि संजमपुरी जानेवाली सड़क

भी बड़ी है। उस मार्ग पर चलते समय काम, क्रोध, लोभ आदि का दमन भी नहीं करना पड़ता। फिर उस मार्ग पर तो बस्ती भी मिलती है। 'सभी उसी ओर जा रहे हैं, तो मैं क्यों पीछे हटूँ? भेड़ की जमात में मैं क्यों ऊँट बनूँ?' यह सोचकर सारी दुनिया संजमपुरी की ओर जा रही है। वैकुण्ठ का उजाड़ मार्ग खजूर के पेड़ सदृश अत्यंत ऊवट-ऊँचा चढ़ने में कठिन है। अतः *'चढ़ सके तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर'* ऐसा मार्ग है। ऐसे ऊँचे मार्ग पर किसी से चढ़ा नहीं जाता। संजमपुरी के मार्ग को सरल और सीधा समझकर सभी उस मार्ग की ओर अग्रसर तो हो जाते हैं, किंतु जागृत होने के बाद उस मार्ग का फल *'फलस्वरूप विषमेव'* अर्थात् इतना भयंकर, विषतुल्य और दुःखदायी लगेगा कि भोगने की तो बात ही दूर, श्रवणों से सुना भी नहीं जा सकेगा। देखो तो सही! उसका वर्णन सुनते-सुनते राजा परीक्षित की क्या दशा हुई थी !!!

वैकुंठ वाटनां दुख जो सहिए,
तो आगल सुख अखंड ।
वेद पुराण भागवत कहे छे,
भाई जिहां लगे छे ब्रह्मांड ॥१२॥

भावार्थ :- अतः हे जिज्ञासु आत्माओं! इस क्षणभंगुर क्षणिक जीवन में यदि तुम सब वैकुण्ठ के उजाड़ और कठिन मार्ग पर चल सकोगे, दुःख सहन कर सकोगे, त्याग और वैराग्य में रहकर जीवन व्यतीत कर सकोगे, तो *'फल स्वरूप अमृतमय'* अर्थात् यहाँ के १०० वर्ष के दुःख के बदले में लाखों वर्षों के जीवन के अखण्ड सुख के अधिकारी बन सकोगे। विष्णुलोक का सुख साधारण सुख नहीं है। संसार के जीवों के लिए तो यह सुख दुर्लभ में भी अत्यन्त दुर्लभ है। परन्तु उस सुख के विषय में वेद, पुराण, भागवत कहते हैं कि वैकुण्ठ का सुख भी तभी तक अखण्ड रहेगा, जब तक ब्रह्माण्ड रहेगा। फिर उसके बाद तो आवागमन है ही!

पण बंध छूटा विना न चलाय,
भाई ए छे करमनी काणी।
मन मांहें जाणे अमे सुख भोगवसुं,
पण जाए बंधाणां जमपुरी ताणी ॥१३॥

भावार्थ :- परन्तु हे आत्माओं! कर्मरूपी बन्धन से छूटे बिना वैकुण्ठ के मार्ग पर भी चला नहीं जा सकता। यदि बड़ा सुख प्राप्त करना

हो, तो उस बड़े सुख को प्राप्त करानेवाला साधनरूपी दुःख भी बड़ा ही होगा। यहाँ तन, वचन और मन से किए गए कर्मों की बंधनरूपी छाप जीव के सूक्ष्म शरीर पर भी पड़ती है। ये सूक्ष्म कर्म ही करमनी काणी-कर्म की जाली हैं। ये अशुभ कर्म ही जीव को संजमपुरी में डालनेवाली जालीरूप हैं। अतः मन से भी अशुभ-अनर्थ कर्म का चिन्तन बंद करना पड़ेगा। इन अशुभ कर्मरूपी जाली को काटे बिना वैकुण्ठ जाना सम्भव नहीं है। इस बात को समझे बिना लोग कर्म तो करते हैं, संजमपुरी के घाट में उतरने का और आस रखते हैं, वैकुण्ठ के सुख की। अनर्थ और निषेध कर्म करके मन में सोचते हैं कि 'मैंने इतना तप-यज्ञादि कर्म किया है। मैं वैकुण्ठ का सुख भोगूँगा।' परंतु कर्मरूपी बन्धन में पड़कर स्वतः ही जमपुरी की ओर ताणी-खींचे चले जा रहे हैं।

करम तणां बंध छे रे वज्रमय,
वेद पुराण एम बोले।
दया नहीं जीव हिंसा करे,
ते करम चंडाल नहीं तोले ॥१४॥

भावार्थ :- जीव को दुःख में डालने में

कर्मरूपी बन्धन वज्र सदृश जटिल होता है। जीव द्वारा की गई हिंसा, अनर्थ और निषेध कर्म ही अन्त समय में जमदूत बनकर आगे आयेंगे तथा यदि जीव ने शुभ कर्म किये हों, तो वही शुभ कर्म धर्मराज बनकर लेने आते हैं। यसर्थ ऐसे अनर्थ कर्म मत करो, जो अन्त समय में वज्रमय बन जायें। वेद, पुराण आदि सद्ग्रन्थ भी खुले आम चिल्ला रहे हैं कि ऐसे अनर्थ कर्मों का फल भी अनर्थ स्वरूप ही होगा, परंतु तब भी मोहरूपी मदिरा में उन्मत्त जीव परवाह नहीं करते। दूसरे जीवों के ऊपर जरा-सी भी दया नहीं आती। अपने स्वाद की पूर्ति के लिए अन्य जीवों की हिंसा करने में जरा-सा भी संकोच नहीं करते। ऐसे जीव कर्म के चण्डाल कहलाते हैं। ये जन्मजात चण्डाल नहीं होते। जन्मजात चण्डाल भी अन्य जीवों के प्रति ऐसी निर्दयता नहीं रखते। परंतु मायावी मद के नशे में उन्मत्त कर्मचण्डाल जीव 'हम जीवन में कैसे कर्म कर रहे हैं? इस कर्म का फल हमें कैसा भुगतना पड़ेगा?' इस बात का माप-तौल किये बिना, विचार-विवेक लगाए बिना, पशुओं से भी नीच बुद्धि रखकर कर्म करते चले जा रहे हैं। निम्नलिखित दृष्टांत इस बात का एक ज्वलंत उदाहरण है।

एक ब्राह्मण की धर्मशाला में एक अन्य ब्राह्मण का उतारा हुआ। उस धर्मशाला की एक ओर जाति के चण्डाल कुत्ते के मांस को अग्नि में डालकर भून रहे थे। वहाँ से निकलनेवाले धुएँ ने धर्मशाला में उतरे हुए ब्राह्मण को छुआ। धर्मशाला में उतरे हुए ब्राह्मण को धर्मशाला के मालिक ने वहाँ रुकने से मना कर दिया। पूछताछ करने पर कारण पता चला कि धुएँ के स्पर्श के कारण वह ब्राह्मण अछूता हो गया। वह तो अब ब्राह्मण नहीं रहा, चण्डाल बन चुका है। यसर्थ अब वह वहाँ नहीं रह सकता । तब कुत्ता भूननेवाले चण्डालों ने पूछा, "अच्छा! तू कहाँ से और क्या करके आया है?" तब पता चला कि वह अपनी लड़की को पाँच सौ रुपये में दूसरे के पास बेचकर आया था। तब जाति के चण्डालों ने कहा "हम तो जाति के चण्डाल हैं। परंतु यह तो कर्म का चण्डाल है।" अब विचार करो कि सच्चा चण्डाल कौन है?

वली जो जो रे तमे सास्त्र संभारी,
एणी पेरे बोले वाणी।
कुंजर कथुआ मेरु माणस मांही,
सरवे एक ज प्राणी ॥१५॥

भावार्थ :- हे सत् वस्तु की व्यापारी आत्माओं! तुम लोग शास्त्रों के वचनों को ज़रा विचार-विवेक करके तो देखो!! शास्त्र क्या कह रहा है और तुम क्या कर रहे हो? शास्त्र किस ओर चलने का आदेश दे रहा है और तुम शास्त्रों की आज्ञा के पालनहारी बनकर किस ओर चल रहे हो? शास्त्रों का कहना और अपने चलन का मिलान तो करके देखो! शास्त्र पुकार-पुकार कर कह रहा है कि हाथी (कुंजर), कथुआ (सबसे छोटा एक जीव), पर्वत-पर्वतराज -पार्वती (मेरु) और मानव (माणस) सभी के अन्दर एक ही चेतन व्यापक है। सभी दुःख-सुख के भागी हैं। फिर तुम अपने स्वाद के लिए धर्म के नाम पर दूसरों का गला क्यों घोंट रहे हो? दूसरों की हिंसा क्यों कर रहे हो?

अंन उदक वाय कीट पतंगमां,
सकल कहे छे ब्रह्म।
देखीतां आंधलां थाए,
पछे बांधे अनेक पेरे करम ॥ १६ ॥

भावार्थ :- अन्न, जल (उदक), वायु, कीट-पतंग आदि सकल में ब्रह्मरूपी चेतन व्यापक है, ऐसा कहा गया है। *'अन्नं ब्रह्म, जलं ब्रह्म'*

शास्त्रों में इस प्रकार लिखा देखते-देखते भी, सुनते-सुनते भी अन्धे क्यों बन रहे हो? पीछे इस जन्म में अज्ञानवश किए गए निषेध कर्मों के बन्धन में जीव फँस जाता है और जब तक कर्मरूपी बन्धन न कटे, तब तक जीव का उद्धार नहीं हो सकता क्योंकि *'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'*। पुनः वह बन्धन एक ही नहीं, अनेक प्रकार का कर्मरूपी बन्धन है। जैसे-बाहरी इन्द्रियों अर्थात् हाथ, पैर आदि शरीर के अंगों द्वारा किया गया कर्म, बल मद, धन मद, ज्ञान मद में किया गया कर्म, मन के संकल्प अथवा चिन्तन द्वारा किया गया कर्म। इन कर्मों की छाप विशेषतः सूक्ष्म जीव के लिए बन्धन रूप होगी।

पांच मलीने काया परठी,
ते माहें जीव समाणो।
थावर जंगम सकल व्यापक,
एणी पेरे पथराणो॥१७॥

भावार्थ :- सृष्टि के सकल प्राणियों का शरीर पाँच तत्त्वों के सम-मिश्रण से बना (परठी) हुआ है। जब पाँच तत्त्वों से मिलकर कलेवर तैयार हुआ, तो उसमें चेतन व्यापक हुआ। इस प्रकार

थावर-अचल पेड़, पौधे, वृक्ष, वनस्पति आदि तथा जंगम (चलायमान) पशु, पक्षी, चतुर्लक्षाणि मानव अर्थात् पाँच तत्त्वों से निर्मित सकल जड़ पदार्थ में चेतन-जीव का विस्तार (पथराणो) हुआ। अतः *'जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व किन्हों करतार'*।

हवे वरण वेष थया जुजवा,
एक उतम मधम।
वस्त खरीथी विमुख थया,
पछे चलवे ते अधमा अधम ॥१८॥

भावार्थ :-इस तरह जड़ में चेतन का विस्तार करके विश्व के रचयिता-मालिक ने ८४ लाख योनि की रचना की। चौरासी लाख योनि में चतुर्लक्षाणि मानव हैं। चौरासी के बाजार में आकर ४ लाख योनिवाले मनुष्य भी वर्ण-अवर्ण अर्थात् हिन्दू-मुसलमान या साधु-गृहस्थी अथवा पुरुष-स्त्री का न्यारा-अलग-अलग भेष बनाकर कार्य-विस्तार करने लगे। अब मानवमात्र में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षुद्र- ये चार वर्ण खड़े हुए। इन चार वर्णों मे से वेदों का मार्ग बताने का अधिकार प्राप्त होने के कारण ब्राह्मणों को चारों वर्णों में उत्तम माना

गया। पुनः ब्राह्मणों द्वारा बताये गये वेद के मार्ग पर मध्यम श्रेणी के लोग अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य तथा अधम श्रेणी के क्षुद्र लोग चलने लगे। वेदों में ज्ञान के चार दर्जे-कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान बताये गये हैं। जन-जन की समझ के मुताबिक ज्ञान देने का सूत्र बाँधा गया है। परंतु वेद का मार्ग बतानेवाले वेद के मूल टीकाकारों - ब्राह्मण ऋषियों ने मूल से ही सभी प्राणियों को परमात्मा तत्त्वरूपी सच्ची (खरी) वस्तु से विमुख करके कर्म में जकड़ दिया। मूल से ही कर्म को महत्त्वा देने और परम वस्तु को लोप कर देने के कारण सारी दुनिया मूल से ही उसी मार्ग पर चली जा रही है। इस प्रकार मूल से ही प्रधानता मिलने पर कलियुग के ब्राह्मणों ने कर्मकाण्ड के विषय में अधम से अधम कर्म करके कर्मकाण्ड को रोजगार के लिए व्यवसाय ही बना लिया तथा ज्ञान और भक्ति मार्ग को लोप करके कर्म से ही मुक्ति प्राप्त होने का झूठा प्रचार करने लगे। वास्तव में कर्म तो शरीर की पवित्रता के लिए है, न कि मुक्ति के लिए, इस प्रकार जानते-जानते भी वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण दुनिया को वैतरणी पार कराकर जमपुरी की ओर भेज रहे हैं। परंतु क्या वे स्वयं दान में गौ लेकर दूध खाने जैसा अधम में अधम कर्म करके

स्वर्ग, वैकुण्ठ जा सकेंगे?

हुं रे गेहेलो एवां वचन तो ज कहुं छुं,
पण न थाय बीजा कोय गेहेला।
विस्मी वाटे चाली न सके,
तेने लागसे वचन घणां दोहेला॥१९॥

भावार्थ :- परंतु हे सत् वस्तु का व्यापार करने आई मेरी साथी आत्माओं ! मैं तो पागल (गेहेलो) हूँ। दुनिया मुझे पागल, दीवाना ही तो कहेगी न! ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि जिस संसार को दुनिया बनाना चाहती है, मैं उसे जला देना चाहता हूँ। जिस परिवार को दुनिया बढ़ाना चाहती है, मैं उसे मूल से ही उखाड़ देना चाहता हूँ। जिस कर्म द्वारा दुनिया मुक्ति की आशा करती है, मैं उसे ठुकराकर चलनेवाला हूँ। मेरा मार्ग दुनिया के मार्ग से न्यारा-अलग ही है। तो दुनिया मुझे पागल न कहे, तो क्या कहे? परंतु मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि अन्य कोई भी मुझ जैसा पागल न बने । यदि बनोगे, तो तुम्हें भी संसार पागल कहेगा। त्याग, वैराग्य का मार्ग बड़ा ही कठिन मार्ग है। अपना घर आग में फूँककर हर कोई इस कठिन मार्ग पर नहीं चल सकता। अतः जो संसार से

प्यार करते हैं तथा संसार जिन्हें प्रिय लगता हो, उन्हें मेरे वचन बहुत ही कठिन लगेंगे, उसी प्रकार जिस प्रकार विषयी जीव को विषय छोड़ देने को कहने पर दुःख लगता है। परन्तु मैं सही बात कहना नहीं छोड़ूँगा। यदि मेरे वचन अच्छे लगते हों, तो उन्हें ग्रहण करना। अन्यथा *'तमे तमारी माया मांहें, सेहेजे भोगवजो सुख'*।

एक जीवने आहार देवरावे,
तेमां अनेक जीव संघारे।
एणी पेरे दान करे रे दयासुं,
ए धरम ते कां नव तारे ॥२०॥

भावार्थ :- संसार में ऐसा धर्म पालन करनेवाले भी कइयों लोग हैं, जो एक जीव को जीवंत रखने के लिए सहस्त्रों जीवों का संहार करते हैं। जैसे-एक सिंह को पालने के लिए नित्य प्रति उसके आहार हेतु एक बकरे का संहार करते हैं। अतः साठ वर्ष तक सिंह का पालन किया, तो साठ वर्षों में कितने बकरों की हिंसा हुई? पुनः एक लड़का है, जो कबूतर के मांस बिना खाना ही नहीं खाता। उसे एक कबूतर दिन में, एक कबूतर रात में, इस तरह नित्य प्रति दो कबूतर खिलाते हैं। तो उस लड़के के जीवन

भर के आहार के लिए कितने कबूतरों की हिंसा की? आहार के नाम पर धर्म करनेवाले ऐसे कई देशी-विदेशी लोग हैं, जो 'मेरे नाम पर सिंह को आहार देना' ऐसा कहकर पाँच-पाँच, दस-दस हजार रुपये धर्म में लगाते हैं। परंतु ऐसा करते वे यह नहीं सोचते कि वे धर्म कर रहे हैं या पाप? इस प्रकार लड़के और सिंह के प्रति दया करके कबूतर और बकरे का संहार करने से क्या किया हुआ धर्म उन्हें पार लगा सकेगा? क्यों नहीं लगायेगा? जरूर लगायेगा, परंतु कहाँ? तीर घाट या मीर घाट? अतः संजमपुरी के घाट में तो अवश्य तारेगा!

अनेक संघवी संघज काढे,
धन खरचे थाय मोटा।
बांधी करम करावे जात्रा,
जाणे करम सुं करसे ए खोटा॥२१॥

भावार्थ :- संसार में ऐसे अनेक धनाढ्य सेठ हैं, जो धर्म के नाम पर हजार-बारह सौ गरीबों को इकट्ठा करके पूरे संघ को तीर्थ-यात्रा कराते हैं और पूरे संघ-जमात पर तीर्थ-यात्रा में जितना भी खर्च हो, वह सारा खर्च स्वयं उठाते हैं। इस तरह सामूहिक तीर्थ-यात्रा निकालकर धर्म कराते हैं। इसी विषय का एक दृष्टांत है।

एक समय की बात है। एक धनाढ्य सेठ संघ लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए निकला। उसी रास्ते में एक दूसरा अत्यन्त लोभी सेठ रहता था। परंतु उसकी पत्नी बड़ी पतिव्रता थी। अतः वह सदैव अपने लोभी पति के कल्याण के बारे में सोचा करती थी। जब धनाढ्य सेठ का संघ उस पतिव्रता स्त्री के घर के सामने ठहरा, तब वह पति से नजर बचाकर संघ के मुनीम से मिलने आई और कहा, "इस संघ का जितना भी खर्च लगे, वह आप मेरे जिम्मे दे दीजिए और जैसे भी हो आप मेरे पति को अपने साथ ले जाकर तीर्थ करा लाइये।" ऐसा कहकर उसने मुनीमजी के हाथ में लाख रुपया रख दिया। अब मुनीमजी लोभी सेठ को मनाते-मनाते हैरान हो गए। अन्त में तीन दिन तक मनाने के बाद रोज का पचीस रुपया देने का कबूल करके लोभी सेठ को राज़ी किया। अब संघ चला। जब काशी पहुँचकर गंगा-स्नान करने का समय आया, तब सब तो गए स्नान करने! परंतु वह लोभी सेठ नहीं गया। क्योंकि स्नान करने के बाद तीर्थ में बैठे पंडे लोग चंदन करते थे और उन्हें दक्षिणा देना पड़ता था। यसर्थ दक्षिणा देना होगा, इस लोभ के कारण वह लोभी सेठ मध्य रात्रि में जब सभी सो गये, तब स्नान करने गया। जब वह सेठ

स्नान करके बाहर निकला, तब एक पंडे ने आकर उसे चंदन कर दिया और चार आना दक्षिणा माँग लिया। अब लोभी सेठ भागने लगा और पंडा उसका पीछा करने लगा। अन्त में पंडे ने अपनी कापी में उसका नाम लिखकर कर्ज के रूप में छोड़ दिया। लोभी सेठ ने सोचा चार आने के लिए वह घर तक थोड़ी आएगा। अतः सही कर दिया। जब सेठ तीर्थ करके घर लौटा, तब महीने दिन बाद एक रोज वह पंडा पुकारता-पुकारता उसके घर चला आया। यह देखकर सेठ आश्चर्यचकित रह गया और अन्दर जाकर उसने शीशे में रखा विष खा लिया। सेठ मर गया। सेठ की स्त्री पंडे से कहने लगी, "अब तो चले जाओ, सेठ तो मर गया।" तब पंडा कहने लगा, "तब तो मैं पुरोहित भी हूँ। दाह-संस्कार का कर्म करके भी दक्षिणा तो लेकर ही जाऊँगा।" एक ओर सेठ को श्मशान ले जाने की तैयारी होने लगी। तब धीरे से पंडे ने सभी को हटाया और लाश के पास जाकर कान में कहा, "देखो! तुम जीते मैं हारा। अब उठ जाओ। व्रहं ब्रूही" इस तरह कहकर दर्शन दिया। तब मृतक सेठ उठकर कहने लगा, "हे प्रभु! मेरे कौन-से पुण्य थे, जिससे आपने ऐसी कृपा

की।" तब पंडे ने कहा, "तुम्हारे लाखों रुपये तुम्हारे नाम पर तीर्थ में खर्च हो चुके हैं। यह उसी पुण्य का प्रताप है। अब देखो छिपे दान का महत्त्व!" सेठ जाग गया। उसके जीवन ने पलटा खाया। अन्त में वह वैकुण्ठ चला गया।

अतः ऐसे कई संघ-यात्रा निकालो। परंतु यदि धर्म करनेवाले के अन्दर, 'लोग मुझे वाह-वाह कहें। सभी के बीच मैं बड़ा कहलाऊँ।' ऐसे अभिमानपूर्ण भाव हों, तो अभिमान के कारण पुण्य क्षीण हो जाता है। लोग तीर्थ-यात्रारूपी कर्म में बँधकर धन खर्च करके तीर्थ में पाप काटने और पुण्य कमाने तो जाते हैं, परंतु बली चढ़ाकर, अभिमान करके, जमात के बीच बुरी नजर रखकर, अनर्थ कर्म करके सोचते हैं कि यहाँ तीर्थ में किया हुआ अशुभ कर्म भी शुभ बन जाता है। अतः वे अशुभ कर्म मेरा क्या बिगाड़ेंगे? ऐसा समझकर वज्रलेपी गुनाह की कमाई करके लौट आते हैं।

मन मांहे जाणे अमे धरम भोगवसुं,
प्रगट पाप न देखे।
सुभ असुभ बंने भोगववां,
ए धरमराज सर्वे लेखे ॥२२॥

भावार्थ :- कोई भी मानव चाहे वह एक हिंसक कसाई ही क्यों न हो, वह भी 'मुझे वैकुण्ठ जाना है' ऐसा ही कहेगा। 'नर्क जाना है' ऐसा कोई नहीं कहते। हिंसा करनेवाले, निषेध-कुकृत्य करनेवाले भी 'मैं अच्छा ही कर रहा हूँ' ऐसा समझकर ही कर्म कर रहे हैं। अर्थात् कामाक्षी देवी आदि तीर्थस्थानों में जाकर जीव हिंसा करने अथवा बली चढ़ानेवाले, पुनः सिंह को बकरा खिलानेवाले भी मन से तो यही सोचते हैं कि यहाँ किए हुए इस धर्म का पुण्य-फल परलोक में सुख से भोगेंगे, परंतु अपने द्वारा किए गए जीव हिंसा जैसे अधम कर्मों को नहीं देखते, जो प्रत्यक्ष स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। अपितु शुभ कर्म हों या अशुभ कर्म हों, अपने द्वारा किए गए दोनों प्रकार के कर्मों का हिसाब धर्मराज एक-एक करके अवश्य करेगा। उसके आगे एक भी कर्म छिप नहीं पायेंगे। वह तो हमें सारे कर्म भोगाकर ही छोड़ेगा।

तीरथ ते जे एक चित कीजे,
करम न बांधिए कोए।
अहेनिस प्रीते प्रेमसुं रमिए,
तीरथ एणी पेरे होए।।२३।।

भावार्थ :- तीर्थ तो वह है, जहाँ मन की एकाग्रता हो। पुनः *"तीर्थं परं किं ? स्वमनो विशुद्धम्"* अर्थात् अपने मन का विशुद्धिकरण ही तीर्थ है। मन के विशुद्धिकरण के बदले तीर्थ में अनर्थ होता हो, तो तीर्थ में जाना अकल्याणकारी ही है। तीर्थ में जाकर यदि मन, वचन अथवा शरीर द्वारा कर्म में बँध गए, तो वह तीर्थ वज्रलेपी पाप ही होगा क्योंकि मन, वचन अथवा शरीर द्वारा किए गए अशुभ कर्मों की छाप सूक्ष्म शरीर पर पड़ती है और इस सूक्ष्म कर्मरूपी जाली से निकलना बड़ा भारी है। यसर्थ घर में ही मन को परमात्मा के विशुद्ध प्रेम से शुद्ध करके प्रेम से परमात्मा के साथ आत्मा द्वारा खेलो। सभी जीवों में समभाव रखो। जहाँ तक बने, दूसरों को सुख पहुँचाओ। परमात्मा की सृष्टि के किसी भी प्राणी को बनाने का सामर्थ्य यदि अपने में न हो, तो उसकी हिंसा करने का हमें क्या अधिकार है? इस भावना से घर में बैठे-बैठे ही तीर्थ का भी परमतीर्थ हो जाता है।

दान करे सहु देखादेखी,
बांधे ते करम अनेक।
मन तणी आंकडी न लाधे,
तेणे बंधाए बंध विसेक ॥२४॥

भावार्थ :- लोग दान तो करते हैं, परन्तु एक-दूसरे की देखादेखी! इस तरह देखादेखी में किया हुआ दान, दान नहीं कहलाता। इस प्रकार के दान का फल प्राप्त नहीं होता। ईसा कहते हैं कि दान इस प्रकार से करो कि तुम्हारे एक हाथ से दिया हुआ दान दूसरा हाथ भी न देख पाये। परंतु यहाँ तो कोई पाँच पैसे का भी दान करता है, तो इस भाव से कि लोग उसे बहुत बड़ा दानी कहें। ऐसे अभिमानपूर्ण कर्म के बन्धन में दुनिया अनेक प्रकार से बँधी है। परंतु 'मन में कितनी शक्ति है? यह अपनी जीवात्मा को किस प्रकार अधोगति की ओर ले जा सकता है तथा किस प्रकार ऊर्ध्वगति की ओर पहुँचाता है? इसे किस प्रकार से वश में करना चाहिए? यह किस काम का है? इसे किस काम में लगाना चाहिए?' मन की इन सब आँकड़ियों को न जान पाने पर जीव अनेक प्रकार से मन के द्वारा कर्मरूपी बन्धन में जकड़ जाता है। इस प्रकार कर्म करता है मन और बन्धन में फँसता है जीव!

जीव संधारता मन न विमासे,
जाग करे नामनाए।
करम बंधातां कोई नव देखे,
पण लेखुं लेसे जमराए ॥२५॥

भावार्थ :- धर्म के नाम पर जीवों का संहार करते अथवा बली चढ़ाते समय मानव अपने मन में जरा भी विचार नहीं करता कि जीव हिंसा का फल दुःख है या सुख! बिना विचारे मूर्ख बुद्धि के परवश होकर लोग राजसूय, अश्वमेध, नरमेध आदि यज्ञ (जाग) करते हैं और नाम-यश कमाने के लिए बेशुमार धन लुटाते हैं, परंतु कोई यह नहीं देख पाता कि अभिमान में किये हुए उक्त अशुभ कर्मों के बन्धन में जीव जन्म-जन्मान्तर से बँधा चला जा रहा है। परन्तु उक्त वज्रलेपी कर्मों का हिसाब जमराज के आगे देते समय उन्हें पता चलेगा। जमराज सभी के कर्मों का लेखा-जोखा माँगेगा। वह छोड़ेगा नहीं। उसके आगे ठीक-ठीक हिसाब देते समय सबको पछताना पड़ेगा।

अनेक देरा परवो ने परवा,
धन खरचे मोटाई ।
प्रसिध प्रगट थाय पाखंडे,
जे मांहे भांड भवाई ॥२६॥

भावार्थ :- लोग यहाँ यह सोचकर धर्मरूपी कमाई करते हैं कि 'मेरे द्वारा यहाँ किए गए धर्म के पुण्य से मैं परलोक में सुख से रहूँगा।' ऐसा

सोचकर कोई देरा-मंदिर, अपासरा आदि खोलते हैं, तो कोई परवो अर्थात् छोटे-छोटे धर्मक्षेत्र खोलते हैं। पुनः कोई-कोई परवा अर्थात् बड़े-बड़े भोज-भोजनग्राही आदि की व्यवस्था भी कर देते हैं। परंतु अभिमान के कारण सब कुछ व्यर्थ चला जाता है। अन्यथा उक्त कर्मों को निःस्वार्थ और गोप्य भाव से करने पर पुण्य तो अवश्य मिलता है। अतः धर्म के नाम पर किए जानेवाले पुण्य कर्मों जैसे व्यभिचार, हिंसा तथा अभिमानपूर्ण कर्मों द्वारा प्रत्यक्ष ही पाप हो रहे हैं, ये बातें शास्त्र-सम्मत तथा शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। ये पाखण्डी लोग बिना जाने-समझे भांड़ भवाई सदृश नीच कर्म करते हैं। अतः भांड़ भवाई उन्हें कहते हैं, जो बाहर से तो बुरे-बुरे शब्दों का प्रयोग करके लोगों को हँसाने की अथवा सभा के बीच नाच-गाकर लोगों को आकर्षित करने की वृत्ति रखते हैं, परन्तु अन्दर लोगों को उक्त प्रकार से मोहित करके उनसे पैसे लूटने की नीच वृत्ति दबाये रखते हैं। उसी प्रकार ये बड़े-बड़े अभिमानी और दानी भी बाहर तो अपने पुण्य कर्मों का प्रदर्शन करते हैं, स्वर्ग और वैकुण्ठ के सुख की इच्छा रखते हैं, परंतु उक्त सभी दान-पुण्य नाम कमाने के लिए अभिमान रखकर करते हैं।

दान दया सेवा सर्वा अंगे,
कीजे ते सरवे गोप।
पात्र ओलखीने कीजे अरचा,
सास्त्र अरथ जोइए जोप ॥२७॥

भावार्थ :- हे जिज्ञासु आत्माओं! शास्त्रों की आज्ञा है कि दान करो, चाहे जीव मात्र पर दया करो अथवा सर्वांगों द्वारा सेवा ही क्यों न करो, परंतु ये सारे कर्म दिखावे के लिए मत करो। ये सारे कर्म गोप्य रूप में करने योग्य हैं, न कि दूसरों को बताकर करने योग्य। सेवा, दान, दया आदि कर्म जितना गोपनीय रूप में करेंगे, उसका पुण्य उतना ही बढ़ेगा। देखादेखी करने से सारा पुण्य-फल विफल हो जाता है। पुनः पात्र को देखकर, पहचानकर, ठहराकर बने तो योग्य पात्र की प्रत्यक्ष ही पूजा-अर्चना करो। परंतु ठहराना कैसे? तो शास्त्रों के अर्थ को लेकर उस पर विचार - विवेक करके, गहराई से मनन करो कि शास्त्रों में कैसे जीव की सेवा अथवा कैसे जीव को दान करने की आज्ञा है। जब निश्चित हुआ, शास्त्रों द्वारा प्रमाणित हुआ, तब उसी के प्रति गोप्य रूप से दान, दया, सेवा आदि करो।

आगे प्रगट कीधुं रे जनके,
दाधो पग अगिन।

त्यारे घणी खंडणी कीधी नव जोगी,
रखे वृथा जाय साधन ॥ २८ ॥

भावार्थ :- देखो! गोप्य और दिखावटी सेवा के विवेचन विषय में राजा जनक ने एक दृष्टांत प्रकट किया है। गुरुजन के आगे गुरुजन द्वारा प्रदत्त अपनी तप-शक्ति को प्रकट करने की इच्छा मात्र से ही राजा जनक का पैर अग्नि में जल गया था। तब नौ योगियों ने अपने शिष्य राजा जनक के प्रति दया-दृष्टि रखकर बहुत खण्डनी की थी और खण्डनीपूर्ण वचनों द्वारा उन्हें दान, दया, सेवा, जप, तप आदि का महत्त्व समझाया था। आज के बाद राजा जनक द्वारा की जानेवाली साधना व्यर्थ न जाये, यह सोचकर नौ योगियों ने उन्हें सचेत कराया था। इस तरह दूसरों को दिखाकर सेवा, दान आदि की शक्ति अथवा पुण्य का क्षय हो जाता है। हे आत्माओं! यह दृष्टांत किसी अन्य के लिए नहीं, हमारे लिए ही प्रकट हुआ है।

सत व्रत धारणसुं पालिए,
जिहां लगे ऊभी देह।
अनेक विघन पडे जो माथे,
तोहे न मूकिए सनेह ॥ २९ ॥

भावार्थ :- प्रत्येक व्यवहार को अन्दर की सत वृत्ति से धारण करो। सदा अपनी आत्मा की सच्चाई पर स्थिर रहकर कर्म करो, न कि छिपाकर 'अन्दर मल, बाहर छल' इस तरह की प्रवृत्ति मत रखो। आत्मा को प्रत्येक अन्तःकरण की अनर्थ वृत्ति से बचाओ क्योंकि यह आत्म-जागृति के लिए अत्यन्त हानिकारक है। अपने साधन-व्रत का पालन सच्चाई से तब तक करो, जब तक तुम्हारी देह खड़ी रहे। कर्तव्यपालन में अनेक विघ्न बाधक बनकर आड़े आ सकते हैं, परंतु धर्म की रक्षा के लिए सिर दे देना। अपितु अधर्म के लिए मत जीना। अनेक विघ्न आड़े आने पर भी अपने कर्तव्य के प्रति जो सच्चाई का व्रत है, जो स्नेह है, उसे मत छोड़ो। सच्चाई के प्रति का स्नेह क्या करेगा, यही न ? यह *'सत्य प्रेम धन'* ही तुम्हें परमात्मा से मिला देगा।

भागवत वचन जो जो रे विचारी,
सार अक्षर जे सत।
जीवने जगावो वचन प्रकासी,
रदे उघाडो मत ॥ ३० ॥

भावार्थ :- हे सत की व्यापारी आत्माओं! भागवत के वचनों को विचार और विवेकरूपी

नेत्र द्वारा स्पष्टतः परखकर देखो। वेद, पुराण, उपनिषद् आदि समस्त शास्त्रों का सार भागवत है। यही ग्रन्थ वेदान्त है अर्थात् इसी ग्रन्थ ने वेद से लेकर सभी ग्रन्थों के अन्त लक्ष्य को प्रकट किया है। इसी के अन्दर सत अक्षर अर्थात् बेहद के दरवाजे को प्रकट(प्रत्यक्ष) दर्शाया गया है। अतः ऐसे लक्ष्यदर्शी ग्रन्थ को आगे रखकर पेटार्थु बनकर जीवन मत गँवाओ। तुम्हारा हाट-बाजार यहीं तक का है। जरा परलोक की भी तो चिन्ता करो। भागवत के वचनों द्वारा अपने जीव में अपने सम्बन्धी के ज्ञान का प्रकाश पहुँचाकर जीव को जागृत करो और मानव जन्म सफल बनाओ। हृदय में पूर्व जन्म के पाप जो जमकर कपाटरूप बन गये हैं, उस कपाट को भागवत के वचनों तथा विचार-विवेक द्वारा 'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम्' इस तरह ठहराकर खोल दो अर्थात् भागवत द्वारा लक्ष्य ठहराकर जीवात्मा की मत-बुद्धि को जागृत कर लो।

ए माथे लेसे तेने कहुं छुं,
बीजा मा करजो दुख।
तमे तमारी माया मांहे,
सेहेजे भोगवजो सुख॥ ३१॥

भावार्थ :- किंतु हे आत्माओं! ये वचन मैं उन्हीं से कहता हूँ, जो इन्हें अपने सिर चढ़ाकर अनर्थ कर्मों से बचना और अपना उद्धार करना चाहते हैं। जिन्हें ८४ से स्नेह है, प्रीत है, वे मेरे ये वचन सुनकर बड़े दुःखी हो जायेंगे। परन्तु मैं तो ये सत्य वचन सत्यग्राही आत्माओं के लिए कह रहा हूँ। अन्य संसारी जीवात्माएँ मेरे वचन सुनकर दुःखी नहीं होना। यदि वेद, शास्त्रों के वचनों के प्रमाणयुक्त कहे मेरे वचनों को आप असत् मानते हों, तो अपनी सत माया में ही मस्त रहना। उसी माया को अनादि काल तक भोगते रहना। पंचविषयजन्य मायावी सुख भोगने में कसनी नहीं उठानी पड़ती। इन्द्रियाँ स्वतः ही माया की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं। अतः बड़ी सरलता से माया को भोगा जा सकता है। इस तरह सरलता से ही आप सब अनादि काल तक जन्मते-मरते रहना।

कोई एम मा केहेजो जे निंदया करे छे,
वचने कहुं छुं देखाडी।
साध पुरुषनी निद्रा भाजे,
आंखडी देउं रे उघाडी ॥३२॥

भावार्थ :– हे सतग्राही आत्माओं! मैं आज

तुम्हारे आगे प्रत्यक्ष रूप में सत्य वचन रख रहा हूँ। मेरे वचनों को सुनकर कोई ऐसा मत कहना अथवा सोचना कि ये तो हमारी निन्दा कर रहे हैं। हमारे चलन और व्यवहार की खण्डनी कर रहे हैं। परंतु मैं तो सत्य बातों को प्रकट करना चाहता हूँ। अतः सत्य बोलने से मैं किसी से नहीं डरूँगा। कहकर ही छोड़ूँगा। आप्तपुरुषों अथवा मूल आचार्यों ने जो वचन कहे हैं, वही वचन दिखाऊँगा, वही वचन आप सबको समझा दूँगा। अतः हे साधुओं! यदि आप सतग्राही भाव से मेरे वचनों को सुनेंगे, निष्कपट रूप से उस पर दिल से विचार करेंगे, तो जिस नींद के परवश होकर माया में बहे जा रहे हो, वह अज्ञानतारूपी निद्रा दूर हो जायेगी और आप सब सत्य वस्तु को प्राप्त कर सकोगे। जो जीव आँख बन्द करके माया में घुसे चले जा रहे हैं, उनके हृदय की विचार-विवेकरूपी आँखों को मैं ज्ञान के प्रकाश द्वारा खोल दूँगा और उन्हें सत वस्तु की प्राप्ति करा दूँगा। अतः मेरे वचनों का आप्तपुरुषों द्वारा बताए वचनों के साथ सन्तुलन करके देखो!

वचन केहेतां कोय दुख मा करसो,
सांभलजो सहु कोय।

सत केहेतां कोई वांकु विचारसे,
तो सरज्युं हसे ते होय ।। ३३ ।।

भावार्थ :- मैं सत्य वचन अवश्य कहूँगा। मेरे सत्य वचनों को सुनकर तुम्हारे चलन-व्यवहार में विघ्न आये, तो मुझसे दुःखी मत होना। सत्य वचन आपके आगे रखना मेरा कर्तव्य है। अतः मेरे वचनों को दृढ़ता से श्रवण देकर सुनो। सत्य वचन कहने पर यदि आप सब उलटा विचार करोगे, "मेरी निन्दा करते हैं" ऐसा कहोगे। सत्य को समझने में अपनी ओर से कमी रखोगे, वचनों को बिना समझे ठुकराओगे, तो मेरा अकल्याण नहीं होगा। यदि सत्य को ठुकराकर आप सब संजमपुरी के भागीदार बनते हो, तो मैं समझूँगा कि तुम्हारे नसीब में सृजनहार ने छठी के दिन जैसा भाग्य में लिख दिया था, वैसा ही हुआ। यदि तुम्हारे नसीब में संजमपुरी जाना लिखा होगा, तभी आप मेरे सत्य और प्रामाणिक वचनों को ठुकराकर उलटा विचार करोगे।

विप्र तणो वेपार भाजे छे,
भाई भागवत हाट न चाले।
तो ज फरी फरी ने मूलगां,
सर्व वचन जई झाले ।। ३४ ।।

भावार्थ :- हे साधक आत्माओं! वेदों में, शास्त्रों में और भागवत आदि सद्ग्रन्थों में ज्ञान अथवा भक्ति मार्ग नहीं है, ऐसी बात नहीं है। भागवत में वेदव्यास और शुकमुनि ने प्रत्यक्ष रूप में वेदों की सार-वस्तु को निकालकर रखे हैं। उन्होंने वहाँ प्रत्यक्ष लिखा है कि कर्म के द्वारा किसी काल में किसी की मुक्ति नहीं हो सकती क्योंकि कर्म से शरीर की शुद्धि होती है, आत्मा की नहीं और आत्मा की शुद्धि बिना मुक्ति नहीं है। पुनः आत्मा की शुद्धि ज्ञान और भक्ति से ही होती है। परंतु आज-कल के जो विप्र-ब्राह्मण भागवत लेकर ज्ञान बताने बैठते हैं, उन्हें परलोक की चिन्ता नहीं है। उन्हें तो यह चिन्ता है कि यहाँ किस प्रकार धन-सम्पत्ति प्राप्त हो और आनन्द से जीवन गुजरे। यसर्थ वे तुम्हें जानते और समझते हुए भी भागवत के अन्दर की सार वस्तु दिखाते नहीं हैं और कर्म को प्रधानता देकर कर्म द्वारा ही मुक्ति का प्रचार करते हैं। ज्ञान और भक्ति मार्ग समझाने पर कर्म छुट जायेगा। कोई कर्म नहीं करेगा, तो आमदनी कैसे होगी? यहाँ तो पाँच रुपये के भागवत द्वारा लाखों कमाना है। उसी से अपना और कुटुंबीजनों का जीवन निर्वाह करना है।

यसर्थ ज्ञान और भक्ति मार्ग द्वारा भागवत का हाट (बाजार) कैसे चलेगा? उनका व्यापार टूट जायेगा। अतः भागवत आगे पधराकर व्यापार कर रहे हैं। बार-बार, पुनः-पुनः, घुमा-फिराकर कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान में से कर्म को ही मूल-मुख्य बताकर कर्मकाण्ड के एक भी वचनों को नहीं छोड़ते तथा ज्ञान-विज्ञान और भक्ति मार्ग के एक भी वचन को नहीं छूते क्योंकि यदि कर्मकाण्ड के वचन छूट जायेंगे, तो व्यापार में लाभ कम होगा।

विप्र कुलीमां थया रे जोरावर,
सत वचन उवेखे।
पाखंडे खाय सरवे पृथवी,
लोभ विना नव देखे ।। ३५ ।।

भावार्थ :- कलियुगी प्रवृत्तियों की वृद्धि करने में कर्मकाण्डी ब्राह्मण बड़ा जोर दिखानेवाले बने हैं। कलियुग में जनता को कर्म के चंगुल में फँसाकर पापाचार को बढ़ावा देनेवाले, हिंसा करानेवाले कोई बने, तो वे हैं ब्राह्मण! ये चारों वर्णों में उत्तम कहलानेवाले ब्राह्मणों ने तीनों वर्णों को कर्म में जकड़ दिया और अपनी कमाई करने लगे। सत्य वचन

अर्थात् ज्ञान और भक्ति का मार्ग बतानेवाले वचनों को इन्होंने मूल से ही उखाड़ डाला है, लोप कर दिया है। कर्म की सत्ता को सबमें व्यापक बताकर अपने भोग के लिए ये लोगों से यज्ञ, सरस्वतीपूजा आदि कराकर उससे प्राप्त धन को मांस - मदिरा के सेवन में, वेश्यागमन, जुआ जैसे नीच कर्मों में लगाते। सत को छोड़कर पृथ्वी पर पाखण्ड का बरताव करनेवाले ये कर्मकाण्डी ब्राह्मण बने। लोभ के परवश इन ब्राह्मणों में लोभ के सिवाय ब्रह्मतत्त्व तो है ही नहीं। परंतु ब्राह्मण कहलाकर दुनिया में उत्तमाई दिखाते हैं।

ए रे लोभ घणो दोहेलो लागसे,
पण लाग्या स्वादे चित न आवे।
नीला बंध बांधतां सुख उपजे छे,
पण सूक्या पछी रोवरावे ॥ ३६ ॥

भावार्थ :- यहाँ जो लोभ के वश में होकर कर्मकाण्ड की कमाई का स्वाद ले रहे हैं, कर्मकाण्ड में चावल, घी, कपड़े, पैसे और श्राद्ध हो, तो दूहनी गाय लेकर घर में बैठकर चटकारे के साथ आनन्द ले रहे हैं, उन्हें अभी खाना तो सरल ही लगेगा, अभी समझाने पर कही गई

बातें चित्त में नहीं लगेंगी, परंतु जब पचाने का समय आयेगा अर्थात् परलोक पहुँचकर हिसाब-किताब देते धर्मराज के फैसले के अनुसार ८४ में जाकर जमराज के मुगदल की मार खा-खाकर पचाना पड़ेगा, तब वह समय बड़ा कठिन लगेगा। अभी कितना ही ज्ञान दो, समझाओ, परंतु चित्त नहीं लगेगा क्योंकि अभी चित्त स्वाद में लगा हुआ है, विश्वास नहीं आता। धूर्तता करके धर्म के नाम पर दूसरों की कमाई से मौज-मजा करना नीला बंध बाँधने जैसा ही है। जिस प्रकार यदि किसी पशु के शरीर का ताजा चमड़ा का एक हिस्सा काटकर किसी के शरीर में हुए घाव पर बाँध दिया जाय, तो जब तक वह चमड़ा ताजा रहता है, तब तक घाव में बड़ा ठण्डक-सुख पहुँचाता है। परंतु जैसे-जैसे वह चमड़ा सूखता जाता है, वैसे-वैसे बाँधे हुए घाव पर कष्ट-दुःख बढ़ता जाता है। अन्त में जब वह चमड़ा पूरा सूख जाता है, तब इतना रूलाता है कि वह कष्ट-पीड़ा असहनीय हो जाता है। उसी प्रकार यहाँ शास्त्रों के विधान के अनुसार न चलकर अनीति से लोभवश धन ऐंठनेवाले ब्राह्मणों को कर्मकाण्ड करके खाये हुए धन को पचाना कठिन होगा, जितना बाँधे हुए नीले बंध (पशु के शरीर का ताजा चमड़ा)

के सूख जाने पर दर्द सहन करना पड़ता है।

उनमद उतम असार जाग्या रे मांहेथी,
साध आपने कहावे।
कुकरम मांहे कहिए ए कुकरम,
बंध वज्रमय बंधावे॥ ३७॥

भावार्थ :- उनमद अर्थात् जाति मद, विद्या मद में चूर आजकल के ब्राह्मणों में धर्म और कर्म का विवेचन, ईश्वर से डर और परलोक की तनिक-सी भी चिंता नहीं रहती। कलियुगी माया के नशे में उन्मत्त होकर चलनेवाले इन ब्राह्मणों को *'त्रास स्वांत न होवे सुपने'* अर्थात् स्वप्न में भी परमात्मा से मिलन की चिंता और जमपुरी का भय नहीं सताता। वेदों के ज्ञाता-ब्राह्मण कहलानेवाले, दुनिया को परलोक का मार्ग बतानेवाले इन अग्रगण्य ब्राह्मणों के हृदय में वेदों का ज्ञान लेने के बाद भी परमात्मा के प्रति डर, नर्क के त्रास का भय तथा सत्य, ज्ञान, भक्ति अथवा लोक कल्याण नहीं है। अर्थात् सार तत्त्व उत्पन्न होने के बदले दुनिया को कर्म द्वारा ही मुक्ति बताकर जन्म-जन्मान्तर तक ठगना, वैदिक मार्ग के प्रति छलछिद्र करके दूसरों से धन लूटना, अपने आत्मीय भेष को

छोड़कर नाना प्रकार के छलयुक्त भेष बनाना, असत्य का प्रचार कर सत वस्तु को लोप कर देने जैसे असार तत्त्व ही उत्पन्न होते हैं। आज का ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व से सात कोस दूर चल रहा है। दिन भर भागवत करते दान-दक्षिणा में प्राप्त धन द्वारा व्यभिचार करने में ही उनका ब्राह्मणत्व टिका हुआ है। दुनिया के बीच उत्तमाई का ढोंग रचकर अपने को ब्राह्मण तो कहलवाते हैं, परंतु कर्म तो जाति के चाण्डालों से भी नीच करते हैं। इनके कर्म *'पंचमहा-पातकमय'* हैं। ऐसे कर्म करके ये अपने-आप को वज्रमय कर्म के बन्धन में बाँध रहे हैं। इनके अन्दर यदि परमात्मा और मौत के प्रति थोड़ा-सा भी भय होता, तो ये उनमद में अंधे होकर नहीं चलते।

दोस विप्रोने कोय मां देजो,
ए कलजुगना एंधाण।
आगम भाख्युं मले छे सरवे,
वैराट वाणी प्रमाण ॥ ३८ ॥

भावार्थ :- परंतु इन कर्मकाण्डी ब्राह्मणों को कोई दोष मत दीजिए। इसमें इनका दोष नहीं है। ये बिचारे तो जन्म से पहले ही मारे गये हैं।

इन्हें दोष देना और मुर्दों को कहना, एक ही है। ये ब्राह्मण जो कर्म कर रहे हैं, उसमें उनका कोई दोष नहीं है क्योंकि भविष्यवक्ताओं ने लाखों वर्ष पूर्व ही इनके चलन-व्यवहार विषय शास्त्रों में कह दिया था कि जब उत्तम वर्ण में जन्म प्राप्त करनेवाले ब्राह्मण चमार के-से नीच-में-नीच कर्म के प्रेमी बन जायेंगे, तब उस काल को मध्य कलियुग जानना। ब्राह्मणों के इन लक्षणों को कलियुग के चिन्ह बताए गए हैं। ऐसे नीच कर्म करके ये ब्राह्मण दुनिया को कलियुग का समय बता रहे हैं और भविष्य वक्ताओं की बातों को प्रमाणित कर रहे हैं। अतः आगमभाषियों द्वारा बताए हुए सारे लक्षण ब्राह्मणों में प्रत्यक्ष देखने को मिल रहे हैं, तो इन ब्राह्मणों का क्या दोष? अतः हे मानवों ! वैराट के लोगों के विषय में आगमभाषियों ने जैसी वाणी कही थी, उसी प्रमाण ठीक-ठीक मिल रही है। ब्राह्मणों के उक्त चरित्र को देखकर कलियुग से बचो !!

असुर थकी सम खाधा भभीषणे,
आगल श्री रघुनाथ।
तमसुं कपट करुं तो कुली माहें,
ब्राह्मण थाउं आप ।। ३९ ।।

भावार्थ :- हे आत्माओं! देखो!! यह एक प्रामाणिक बात है कि राम और रावण के युद्ध के दौरान असुर जाति में उत्पन्न विभीषण (रावण के भाई) ने श्री रामचन्द्रजी के आगे यह सौगंद (शपथ) ली थी कि यदि मैं रावण का पक्ष लेकर जासूसी की भावना लेकर कपट रूप से आपसे मिलने आया हूँ, तो मेरे इस कपट के बदले मुझे कलियुग के बीच ब्राह्मण होकर जन्म धारण करना पड़े।

त्यारे वारयो श्री रघुपति राए,
एवा कठण सम कां खाधा।
तमे छो अमारा हुं नेहेचे जाणुं,
मनमां मा धरजो वाधा ॥ ४० ॥

भावार्थ :- जब विभीषण के मुख से "ब्राह्मण थाउं आप" वह भी कलियुग के बीच में, ऐसे शब्द निकले, तब वे वचन सुनते ही श्री रामचन्द्रजी ने उन्हें तुरन्त रोकते हुए कहा, "आप ऐसी भयंकर सौगंद क्यों लेते हो? आप यदि रावण का पक्ष लेकर जासूसी करने मेरे पास आये होते, तब भी मैं आपको ऐसी कठिन सौगंद लेने नहीं देता क्योंकि कलियुग के ब्राह्मणों से नीच तो अन्य कोई भी नहीं होंगे। मेरे दुश्मन

को भी ब्राह्मण जन्म न मिले। मैं तो ब्राह्मण जन्म का नाम सुनकर भी डर जाता हूँ। फिर वह भी आपको? आप तो मेरे अपने सहोदर भाई समान हैं। 'मैं आपको अस्वीकार कर दूँगा' ऐसी चिन्ता आप अपने मन में कभी मत करना। आपकी सभी बातें मैं जानता हूँ। आप मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। चलिए मेरे शिविर में!" इस प्रकार कहते हुए श्री रघुपति विभीषण का हाथ पकड़कर उन्हें अपने शिविर में ले गए।

ए वचन आगम छे प्रगट,
ते तां सहु कोए जाणे।
उतम करे असुराई ते माटे,
ए कुली व्यापक एंधाणे॥ ४१॥

भावार्थ :- 'कलियुग में ऐसे ब्राह्मण होंगे' ऐसे वचन आगमभाषियों ने पहले ही प्रकट कर दिए हैं। ये वचन तो सभी ब्राह्मण पढ़ते तथा जानते भी हैं। उत्तम वर्ण में उत्पन्न होकर भी ये ब्राह्मण असुरों का-सा नीच कर्म इसीलिए कर रहे हैं क्योंकि उनके नसीब में पहले से ही ऐसा लिखा हुआ है। देखो न! आज के ब्राह्मणों में आगमियों द्वारा कहे हुए सारे चिन्ह व्यापक मिलते हैं। उक्त वर्णित लक्षणों से आज के एक

भी ब्राह्मण बचे नहीं हैं।

सुरता जाए सांभलवा ने चाल्या,
जाणे आंधलानो संग।
बाहेरनी फुटी काने बेहेरा,
रदे तणां जे अंध ॥ ४२ ॥

भावार्थ :- कलियुग के श्रोता कथा सुनने ऐसे जाते हैं। उन्हें जाते देखकर ऐसा लगता है कि मानो एक अंधा आगे जा रहा हो, उसके पीछे सैकड़ों अन्धे हार-कतार की तरह चले जा रहे हों। एक गया, तो देखादेखी सारे अन्धे चल पड़े। वह आगेवान अन्धा खड्डे में गिरे, तो उसके पीछे-पीछे चल रहे सारे अन्धे उस खड्डे में समा जायेंगे। बाहर की आँखें तो फूटी ही थीं, किंतु जो सामने प्रत्यक्ष है, वह भी नहीं दिखाई देता। कानों द्वारा भी बहरे हैं क्योंकि सत्य वचन सुनकर उस पर अमल नहीं कर सकते। पुनः हृदय की विचार-विवेकरूपी आँखें तो शून्य ही हैं।

भटजी कथा करवाने बेसे,
केने आंसुपात न आवे।
भांड तणी पेरे वचन वांका कही,
सुरताने हंसावे ॥ ४३ ॥

भावार्थ :- कलियुग के 'भट्टजी' कहलानेवाले कथाकार भी कलियुगी श्रोताओं की तरह ही हैं। उनके श्री मुख की चर्चा-कथा द्वारा किसी की आँखों से अश्रु गिरना तो छोड़ दो, अश्रु आँखों के अन्दर भी नहीं भर पाता। शास्त्रों के वचनों द्वारा भट्टजी को ही चोट नहीं लग पाती, तो उनके द्वारा कही कथा की चोट श्रोताओं को कैसे लगे? आज-कल के भट्टजी भाँड जाति के लोगों की तरह चर्चा में टेढ़े (अश्लील) शब्द कहकर दुनिया को हँसाकर पेट भरने की धुन में हैं। अतः श्रोताओं को हँसाने के लिए टेढ़े वचन कहते हैं और हँसाते तथा खुश करते हैं।

हंसी रमी कतोल करीने,
सुरता किवता उठे।
मनमां जाणे अमे ग्यान कथुं छुं,
पण बंध मांहेना नव छुटे ॥४४॥

भावार्थ :- इस प्रकार हँसते-हँसाते कोलाहल करके आनन्द-मज़ाक से ओत-प्रोत श्रोता और कथाकार कथा पूरी करके कथा-मण्डान से उठते हैं। भट्टजी अपनी कथा में श्रोताओं को जितना हँसा सकें, उतना ही उन्हें लगता है कि उन्होंने अच्छी कथा की, अच्छा

ज्ञान बताया। उनके ज्ञान द्वारा सभी बड़े खुश हुये। इस प्रकार एक ओर तो भट्टजी गद्गद हो उठते हैं तथा दूसरी ओर श्रोता भी मन में सोचते हैं कि उन्होंने आज तक जीवन में ऐसी कथा कभी नहीं सुनी थी। परंतु वक्ता और श्रोता-इन दोनों के हृदय का मायावी बन्धन कभी नहीं छुट पाता। वे और बँधते चले जाते हैं।

दुष्टे दुष्ट मले मदमाता,
ए कलजुगना रंग।
सत पंडित कहावे साध मंडली,
ए करमोना बंध ॥४५॥

भावार्थ :- कलियुग के प्रभाव में उन्मत्त ये श्रोता भी दुष्ट हैं और भट्टजी भी दुष्ट हैं। दुष्ट को दुष्ट मिले, यही मध्य कलियुग का रंग (आचरण) है। सत मार्ग दर्शानेवाले कुकर्मी पण्डित साधु-मण्डली का मुखिया बने हुए हैं और जमात को अकृत कर्म के बन्धन में फँसाकर अधोगति की ओर अग्रसर करवा रहे हैं। अतः साधन पक्ष का मार्गदर्शी पण्डित ही ऐसा है, तो उसके द्वारा बताया गया मार्ग चलकर दुनिया संजमपुरी नहीं जाएगी, तो अन्य कहाँ जाएगी?

तेम तेम कामस चढती जाए,
जेम जेम जरा बल आवे।
एम करतां जम कंकर आवे,
पछे जीत्युं रतन हरावे ॥४६॥

भावार्थ :- उपरोक्त प्रकार से श्रोता कथा में कामस (पापों) का नाश करने जाते हैं, परंतु उसे और बढ़ाकर आते हैं। उनके हृदय में इच्छा, तृष्णा, विषय-स्वादरूपी कामस (पाप) क्षण-प्रतिक्षण बढ़ते जाते हैं। जैसे - जैसे वृद्धावस्था (जरा बल) नजदीक आते जाती है, वैसे-वैसे इच्छा, तृष्णा, विषय-स्वाद उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं। मायावी विकारों की ओर उत्पन्न इसी खिंचाव के फलस्वरूप वे अधोगति प्राप्त करते हैं अर्थात् ऐसा करते-करते एक दिन जमदूत आकर उनका गला घोंटकर जीव में से प्राण निकाल देता है। तत्पश्चात् उन्हें मानव तनरूपी रत्न से हाथ धो बैठना पड़ता है अर्थात् मानव तनरूपी रत्न खोकर पछताते हुए ८४ में प्रवेश करना पड़ता है।

चरचा कथा ता तेहने कहिए,
जे आप रुए रोवरावे।

दिन दिन त्रास वधती जाए,
ते बंध रदेनां छोडावे ॥४७॥

भावार्थ :- चर्चा-कथा तो उसे कहा जाता है, जिस कथा की चोट से स्वयं वक्ता भी भाव-विभोर होकर घायल हो जाय और उसकी दर्दनाक चर्चा द्वारा श्रोताओं का अन्तःकरण भी छलनी हो उठे। संसार के प्रति उसके अन्दर घृणा उत्पन्न होती जाए, संसार और विषय के प्रति उसके अंदर दिन-प्रतिदिन डर बढ़ता जाय, विषयों का सुख उसे काले नाग के समान भयावह लगने लगे। ऐसी चर्चा-कथा ही श्रोताओं के हृदय में जमे पापों को भस्मीभूत करके उनके जीव को कर्मरूपी बन्धन से छूड़ा सकेगी।

वस्त थई अगोचर मांहें,
जीव चाले आणे आचार।
एणी चाले जो फल लाधे,
तो पामसे सहु संसार ॥४८॥

भावार्थ :- जिस चर्चा-कथा द्वारा प्राप्त करने की परमात्मा रूपी वस्तु इन्द्रियों से परे-अगोचर ही रह गई, तब ऐसा समझना चाहिए

कि ऐसी चर्चा-कथा द्वारा वक्ता और श्रोता - दोनों मात्र विषयवर्धक मजा लेकर अपने ऐसे आचरण द्वारा जीव को अधःपतन की ओर ढकेल रहे हैं। ऐसा करने से ही यदि परमात्मारूपी वस्तु प्राप्त होती, तब तो संसार के समस्त प्राणियों को परमात्मा प्राप्त हो जाते। तब चर्चा सुनने अथवा सुनाने की क्या जरूरत? यदि परमात्मा ऐसे सरलता से ही मिलने लगें, तो नर्क में कौन जायेगा?

साध रह्या पंथ जोई जोई,
पण केने न लाध्यो सेर।
अनेक उपाय करी करी थाक्या,
पण न टले ते भोमनो फेर॥४९॥

भावार्थ :- साधक पुरुषों में परमात्मा को प्राप्त करने के लिए 'सृष्टि के शुरू से लेकर उन साधकों के बाद, भविष्य में विभिन्न मत-पंथ के कैसे-कैसे ऋषि-महर्षि हुए? उन्होंने परमात्मा प्राप्ति के लिए कैसे-कैसे दुःख उठाये? इतना दुःख उठाने पर भी जब वे सेर - मार्ग प्राप्त नहीं कर सके, तब अन्त में उन्होंने कलियुग में जन्म प्राप्त करने की वाञ्छना की।' इस तरह विभिन्न पंथों की साधनाओं का अवलोकन

किया तथा उस तत्त्व को प्राप्त करने के लिए स्वयं भी जीवन भर अनेकों उपाय करते-करते थक गए। परंतु उस सत वस्तु को प्राप्त नहीं कर सके। उलटे माया में उलझ पड़े। इतना प्रयत्न करने के बाद भी उनका इस मायावी भोम से जन्म-मरणरूपी फेरा छूट नहीं सका। तो क्या उक्त प्रकार से अधःपतन की ओर ढकेलनेवाले आचरणों द्वारा मौज़- मजा करने पर यदि उस सत्य वस्तु-परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती, तो नर्क कौन जायेगा? जरा विचार तो करो!

ए अमल तणो फेर जिहां नव जाय,
तिहां करे छे विकलना जेम।
ए अटकले वन वन जई वलगे,
ते फल पामे केम ॥ ५० ॥

भावार्थ :- मानव तन द्वारा ही मायावी अमल को मिटाया जा सकता है और यही मानव तन जीव को ८४ में ढकेलने में कारणरूप है। अतः जब तक यह काम, क्रोध, लोभ, मद, मोहरूप पंचविषयजन्य मायावी अमल-नशा नहीं उतरेगा, तब तक विषयों में रत जीव बेसुध अवस्था में ८४ के चक्कर में ही फँसा रहेगा।

बहुत मुश्किल से प्रभु दया प्राप्त करके ८४ के चक्कर से निकलकर यदि वह मानव तन में आ भी जाता है, तो जीव का उद्धार करने हेतु चार सम्प्रदाय या चार धाम रूपी वन-वन में यह अटकले-अनुमान लगाकर आश्रय लेता है कि 'ये मुझे पार पहुँचायेंगे।' परंतु वन-वन (सम्प्रदाय-सम्प्रदाय) भटकते-भटकते वह फिर उसी मायावी चक्कर में फँस जाता है। अतः जिस आत्मा-परमात्मारूपी फल की खोज वह ऊपर स्वर्ग-वैकुण्ठ की ओर कर रहा है, जहाँ वह मूल से ही गलती कर रहा है, तो नीचे मृत्युलोक में मानव तन द्वारा प्राप्त किया जानेवाला वह फल-सत वस्तु परमात्मा उसे कैसे मिलें?

व्रक्ष तणी ओलखाण न उपजे,
जे ए फलनुं छे आ वन ।
केम फल लाधे सोध विना,
जेनुं विकल थयुं छे मन ॥५१॥

भावार्थ :- जिस चार सम्प्रदायरूपी उस वन में, जो वन जीव को स्वर्ग-वैकुण्ठरूपी फल की प्राप्ति कराते हैं, जीव आत्मोद्धार हेतु भटक रहा है, उस वन अर्थात् चार सम्प्रदायवालों को पिण्ड

और ब्रह्माण्डरूपी वृक्ष की पहचान ही नहीं है कि पिण्ड का गठन किस प्रकार का है और ब्रह्माण्ड की सृजना किस प्रकार की है, तो ऐसे वनों में भटकनेवाले जीव को वन के बीच में से आत्मा-परमात्मा लक्ष्यरूपी मार्ग कहाँ से मिलेगा? अतः वह ८४ के चक्कर में ही फँसता चला जायेगा। पुनः जिस जीव का अन्तःकरण ८४ के चक्कर में भटकते-भटकते विकल हो चुका है, ऐसा जीव परमात्मा तत्त्व की खोज किस प्रकार कर सकेगा? अपितु जब तक अच्छी तरह जानकर शास्त्रों, पुराणों, उपनिषद् एवम् वेद आदि सद्ग्रन्थों के वचन पर विचार-विवेक करके, गहराई से खोज करके आत्मा द्वारा निर्णय नहीं करोगे, तब तक फल कैसे मिलेगा?

उनमाने फल जोवा जाय,
सामां वीटे करमना जाल।
मनमां जाणे हुं बंध छोडुं छुं,
पण बंधाई पडे ततकाल॥५२॥

भावार्थ :- "यह सम्प्रदाय बड़ा है। इसमें परमात्मारूपी फल अवश्य होगा" ऐसा अनुमान लगाकर लोग फल प्राप्त करने हेतु सम्प्रदाय में प्रवेश करते हैं, परंतु बाहर दुनिया में बेशुमार

लोक-प्रसिद्ध तथा बड़ी संख्यावाला कहलानेवाले बड़े सम्प्रदाय में प्रवेश करते ही वे प्रत्यक्ष ही कर्म का जाल रचने लगते हैं। जीव उस धर्म में प्रवेश कर लगाये गये कर्म का पालन करते हुए सोचता है कि वह तो ८४ का बन्धन काट रहा है। परंतु वास्तव में तो वह कर्म-बन्धन में भयंकर रूप से बँधता चला जाता है। उसके कर्मरूपी बन्धन उसे और जकड़ने लगते हैं।

जईने जुए फल जुआ थईने,
अनेक कीधी उनमान।
एक मांहेथी चोरासी बुधें बोल्या,
पण पाम्या नहीं परा धान ॥५३॥

भावार्थ :- जैनियों ने अर्थात् जैन सम्प्रदाय के आचार्यों ने परमात्मारूपी फल को ढूँढ़ने के लिए तरह-तरह की अटकलों-अनुमानों द्वारा ८४ गच्छ (गुट्ट) बनाकर ८४ ग्रन्थों की रचना की अर्थात् एक मूल ऋषभ देव द्वारा पृथक होकर ८४ गच्छों ने ८४ बुद्धि में होकर परमात्मा तत्त्व की खोज करने का प्रयत्न किया, परंतु परमात्मारूपी परमतत्त्व के चिन्ह (परा धान) को भी वे प्राप्त नहीं कर सके।

इहां अनेक बुधे बल कीधां,
अने अनेक फराया मन।
फल थयुं अगाध अगोचर,
साध रह्या जोई जोई अनु दिन ॥ ५४ ॥

भावार्थ :- संसार के बीच उत्पन्न हुए अनेकों ऋषि, महर्षियों तथा बुद्धिशाली मनीषियों ने कर्म को सर्वेसर्वा मानकर परमात्मा तत्त्व को प्राप्त करने हेतु कर्म पकड़ाया, तो अनेकों ने विषयों से मन को फिराकर परमात्मा प्राप्ति के मार्ग पर लगाया। पुनः कितने खोजी लोगों ने उस फल को प्राप्त करने हेतु वन-वन भटकने में ही अनु दिन अर्थात् वैकुण्ठ के आगे मृत्युलोक की १०० वर्ष की मनुष्य आयु गुज़ार दी, परंतु इतना यतन करने के बाद भी परमात्मारूपी फल तो गुण, अंग, इन्द्रियों, मन, वचन से अगोचर-परे ही रह गया।

वली जे साध पुरुष कोय कहावे,
ते कामस टालवा जाय।
सो मण साबु घसी पछाडे,
निरमल तोहे न थाय ॥ ५५ ॥

भावार्थ :- इस संसार में साधु पुरुष

कहलानेवाले लोग जीवन भर तो अनर्थ कर्म करके पाप जमा करते हैं, नाना प्रकार के मद में उन्मत्त होकर जवानी में अन्धे होकर कर्म करते हैं। जब इन्द्रियाँ शिथिल हो गई, शरीर के अंग-अंग ढीले पड़ गए और जब मौत नजदीक आ पहुँची, तब वे अपने कामस (पापों) को दूर करने के लिये तीर्थ, मंदिर आदि धार्मिक स्थानों में जाकर पुण्य करके मुक्ति प्राप्त करने की चाह करते हैं। परंतु जीवन भर का जमा हुआ पाप अब अन्त समय में कैसे धुल सकेगा? जिसका जीवन ही पापमय बन चुका है, उसका उद्धार क्षण भर में कैसे हो सकेगा? वृद्धावस्था में जब कानों से सुना नहीं जाता, आँखों से देखा नहीं जाता, शरीर से बैठा नहीं जाता, तो ऐसे शिथिल हो चले मैले मानव तनरूपी वस्त्र को सौ मन साबुन घिस-घिसकर भी साफ-निर्मल बनाये जाने का प्रयत्न किया जाय, वह मानव तनरूपी वस्त्र कभी निर्मल नहीं हो पायेगा। अपितु वह तो चिथड़ा होता चला जायेगा।

सो रे वरसनी जटा बंधाणी,
ते केम छोडी जाए।
अंतकाल सुरझावा बेठा,
लेई कांकसी हाथ मांहे ॥ ५६ ॥

भावार्थ :- जिस प्रकार नियमित न सँवारने पर बाल सौ वर्ष में जटा सदृश लंबे और लकड़े सदृश कठोर बनकर अकड़ जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ नियमित रूप से नित्य प्रति साधक द्वारा अपनी सुरता को परमात्मा के चरणों में न लगाने के कारण कलियुग के मानव की आयु - १०० वर्ष की अवधिकाल में सुरतारूपी जटा विषयों के परवश होकर बँधती चली जा रही है। बाल सँवारने के समय में तो वह साधक सोचता है "अन्त काले मामेव" जीवन भर का पाप अन्त में तीर्थ में जाकर धो दूँगा अर्थात् जीवन के अन्त समय में एक ही साथ बाल सँवार कर मुक्ति प्राप्त कर वैकुण्ठ चला जाऊँगा। अतः ऐसा सोचकर अन्तकाल आने पर वह गीता, भागवत की ज्ञानरूपी कंघी को दिलरूपी हाथ में लेकर विषयों में उलझी अपनी सुरतारूपी जटा को सुलझाने का अर्थात् सीधे परमात्मा के चरणों में लगाने का प्रयत्न राजा षट्वाङ्ग की तरह करने लगता है, परंतु *'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'* अर्थात् अंत काल में तो क्या, वह कभी भी अपने कृत कर्मों को भोगे बिना इस पंचभौतिक तन से छूट नहीं सकेगा। अतः सुरता को परमात्मा के चरणों में लगाना तो तभी सम्भव है, जब साधक के पूर्व जन्म के संस्कार

अच्छे हों, कुसंगत में फँसकर उसने कुकर्म न किये हों तथा मुख्यतः यदि उसे गुरु भी वैसे ही मिले, जैसे महाराजा छत्रसाल को महाप्रभु श्री प्राणनाथजी मिले, राजा परीक्षित को अवधूत शुकदेवजी मिले, वाल्मीकि को नारदजी मिले तथा धनुर्धर अर्जुन को श्री कृष्णजी मिले ।

ए करमना बंध जोरावर,
ते छूटे नहीं केणी पर ।
बलिया बल करी करी थाक्या,
निगमिया अवसर ।। ५७ ।।

भावार्थ :- हे साधक आत्माओं! यह कर्म का बन्धन अत्यन्त बलशाली है । सकाम, निष्काम, विधि, निषेध, कर्म, अकर्म, विकर्म-कर्म के इन भेदों की सूक्ष्मता अत्यन्त गहन है । इस गहनता का पार नहीं पाया जा सकता । यदि हम सोचें कि हम सकाम कर्म बन्द कर दें, तो निष्काम कर्म शुरू हो जायेगा । निष्काम कर्म छोड़ते ही स्वतः ही कर्म शुरू हो जायेगा । अतः कर्म को रोका नहीं जा सकता क्योंकि कर्म मन का स्वभाव है । जागृत अवस्था में यह विषय के पीछे दौड़ता है । स्वप्न में स्वप्न रचता है । नींद में श्वास के रूप में दौड़ता है । अतः सूक्ष्म कर्म के बन्धन

ही जीव के लिए मुख्य बन्धन होते हैं। सूक्ष्म बन्धन भोगे बिना जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इन्हीं सूक्ष्म कर्मों को जलाने के लिए उद्धव, सौभरि, श्रृंगी, जड़भरत, अजामिल जैसे बलशाली योगियों तथा तपस्वियों को भी अनेकों उद्योग करने पड़े। अवतारों में परशुरामजी का चरित्र देखिए, जो आज तक कदली नामक तपोस्थान में अपने कर्म जलाने के लिए तपस्या कर रहे हैं। ऐसे-ऐसे बलशाली योगियों ने भी हाथ आए मानव तनरूपी अमूल्य रत्न को अन्त में 'अनेक क्रोधी काल क्रान्त थईने, भाज्या ते हाथ रतन' अर्थात् काम, क्रोध आदि विषयों के परवश होकर निरर्थक ही गँवा दिया।

बंध छोडे जई आकारना,
मोटी मत धणी जे कहावे।
पण बंध बंधाणां जे अरूपी,
ते तां द्रष्टे केहनी न आवे।।५८।।

भावार्थ :- इस शरीर द्वारा किये गये कृत कर्म के सूक्ष्म बन्धनों को छूड़ाने के लिए परम मत के धनी अथवा बड़ी बुद्धि के मालिक कहलानेवाले शुकदेव, वाल्मीकि, राम, कृष्ण

आदि बलशाली पराक्रमियों को भी अनेकों उद्यम करने पड़े। कइयों ने जल में डूबकर साधना की, कई हिमालय में तप करते रहे, कइयों ने अपने तन को पंचाग्नि तपाया, कइयों ने *'काँसी जाये करवत लिये, तोहे न छोड़े नरक निशान'* अर्थात् काशी जाकर तप द्वारा अपने तन को तलवार से दो हिस्सों में मध्य से चीरने जैसा कठिन दुःख भी उठाया, परंतु इन्द्रियों द्वारा किये गए गोप्य कुकर्मों का अरूपी-अदृश्य बन्धन है, वह जीव के लिए बाधक रूप बन गया। यह सूक्ष्म कर्मों का बन्धन किसी की दृष्टि में नहीं आ पाता। छिपे हुए कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ, उसका महत्त्व बड़ा भारी है। दिखावे के लिए किए गए लाखों रुपयों के दान द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्य से कई गुना बढ़कर छिपाकर दान किए गए चार आने द्वारा प्राप्त होनेवाले पुण्य का फल है। एक-दूसरे के मन अन्तःकरण के अन्दर छिपी कुभावना के चिन्तनरूपी कर्म को कोई नहीं जानते, यही कठिन कर्म का बन्धन है, जिसे अरूपी कर्म कहा गया है।

गुरुगम टाली बंध न छूटे,
जो कीजे अनेक उपाए।

जेणी भोमे रे आप बंधाणां,

ते भोम न ओलखी जाए ।। ५९ ।।

भावार्थ :- गुरुगम - सामर्थ्यशाली गुरु की दया-कृपा प्राप्त किए बिना जीव ८४ की जाली से निकल नहीं सकेगा। जिन सामर्थशाली गुरु में अपने शिष्य के लाखों जन्मों के पापों को अपनी ज्ञानाग्नि में हवन कर भस्मीभूत कर देने की शक्ति हो, वे ही अपने शिष्यों का उद्धार कर सकते हैं। जैसे - अर्जुन का उद्धार कृष्ण ने किया था और महाराजा छत्रसाल का महाप्रभु श्री प्राणनाथजी ने किया था। ऐसे गुरु प्राप्त किए बिना अनेकों उपाय करने पर भी बिना भोगे अपने पापों से छुटकारा नहीं मिलेगा। जिस शरीररूपी भोम में आकर हम अनर्थ कर्म करने पर चौरासी के बन्धन में पड़ते हैं, उस भोम के गुणों की हमें पहचान नहीं है। इस भोम में उत्पन्न जीवों के गुण, अंग, इन्द्रियाँ स्वतः ही अधोगति की ओर पहुँचानेवाले कर्म करके नीचे की ओर खींचते चले जाते हैं। इस भोम के लक्षणों-गुणों को जाने बिना जीव परवश बन जाता है तथा फलस्वरूप ऊर्ध्व दिशा की ओर गतिशील जीव भी अपने-आप को अधोगतिवाला ही मान बैठता है।

आप न ओलखे बंध न सूझे,
करम तणी जे जाली।
खोलतां खोलतां जे गुरुगम पाम्यो,
तो ते नाखे बंध वाली॥ ६०॥

भावार्थ :- स्वयं जीव को यह तक खबर नहीं है कि मैं कौन हूँ? क्या मैं शरीर हूँ? इन्द्रिय हूँ? मन हूँ? यदि नहीं, तो फिर क्या हूँ? चेतन जीव किस प्रकार इस भोम के बन्धन में बँध जाता है? वह क्यों यहाँ-वहाँ फिरता रहता है? इसका मूल स्थान कहाँ है ? वास्तव में इन्हीं दोनों बातों की अज्ञानता से जीव अनर्थ कर्म कर बैठता है और इसी अशुभ कर्म के फलस्वरूप जीव ८४ में फँस जाता है। अतः भूलन का कर्म ही जीव के लिए जालीरूप बन जाता है। जीव जब ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गुरुकृपा-गुरुज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वे सामर्थ्यशाली सद्गुरु उस जीव की कर्मरूपी जाली को 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते' अपनी ज्ञानाग्नि द्वारा जला देते हैं।

केम ओधरिया आगे जीव,
जेने हता करमना जाल।
गुरुगम ज्यारे जेहने आवी,
ते छूट्या ततकाल॥ ६१॥

भावार्थ :- अतः हे साधक आत्माओं! देखो!!! इससे पहले कर्म की जाली में फँसे जीवों का गुरुशरण पाकर कैसे उद्धार हुआ है। वाल्मीकि, सौभरि, षट्वाङ्ग, अर्जुन, परीक्षित, छत्रसाल को देखो। इनके कर्म की जाली भी बड़ी जोरावर थी। परन्तु सामर्थ्यशाली गुरु की कृपा और उनका ज्ञान पाकर ये सब किस प्रकार तुरन्त ही कर्मरूपी जाली से छूट गये।

आणे वचने खरे बपोरे,
बोध तमारे पास।
भरत खंड मांहे जनम मानषे,
कां न करी प्रकास ॥ ६२ ॥

भावार्थ :- सद्गुरु स्वरूप के इन जागृत वचनों को देखो, जो जीव को जागृत करने में मध्याह्न के सूर्य के समान दबदबा और शक्ति रखते हैं। पुनः प्रभु ने तुम्हें भी तो बुद्धि दी है, विचार-विवेकरूपी अन्दर की आँखें भी तो तुम्हें प्राप्त हैं। इस अन्दर की विचार-विवेकरूपी दृष्टि द्वारा मेरी बुद्धि के १८ हजार वचनों को देखकर अपना उद्धार करो। भरतखण्ड जैसी धन्य भूमि में मानव तन प्राप्त करके भी यों पशुवत् मूढ़ ही रहना, अपने ही हाथों अपना

घात करने जैसा है। इतना साधन प्राप्त करने के बाद भी यदि इसी तन द्वारा जीव को प्रकाश-जागृत नहीं करना है, ८४ में ही जाना है, वहीं की कमाई करनी है, तो मार्ग खुला ही है। यदि नहीं, ८४ के चक्कर में पड़ने का विचार न हो, तो ऐसा अमूल्य मानव तनरूपी साधन दुबारा नहीं मिलनेवाला!

आ जोगवाई सघली सनंधे,
कां न करो वस्त हाथ।
आ वेला वली वली नहीं आवे,
जीती कां जाओ रे निरास ॥ ६३ ॥

भावार्थ :- इस मानव तनरूपी जोगवाई-वस्तु द्वारा सम्पूर्ण प्रकार से परमात्मा तत्त्वरूपी वस्तु को वश में किया जा सकता है। जैसे - पंचइन्द्रियरूपी अंग में से आँखों द्वारा प्रभु दर्शन कर सकते हैं, कानों से उनका गुणगान श्रवण कर सकते हैं, मुख से उनकी स्तुति कर सकते हैं, हाथों से साक्षात् स्वरूप की सेवा कर सकते हैं। तो क्यों परमात्मा तत्त्वरूपी वस्तु को सरलता से अपने हाथ में नहीं कर लेते? यह मानव तन में प्राप्त समय बार-बार नहीं मिलनेवाला है। अतः ८४ से जीते हुए मानव

तन को व्यर्थ गँवाकर निराश होकर पुनः ८४ के फेरे में क्यों जाते हो?

तमे जैन महेसरी सहुए सुणजो,
आदे धरम छे एक।
रिषभ देव चाल्या पछी,
मारग वेहेचाणां विवेक ॥ ६४ ॥

भावार्थ :- हे ८४ गच्छवाले जैनियों तथा राम और कृष्ण के अवतार के पहले महादेव की भक्ति कर माहेश्वरी कहलानेवाले भक्तों ! तुम सब सुनो!! आद्य-मूल काल में यह धर्म एक ही था। तब से लेकर तुम्हारे ऋषभ देव तक धर्म एक ही था अर्थात् सभी एक ही परब्रह्म की भक्ति करते थे। जब ऋषभ देव संसार से चले गये, तब विभिन्न विवेकी लोगों ने भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों से युक्त मार्गों का प्रचार करके उस मूल मार्ग से अनेकों मार्ग बनाये अर्थात् एक से ८४ गच्छ खड़े किये, न्यारे-न्यारे मार्ग, न्यारे-न्यारे सिद्धान्त और न्यारे-न्यारे ब्रह्म की भक्ति खड़ी की।

मुझवण विध करो छो धरमनी,
मांहो माहे अगाध।

वस्त खोल्यां विना विमुख थाओ छो,
लई जाए गुण कहावो छो साध ॥ ६५ ॥

भावार्थ :- एक धर्म मार्ग को लेकर तुम लोगों ने अनेक प्रकार की उलझनें खड़ी कर दीं, लोगों को फँसाने, भटकाने अथवा उलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के ढोंग रच रहे हो। अन्य ग्रन्थ के द्वारा विभिन्न अटकलें लगाकर ८४ ग्रन्थ तैयार किये और अपने को अन्य से महान बताने की होड़ लगाकर लोगों को अथाह-अगाध रूप से ८४ के चक्कर में डाल रहे हो। परमात्मा तत्त्वरूपी वस्तु को ढूढ़ाने तथा प्राप्त कराने के बदले लोगों को परमात्मा से विमुख कराकर उलझा रहे हो। वस्तु प्राप्त किए बिना ही चौरासी गच्छ बनाकर स्वयं भी परमात्मा से विमुख बन बैठे हो। स्वयं गुणों के खिंचाव में बहकर अर्थात् गुण, अंग, इन्द्रियों के वश में होकर नाच रहे हो और अपने आपको साधु कहलाते हो ? तुम्हारे जैसा कुकृत्य-अनर्थकारी अन्य कौन हो सकता है?

जीव चंडाल कठण एवो कोरडुं,
कां रे करो छो हत्यारो।
वृथा जनम करी कां साधो,
आवो रे आकार कां मारो ॥ ६६ ॥

भावार्थ :- जीव तो पूर्व के संस्कार से चण्डाल बना है। उसकी चण्डाल वृत्ति को देखो। इस जीव के अन्दर ८४ लाख वृत्तियाँ समाई हुई हैं। ८४ लाख योनियों में फिरकर आने के कारण ८४ लाख योनियों के संस्कार उसमें समा गए हैं। तीन गुणरूपी शाखाओं में से एक-एक गुण से २८ लाख पत्तेरूपी वृत्तियाँ समय-समय पर प्रकट होती रहती हैं। चण्डालवत् पूर्व संस्कारों के कारण मनुष्य कभी सिंह बनता है, कभी सर्प, तो कभी यमराज। पुनः संग्रह-वृत्ति से मानव और भोग्य-वृत्ति से देवता बनता है। इस तरह पूर्व योनि के संस्कारों के खिंचाव के कारण अन्त में उस योनि के गुण की प्रधानता अनुरूप उसी योनि को प्राप्त करता है। पूर्व योनि के संचित कर्मों के हृदय पर जम जाने के कारण जीव कोरडुं-खांगडु बन चुका है, जो कभी भी गलने में असमर्थ है। अज्ञानवश वह यहीं करोड़ों जीवों का हत्यारा बन रहा है क्योंकि ८४ लाख योनियों में जन्मते-जन्मते हमारे द्वारा जितनी भी जीव हत्याएँ होती हैं, उनका पाप इस मानव तन में लगता है। अतः अपनी ही आत्मा के हननकारी क्यों बन रहे हो?

पुनः यदि इस मानव तन में आकर दुबारा भूल गए, तो इस भूलन द्वारा भी उतनी ही जीव

हत्याओं का पाप इस मानव तन में आए हुए जीव को लगेगा। अतः हे साधनशील आत्माओं! ऐसे अमूल्य जीवन को विषयों में लगाकर व्यर्थ क्यों गँवा रहे हो? ऐसा देवदुर्लभ मानव आकार प्राप्त कर ८४ लाख जीव हत्या का दोष सिर पर क्यों लेते हो? ऐसे मानव तन से पुनः चण्डालवत् जीव योनियों में भटकने का कर्म क्यों करते हो?

लाख चोरासी हत्या बेससे,
एवो आ जनम तमारो।
बीजी हत्यानो पार नथी,
जो ते तमे नहीं संभारो॥ ६७॥

भावार्थ :- इस मानव तन में आकर भूलने से ८४ लाख जीवों की हत्या से जो पाप मिलता है, वही पाप तुम्हें लगेगा। यह जो जन्म तुम्हें अभी मिला है, वह ऐसा जन्म है। पुनः चौरासी के चक्कर में फँसकर जो पाप किए, जैसे पहले सिंह का तन धारण किया। सिंह के तन में होकर जीवन भर कितने जीवों को खाया, उतने जीवों की हत्या का पाप, फिर बिल्ली का तन लेकर कितने चूहों को खाया, उतने जीवों की हत्या का पाप, अतः ऐसे पापों का तो पार ही नहीं हैं।

ऐसे पापों के फलस्वरूप पाप काटते-काटते मानव कभी भी ८४ के चक्कर से निकल ही नहीं पाएगा। प्रभु बीच में कृपा कर उन पापों से उबार लेंगे, तो दूसरी बात है। अतः इस अपार पापों को याद कर बचने का उद्योग क्यों नहीं करते? उन पापों के फलस्वरूप तुम्हारी क्या दशा होगी, क्या इस बात की तुम्हें चिन्ता नहीं होती?

आगल तिमर घोर अंधारुं,
बूडसे जीव जल मांहे।
लेहेरो मारे अवला पछाडे,
मछ गलागल तांहे ॥ ६८ ॥

भावार्थ :- अतः ऐसे दुर्लभ आकार-मानव तन में आकर भी यदि तुम उन पापों से छूटने का उद्योग नहीं करोगे और मानव तन मायावी नशे में उन्मत्त होकर व्यर्थ ही गुज़ार दोगे, तो आगे घोर अंधकाररूपी योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ इस प्रकार बारम्बार पुकार कर जगानेवाले सद्गुरु का ज्ञान, अपने शरीर की सुध-बुध तथा ज्ञानपूर्ण वचनों पर विचार-विवेक कर पाने की क्षमता तुममें नहीं होगी। मायावी अज्ञान तथा अंधकारपूर्ण जल में जीव डूबता चला जायेगा।

निकलने का प्रयत्न भी नहीं कर पायेगा क्योंकि उसके अन्दर चेतनता विषय की सुध-बुध नहीं रहेगी। उक्त अज्ञानपूर्ण सागर में काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णारूपी अनेकों विशाल लहरें उठकर आयेंगी, जिनकी थपेड़ों की मार खाकर जीव उलटे दूसरी और भी दुःखदायी योनि में जाकर फँस जायेगा। पुनः वहाँ तो मछ गलागल की तरह जिसकी शक्ति, उसी की जीत होगी। बड़े-बड़े जीव छोटे-छोटे जीवों को निगल जायेंगे।

बुध विना जीव बेसुध थासे,
माथे पडसे मार।
बांधेल बंध ताणसे बलिया,
विसमसे नहीं खिण वार॥ ६९॥

भावार्थ :- वहाँ ८४ के चक्कर में यहाँ के जैसी बुद्धि नहीं होगी। जीव बेसुध रहेगा। बेसुध अवस्था में सिर पर पड़नेवाली मार सहन करता जायेगा। अपना शारीरिक कष्ट व्यक्त नहीं कर पायेगा। जैसे यदि वह बैल या घोड़े के तन में है, १५ दिन से उसे पेट में या सिर में दर्द है, वह शारीरिक कष्ट से अन्दर-ही–अन्दर तड़प रहा है, परन्तु उसे गाड़ी हाँकने से छुट्टी नहीं मिलती।

बल्कि काम सुस्ती से करने पर मानव ऊपर से उसे और मारता है। उसकी बीमारी का पता तब चलेगा, जब वह बिलकुल ही खाना खाना छोड़ देगा, लाचार हो जायेगा। यदि मानव की तरह उसके पास बुद्धि अथवा जबान होती, तो वह भी कह सकता था कि 'मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मेरे पेट में दर्द है।' अब इस योनि में जिस गुण की प्रधानता से जो-जैसे भी कर्म किये, मरने पर वे ही कर्म उसी गुण की प्रधानता लेकर अपने बल द्वारा जीव को खींचकर दूसरी योनि में पहुँचा देंगे। इस प्रकार कर्मरूपी बन्धन में बँधकर जीव भटकता रहेगा। एक क्षण के लिए भी वह स्वतन्त्र होकर विश्राम नहीं ले सकेगा। कर्म के अधीन होकर मजबूरी में घुटता रहेगा।

ए दुस्तरनो क्यांहे छेह नहीं आवे,
कलकलसी करसी पुकार।
त्रास पामीने जीव कां न जगवो,
आ विसमुं घणुं संसार॥७०॥

भावार्थ :- ८४ के इस दुस्तर दुःख का कभी पार-अन्त नहीं आ सकेगा कि कितनी योनियों में भोगना पड़ेगा। वहाँ तो जीव को तड़पना, पुकारना, चिल्लाना - यही रहेगा। वहाँ तो

तुम्हारी पुकार सुननेवाला भी कौन होगा? स्वयं एक-दूसरे का ही ग्रास बनोगे। अतः हे मानवात्माओं! चौरासी के दुःख-त्रास से डर कर यदि इस मानव तन में होते हुए ही बचने का उद्योग करोगे, तो बच सकोगे। वहाँ तो बचने-बचाने का कोई उपाय नहीं सुझेगा। उस दुःख से यदि डर लगता हो, तो जीव को इसी जीवन में जागृत कर चौरासी से पार लगाओ। ८४ के दुःखों को उल्लंघकर ऊर्ध्वगति की ओर चलो। शास्त्रों, पुराणों आदि सद्‌ग्रन्थों की पुकार सुनकर अभी-इसी तन में जीव को जगाने की कोशिश क्यों नहीं करते? पीछे यह दुस्तर संसार अत्यन्त कठिन और दुःखदायी होगा। दुःख को भोगे बिना वहाँ से छुटकारा नहीं मिल पायेगा।

दिस एके नहीं सुझे सागर मांहे,
भवसागर जम जाल।
अनेक वार तडफडसो मरसो,
तोहे नहीं मूके काल ॥७१॥

भावार्थ :- उन विभिन्न योनियों में जाकर जीव इस प्रकार से बेसुध हो जायेगा कि उसे किसी भी दिशा का पता नहीं चलेगा कि मैं किस ओर जा रहा हूँ? अधोगति की ओर जा रहा हूँ

या ऊर्ध्वगति की ओर? मायावी अज्ञानपूर्ण सागर के बीच उलझा रहेगा। ८४ योनिरूपी भवसागर में ऐसे फँस जाओगे कि वह चक्कर जमजाल रूप बन जाएगा। उससे छूटने का कोई उपाय ही नहीं सुझेगा। अनेक बार नाना योनियों में तड़पते हुए, जन्मते-मरते रहना पड़ेगा। उस सूक्ष्म-यातना देह में जीव नाना यातनाएँ सहन करते, तड़पते-तड़पते दुःख सहन करते-करते मुक्त होने की चाह तो करेगा, पर प्रयत्न नहीं कर पाएगा। अतः तन छोड़कर जा नहीं सकेगा। पुनः यहाँ की तरह वहाँ काल आकर भी जीव को उस सूक्ष्म शरीर-यातना देह से छुड़ा नहीं पाएगा।

त्यारे तेवा मांहे सुं सोध थासे,
आज आव्यो अवसर।
साध पुरुष तमे जोजो संभारी,
बीजी नथी छूटवा पर ॥७२॥

भावार्थ :- तब ८४ के उस दुस्तर योनि में जीव को क्या सुध रहेगी? जीव तो बेसुध अवस्था में पड़ा रहेगा। उस बेसुध अवस्था में उसके द्वारा वहाँ से बचने का भी कोई उद्योग नहीं बन पाएगा। उस दुःख से बचने का उद्योग

तो इस मानव तन में ही सम्भव है। यसर्थ उससे बचने का उद्योग करने के लिए ही यह मानव तनरूपी सुअवसर हमें मिला है। अतः हे साधनशील पुरुषों! तुम लोग वेद, पुराण, शास्त्रों की बातों को याद कर उस पर विचार-विवेक क्यों नहीं करते? इस मानव तन के सिवाय ८४ के दुःखों से छुटने का अन्य कोई उपाय-प्रकार (पर) नहीं है।

गुरुगम टाली ए गांठ न छूटे,
केमे न थाय रे नरम।
मांहेली कामस केमे न जाए,
जो कीजे अनेक सरम ॥ ७३ ॥

भावार्थ :- गुरु के ज्ञान अथवा कृपा के बिना जन्म-जन्मान्तर से बँधी कर्मरूपी गाँठ से जीव किसी भी प्रकार से छुट नहीं सकेगा। संचित पापों का जमा हुआ बन्धन यहाँ गुरुगम-गुरु के ज्ञान से ही जलेगा। उन्हीं संचित पापों के कारण जीव कठोर बना हुआ है। उसे मात्र गुरुगम-गुरु का ज्ञान ही नरम बना सकेगा। बाह्य कर्म तो सरल हैं। बाह्य कर्मों के पापों को काटना मुश्किल नहीं है। परंतु अन्दर-अन्तःकरण द्वारा होनेवाले चिन्तन और छिपे कुकर्मों के पाप ही

कठोर बन्धन रूप सिद्ध होंगे। अन्दर के इन छिपे हुए पापों को किसी भी तरह मिटाया नहीं जा सकेगा। अनेक प्रकार के जप, तप, दान, पुण्य, तीर्थादि करने पर भी यह कठोर बन्धन गुरु के ज्ञान के सिवाय अन्य किसी भी श्रम से नहीं छुट पायेगा।

बाहेर थकी गांठ एक छोडीए,
तिहां बीजी बंधाए अपार।
ए विसमा बंधनो नथी रे उपाए,
बीजो आणे संसार ॥ ७४ ॥

भावार्थ :- बाहर की - जाहिर में दिखनेवाली जैसे गृहस्थाश्रमरूपी एक गाँठ किसी तरह छोड़ लीजिए, तो दूसरी-उससे भी बढ़कर मान-प्रतिष्ठारूपी मजबूत गाँठ हमें जकड़ लेती है। अर्थात् इन्द्रियों की कर्मरूपी बाहरी गाँठ को यदि किसी भी तरह छुड़ा लिया जाय, जैसे आँखों से बुरा देखना, कानों से बुरा सुनना, मुँह से बुरा बोलना बन्द भी कर दिया जाय, तब भी अन्तःकरण (मन) द्वारा होनेवाले चिन्तन-रूपी कर्म से छूटना बड़ा भारी है। दृष्टान्तरूप में सौभरि ऋषि द्वारा समझना चाहिए कि किस प्रकार जीव अन्तःकरण के चिन्तन द्वारा उत्पन्न

होनेवाली अपार वृत्तियों से घिरकर दूसरे बंधन में बँध जाता है। ये अन्दर के छिपे हुए बन्धन अत्यन्त कठिन और दुःखदायी हैं। गुरु की कृपा-ज्ञान द्वारा इसे जला देने के सिवाय इसका अन्य कोई उपाय नहीं है। इस संसार के बीच गुरु के ज्ञान द्वारा कृत कर्म रुकेगा, संचित कर्म जल जायेगा। परन्तु प्रारब्ध कर्मों को यहीं भोगना पड़ेगा। इसी प्रकार जीव का उद्धार सम्भव है।

आ आकार मांहे जीव बंधाणो,
ते पण नव ओलखाए।
तो पारब्रह्म जे पार थयो,
ते केणी पेरे खोलाए।। ७५ ।।

भावार्थ :- इस प्रकार पंचभौतिक तन के बीच आकर जीव बँध गया है। परंतु वह जिस बन्धन में बँधा हुआ है, उस बन्धन में वह किस प्रकार बँधा, यह जाने बिना वह उस बन्धन को कैसे छुड़ा पाये? वास्तव में यहाँ मायावी मद में उन्मत्त बाह्य इन्द्रियों द्वारा होनेवाले अकृत कर्म और अन्तःकरण द्वारा होनेवाले चिन्तनरूपी कर्म ही ८४ के दुःखों को खरीदते हैं क्योंकि जीव शरीर में है। शरीर अधोगति की ओर अग्रसर है। पुनः शरीर में जो इन्द्रियाँ हैं, उन्होंने

जीव को शत्रुओं के रूप में चारों ओर से घेर लिया है और धीरे-धीरे फुसला-फुसलाकर ये इन्द्रियाँ जीव को पंचविषयों में फँसा देती हैं। इन्द्रियों, अन्तःकरणों की इन करतुतों को जीव नहीं पहचान पाता। विषयी बुद्धि माया के परवश है। अतः विषयों से परे इन्द्रियाँ, उससे परे मन, मन से परे बुद्धि अन्तःकरण द्वारा ठहराये तत्त्व चेतन-आत्मा को ही शरीर नहीं समझ पाता, तो पारब्रह्म परमात्मा तो उससे भी परे हैं। तो इस तन से उस परात्पर परमात्मा को कैसे खोजा जा सके?

जीव थयो मांहे निराकार,
ते केणी पेरे बांध्यो बंध।
रूप रंग वाए तेज नहीं,
तमे साधो जुओ रे सनंध ॥ ७६ ॥

भावार्थ :- अज्ञान दशा में जीव का कोई आकार नहीं होता। वह निराकार रहता है अर्थात् स्थूल दृष्टि द्वारा वह नहीं दिख सकता। परंतु ज्ञान दशा में जीव साकार होता है। उसके स्वरूप को ज्ञानरूपी चक्षु द्वारा प्रत्यक्ष वास्तविक रूप में देखा जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि निराकार जीव को कर्म कैसे बाँध

सकता है? निराकार को क्या कोई बाँध सकता है? पुनः उसे बाँधना क्या है? क्योंकि उसका तो कोई रूप नहीं है, रंग नहीं है, वायु उसे छू नहीं सकती, अग्नि जला नहीं सकती। अतः हे साधनशील आत्माओं! उसके प्रकार को तो देखो!! जो जीव स्वयं निराकार तथा तत्त्व रहित है, वह किस प्रकार बँध जाता है?

जीव बंधाणो अगनाने,
ते अगनान निद्रा जोर।
जेहेर चढ्युं घेन भोम तणुं,
ते पड्यो तिमर मांहे घोर।।७७।।

भावार्थ :- जीव-शरीर, इन्द्रियों और विषयों के अनुकूल होकर पागल की तरह यहाँ-वहाँ भटक रहा है। इन सब का मूल कारण अज्ञान है। उसे अपने मूल का ज्ञान नहीं है। वह अपने मूल को विस्मृत कर अपने आपको भेड़ समझ रहा है। यह अज्ञान दशा ही घोर निद्रा रूप है। अज्ञानता के कारण जीव पर इस भोम का घेन (नशा) चढ़ा हुआ है। मायावी नशे में चूर होकर वह शरीर, कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति, जगह-जायदाद को अपना कहते फिरता है और सर्वत्र हाथ मारते-मारते हैरान हो जाता है। इस

भूलनरूपी घोर अन्धकार में पड़कर वह मृगजल द्वारा प्यास बुझाने के प्रयास में व्यस्त रहता है और भास को पकड़ते-पकड़ते वह एक दिन ८४ में पहुँच जाता है। वहाँ भी उसकी ऐसी ही दशा होगी।

आणे आकारे जो नव छूटो,
तो छूटसो केही पर।
साधो साधनी संगत करजो,
खिण खिण जाए अवसर ।। ७८ ।।

भावार्थ :- अतः हे साधनशील सन्तों अथवा सत् के व्यापारियों! यह मानव तनरूपी आकार प्राप्त करके यदि तुम उस ८४ के अनेकों प्रकार के पापों से बचने-छूटने का उद्यम नहीं करोगे, तो फिर तुम किस योनि में जाकर शास्त्रों के वचन सुन सकोगे, उद्योग कर ८४ के चक्कर से छुटकारा पा सकोगे तथा अपना जीवन सुधार सकोगे? यह देवदुर्लभ मानव तन हमें ८४ के चक्कर से बचकर निकलने के लिए ही प्राप्त हुआ है। अधोगति की ओर जानेवाले तो क्या ऊर्ध्वगतिवाले त्रिदेवा आदि देव भी कलियुग में मानव तन प्राप्त करने के लिए मर मिटने को तत्पर रहते हैं। इस प्रकार देवों को भी दुर्लभ होने

के कारण ही इस तन को 'सुरदुर्लभ तन' कहा जाता है। अतः **'कामातुरानां वलो न बुद्धि'** अर्थात् कामांधपना को छोड़ो। विषयवर्धक उन्मत्तता अत्यन्त भयावह होती है। इसे समझकर इसका परित्याग कर देना चाहिए। हे जिज्ञासु साधनशील आत्माओं! निष्पृह सच्चे साधुओं का संग करो। क्षण-प्रतिक्षण साधु की संगत प्राप्त करने जैसे अवसर गँवाकर जटा बढ़ाने, राख घिसने, घर से जंगल-जंगल से घर में भटकने, ढोंग-आडम्बर रचने में ही जीवन जा रहा है। यह सब करके ८४ के चक्कर से छूट पाना सम्भव नहीं है। उक्त सच्चे लक्ष्यभेदी साधुओं के संसर्ग-सत्संग बिना तुम्हारा उद्धार हो पाना कभी सम्भव नहीं है।

साध संगते आ जेहेर उतरसे,
रुदे ते करसे प्रकास।
घेन निद्रा सरव उड़ीने जासे,
अंधकारनो नास ॥ ७९ ॥

भावार्थ :- उस निष्पृह साधु का संग करोगे, तो तुम्हारे अन्दर का वह मायावी जहर उतर जायेगा, जो जहर तुम्हारे ऊपर चढ़कर तुमसे इस प्रकार के कर्म करवाकर तुम्हें ठग रहा है।

वह साधु तुम्हें उस माया की अनन्त कला तथा रूप की पहचान करा देगा, जिस माया के आड़े आकर पर्दा रूप बन जाने के कारण जीव सत्य तत्त्व से दूर हो रहा है तथा ब्रह्मतत्त्व को नज़दीक से नज़दीक लाकर दर्शा देगा। ब्रह्मतत्त्व के नज़दीक पहुँचने पर तुम्हें अपने मुख से कुछ भी कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। ब्रह्मतत्त्व को कबूल करके तुम्हारा हृदय स्वयं साक्षी देगा। तुम्हारा दिल उस तरफ ऐसे चिपक (लग) जायेगा कि फिर *'प्रले न होवे कबूं भंग'*। जब तुम्हारे चारों अन्तःकरण *'एके सों एक चित्त'* अर्थात् एक ही ओर एक-रस हो जायेंगे, तब उस सत के प्रकाश के बीच में से मायावी निद्रारूपी घेन भस्म होकर राख बन जायेगा। जिस अन्धकार रूप अज्ञान में पड़कर आज तक तुम अपने को 'सतमार्गगामी' साधु अथवा ज्ञानी समझ रहे थे, ब्रह्म तत्त्व प्राप्त कर लेने के बाद तुम स्वयं कहोगे कि हे प्रभु! *'आटला दिवस जाण्यूं नव जाण'*।

त्यारे जीव जई आप ओलखसे,
ओलखसे आ ठाम।
घर पोताना द्रस्टे आवसे,
त्यारे पामसे विसराम॥८०॥

भावार्थ :- जब जीव के अन्दर से अज्ञानरूपी विकार अर्थात् जीवपना मिट जायेगा और वह आत्मरूप हो जाएगा, तब जीव अपने-आप की पहचान करेगा। तब जीव यह भी जान पायेगा कि यह संसार कैसा है? जब जान जायेगा, "अहो! संसार ऐसा है!!" तब तो 'दूथामां पग कोण घाले' अर्थात् जलते हुए तवे में कौन पाँव रखे? अतः आत्मरूप हो जाने पर जीव को सांसारिक विषय-वस्तुएँ जलते हुए तवे सदृश लगने लगेंगी। तब क्या जीव उस ब्रह्मानन्द सुख को छोड़कर विषयों के सुख को वास्तविक सुख मानेगा? अब क्या कहना शेष रहा? अब तो जीव की दृष्टि में वह घर आयेगा, जिस घर में वह लाखों वर्ष पूर्व से रह रहा था और बाद में भी उसे लाखों वर्ष रहना है। अतः हे साधुओं! इतना होने पर क्या उस जीव को ८४ में भटकना पड़ेगा? कदापि नहीं! अब तो वह जीव ब्रह्मानन्द में लीन होकर अनादि काल तक अपने घर में विश्राम करेगा।

ज्यारे जीवनी मोरछा भागी,
त्यारे उडी गयुं अगनान।
करमनी कामस केम रहे,
ज्यारे भलियो श्री भगवान ॥ ८१ ॥

भावार्थ :- जब उपरोक्त प्रकार से जीव ने अपने वास्तविकता की पहचान कर ली, तब जीव के अन्दर मायावी मूर्च्छा का अस्तित्त्व ही कहाँ रहा? अब तो वह भेड़ से बदलकर सिंह, वह भी केसरी सिंह बन चुका है, तो मूर्च्छा की बात ही कहाँ रही? मूर्च्छा तो क्या, मूर्च्छा की बड़ी माँ अर्थात् मन के अन्दर उसके आस-पास फटकने की शक्ति ही कहाँ रही? इतना होने पर जीव और माया के बीच वही कहानी घटित होगी, जो कहानी ब्रह्माजी की सभा के बीच सूर्य और अन्धकार की फरियाद के फलस्वरूप घटित हुई थी। अब जीव के अन्दर मायावी कला के विषय में जो अज्ञान था, वह भी उड़कर उनकी मुखिया माया के पास ही पहुँच जाएगा। जब साधु की संगत से जीव ने अपनी पहचान कर ली, माया की करतुतों को देख लिया, इस छली संसार की होशियारी का अनुभव कर लिया, पूर्व घर इसी तन द्वारा प्रत्यक्ष हो गया, *'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'*- इस कथन का प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया, भेड़ से केसरी सिंह बन गया, तब उसके अन्दर कर्म के पापों का अस्तित्त्व कैसे रह सकता है? सूखी घास सदृश पापों के ढेर के ढेर को ज्ञानाग्नि में स्वाहा होने में समय नहीं लगेगा। यसर्थ कहा जाता है कि

'ज्ञानाग्नि दग्धकर्माणं भष्मसात् कुरुतेऽर्जुन'।

भ्रांत भरम सरवे भागी जासे,
उडी जासे आसंक ।
अगम अगोचर सहु सोध थासे,
रमसे मांहे वसंत ॥८२॥

भावार्थ :- उस निष्पृह साधु के संसर्ग से अनादि काल से माया, आत्मा और ब्रह्म के विषय में जो भ्रम और भ्रांत बढ़ते आई थी, वह उड़ जाएगी, निर्मूल हो जाएगी। जब तक जीव में भ्रम और भ्रांत रहेगा, तब तक उस जीव में वस्तु के प्रति स्थिरता नहीं आ सकेगी। भ्रम और भ्रांत संशय का विकार हैं। अतः *"संशयात्म विनश्यति"* अर्थात् संशय द्वारा आत्मा का विनाश हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जब तक जीव के अन्दर उत्पन्न संशयों का नाश न हो, तब तक आवागमन का क्रम नहीं मिट सकता। जिसने स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अपने अन्दर के संशयों का नाश कर लिया हो, वही सच्चा साधु है। वही दूसरों के संशयों का छेदन कर सकता है। जिन्होंने परहितार्थ तन धारण किया हो, वे सच्चे साधु ही सर्वप्रथम स्वयं के अन्दर की आशंकाओं को निर्मूल करके दूसरों को भी मार्ग

दिखायेंगे। उन साधु के प्रताप से तुम्हें जिस ब्रह्म को अगम, अगोचर, इन्द्रियातीत कहा गया, उनकी भी पहचान होगी। वे साधु तुम्हें समझरूपी दृष्टि प्रदान कर ब्रह्म को प्रत्यक्ष करा देंगे। तब तुम्हारा जीव उन वसन्तरूपी परमात्मा के आनन्द में खिला रहेगा। आठों पहर उसी ब्रह्मानन्द में छका रहेगा।

दोष मा दीजे रे वैराट वाणीने,
मुखथी बोले सहु सत।
बोल्या उपर चाली न सके,
त्यारे फरी जाए छे मत॥८३॥

भावार्थ :- वैराट के प्राणियों आप्तपुरुषों ने वेद, पुराण, शास्त्र आदि सद्ग्रन्थों में जो वचन कहे, उस वाणी को दोष नहीं देना चाहिए। अपना कल्याण चाहनेवालों को चाहिए कि वे आप्त-पुरुषों के चरित्र को अर्थात् 'स्वयं तो ऐसा कर्म करता है और हमें ऐसा करने को कहता है' अनदेखा करके उनकी वाणी पर विचार करें। उनकी वाणी द्वारा उद्धार है, न कि चरित्र द्वारा! पराशर ऋषि को देखो, व्यासजी को देखो, कृष्ण को देखो! मुख से तो सभी सत्य बोलते हैं। परंतु बोले प्रमाण चल कौन सकते हैं क्योंकि

"तासीर दीसे अस्थानक तणी"। जानकारी में कमी नहीं है कि लोभ, क्रोध, काम, छलछिद्र, असत्य, हिंसा, व्यभिचार, चोरी, कठोरता, निर्दयता, अभिमान ये सभी पतन के साधन हैं, परंतु इस शरीर में होकर पालन करने में बड़ी कठिनता होती है। उपदेश-प्रबोध के समय तो दिल भी तत्पर रहता है कि अब से मैं ऐसा ही व्यवहार करूँगा। परंतु थोड़ी देर बाद ही मायावी खिंचाव में बुद्धि (मत) फिर जाती है और मन मालिक (जीव) को ही समझाने लगता है कि "अरे! सभी कर रहे हैं, तो मुझे करने में क्या? ये कर्म परलोक में क्या बाधा डालेंगे?" इस प्रकार मन तुरन्त प्रबल होकर जीव को अपने वश में कर लेता है। फिर तो क्या? "मन मारे रमे सहुए, सागर सब एक रस"।

मोटो अवतार श्रीपरसरामजी,
तेना हजी लगे बंध न छूटे।
कष्ट करे छे आज दिन लगे,
पण तोहे ते ताणां न त्रुटे ॥ ८४ ॥

भावार्थ :- हे आत्माओं! देखो!! यहाँ के कृत कर्मों को भोगे बिना किसी को छुटकारा नहीं मिलेगा। श्री परशुरामजी, जो भगवान विष्णु की ११ वीं कला के अवतार होकर भी माँ के

वचन सुनकर जोश में आ गए और इक्कीस बार पृथ्वी पर फिर-फिरकर क्षत्रियों का संहार किया। इस प्रकार माँ के आँसू तो पोंछ लिये और पिता को मारनेवाले शत्रुओं का संहार कर बदला भी चुका लिया, परंतु एक जीव के बदले लाखों जीवों की हत्या कर डाली। वे इतने तेजस्वी थे कि यदि रास्ते चलते गर्भवती स्त्री पर उनकी दृष्टि पड़ जाती, तो उस स्त्री का गर्भ गिर जाता था। उनके फर्से में ऐसी अद्भुत शक्ति थी। उन्हें देखते ही पराक्रमी पहलवानों के छक्के छूट जाते थे। परंतु त्रेता युग में २१ ही बार में जो उन्होंने क्षत्रिय संहाररूपी कर्म किया, उस कर्म के बंधन को काटने के लिए वे आज तक दक्षिण में स्थित महेन्द्र नामक पर्वत के कदली वन में बैठकर तपस्या कर रहे हैं। आज तक वे कष्ट उठाकर अपने उस पाप को पंचाग्नि में जला रहे हैं। इस बात का प्रमाण श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध के १६ वें अध्याय का २६ वाँ श्लोक है। परंतु इतना करने पर भी उनके द्वारा किये गये उस संहाररूपी कुकर्म का ताँत (तंतु) टूटकर छूटा नहीं है। इस प्रकार यदि एक बार जीव में अशुभ कर्म का ताँत (तंतु) जब लग जाता है, तो उस जीव के लिए उसे छुड़ाना अत्यन्त दुस्तर बन जाता है।

अनेक देह दमे पंच अगनी,
तोहे न बले करम।
अनाद कालना जे बंध बांध्या,
ते थाए नहीं जीव नरम॥८५॥

भावार्थ :- परशुराम अवतारी पुरुष ने २१ दफे पृथ्वी में फिर-फिर कर जिन क्षत्रियों के देह का दमन (नाश) किया था, उन अनेकों जीवों की हिंसा के पापों को जलाने हेतु वे अब भी कदली वन में पंचाग्नि में जल रहे हैं। इतने वर्षों तक पंचाग्नि में जलने के बाद भी वे उस पाप से मुक्त होने के लिए कइयों उद्योग कर रहे हैं। परंतु इतना कष्ट कर जलाने से भी वे कर्म नहीं जलते। इसीलिए तो कहा "गहना कर्मणो गतिः"। जवानी में चूककर एक दफे ऐसा निषेध-अकृत कर्म किया, परंतु उसका फल इस प्रकार कष्ट दे रहा है। वह भी अवतारी पुरुष जैसे को! तो हम मच्छर सदृश जीव द्वारा ८४ लाख योनि में किये गये कर्मों के फलस्वरूप हमारी कैसी दशा होगी? अभी अंधे बनकर *'कर्म सूं करसे खोटा'* ऐसा सोचकर उन्मत्तपना में किये गये ऐसे अद्भुत कर्मों के फल को जब स्वयं भोगना पड़ेगा, उस समय पता चलेगा। एक दफे चूककर किये गये कर्म

का बन्धन अनादि काल के लिए बन्धकर चिरंजीवी बन गया। अब वह चिरंजीवी परशुराम को अनादि काल तक जलाता रहेगा। इसका कारण यह है कि उस जीव ने हिंसा के समय जो कठोरता धारण कर कर्म किया था, उस कठोरता के कारण इतनी तपस्या करने के बाद भी उसके अन्दर कठोरता छूटकर नरमाई नहीं आ सकी। जीव इस प्रकार यहाँ तक कर्म से जकड़ गया, तो 'बीजो घाट केम करी थाशे'। कर्म की दशा यह है। अब सोचो! अपने जीवन को देव सदृश निर्मल बना रहे हो या राक्षस सदृश विकारी!!

प्रगट बेठा बंध छोडवा,
ते आपण माटे थाय।
अवतार ते पण करमे बंधाणां,
रखे कोई देखी बंधाय ॥ ८६ ॥

भावार्थ :- वे अवतारी पुरुष परशुरामजी जो कदली वन में बैठकर पंचाग्नि तप रहे हैं, वे इस प्रकार कदली वन में प्रत्यक्ष बैठकर हम मनुष्यों को कर्म-बंधन के विषय में चेतावनी दे रहे हैं। वे तो अवतारी पुरुष हैं। वे ऐसे जीव-संहार सदृश कर्म वैकुण्ठ में बैठे-बैठे ही कर डालने का सामर्थ्य रखते हैं। वे तो अपने उक्त कर्मों द्वारा हम मनुष्य

मात्र को सचेत कर रहे हैं, "देखो भाइयों! कर्मभूमी का प्रताप ऐसा ही है। इस भूमिका में पाँव रखते ही जीव का कर्म शुरू हो जाता है। कर्म में भी विधि और निषेध-दो तरह के कर्म हैं। त्रिगुण की भँवरी में पड़कर कर्ता जब कर्म में चूक जाता है, तब वह जम के कानून में बँध जाता है, मैं तो यहाँ किए हुए कर्म भोग रहा हूँ। देखो! ऐसा कर्म करने पर फल भी ऐसा ही मिलता है।" अतः जब अवतार भी कर्म में बँध जाते हैं, तो हम मनुष्य की क्या गति होगी? इस बात को समझकर कलियुग की जनता पापों से बच सके, ऐसा कर्म न करे, यह बोध देने हेतु स्वयं अवतारी पुरुष अपने-आप को दृष्टान्त रूप में आगे रखकर हमें होशियारी दे रहे हैं, किये हुए कर्म के बन्धन से छुटने के लिए पंचाग्नि तप रहे हैं और उन्हें देखकर कलियुग की जनता अशुभ कर्मों से बच सके, इसलिए स्वयं चलकर दिखा रहे हैं।

आ ब्रह्मांड विषे कोई एम मा केहेसो,
जे अमने सुं करे बंध।
ब्रह्मांड धणी पोते आप बंधावी,
देखाडे छे सनंध ॥ ८७ ॥

भावार्थ :- इस ब्रह्माण्ड के बीच रहकर कोई भी मानव ऐसा मत कहो कि यहाँ किये गये अशुभ कर्म हमें क्या बाँध सकेंगे? वास्तव में ये अकृत कर्म का बन्धन ही जीव और ब्रह्म के बीच पर्दा अथवा जालरूप हुआ है। यदि कर्म कुछ नहीं करता, तो ब्रह्माण्ड के धनी कहलानेवाले विष्णु के अवतारी परशुरामजी अब तक क्यों कष्ट उठा रहे हैं? उनके जैसे अवतारी पुरुष को पंचाग्नि तपने की क्या जरूरत है? उन जैसे अवतारी पुरुष को कर्म के बन्धन से छुटने के लिए ऐसा कष्ट उठाना पड़ रहा है, तो फिर क्या मच्छर सदृश हम मानव को कर्म नहीं बाँधेगा? वे अवतारी पुरुष परशुरामजी स्वयं कर्म के बन्धन में बँधकर हमें दिखा रहे हैं कि देखो मानवों! अकृत कर्म मत करो क्योंकि *'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'*। अतः मेरे कर्मों को देखकर तुम सब तो बचो!

तेज आकास वाय जल पृथवी,
रवि ससि चौदे भवन।
ए फरे सरव करमनां बांध्या,
बीजा तो एहेनी उतपन ॥८८॥

भावार्थ :- हम मानव की तो क्या बात?

तेज, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी - इन पाँचों तत्त्वों सहित सूर्य, चन्द्र से लेकर चौदहों लोक भी कर्म में बँधे हुए हैं। हुकम का पालन करने में डँटे हुए हैं और अपनी-अपनी सीमा के दायरे में रहकर हुकम का पालन कर रहे हैं। जब उक्त सभी भी कर्म के बन्धन में बँधकर अर्थात् आज्ञा के बन्धन में फिर रहे हैं, तो उन्हीं पाँच तत्त्वों द्वारा उत्पन्न मच्छररूपी मानव अन्धे बनकर पागल की-सी बात करते हैं कि 'हमें कर्म का बन्धन क्या करेगा?' यह तो ऐसा ही हुआ कि सिंह के मुँह में पड़ा बकरा कहे कि सिंह मुझे क्या कर सकता है?

प्रगट वैराट थयो जे दाडे,
एना बंध पेहेलानां बंधाणां।
बाल्या बले नहीं ते माटे,
सहुए ते जाय तणाणां ॥ ८९ ॥

भावार्थ :- शास्त्रों द्वारा यह सिद्ध है कि जिस दिन वैराट-सृष्टि की उत्पत्ति हुई, वह सृष्टि-उत्पत्तिरूपी कार्य भी कर्म के ही फलस्वरूप हुआ था। सृष्टि की उत्पत्ति से पहले भी कर्म था, जिस कर्म में सृष्टि और सृष्टि के प्राणी मात्र बंधे हुए हैं। यसर्थ कितने कर्मवादी 'कर्म ब्रह्म'

मानते हैं। जो कर्म वैराट-पिण्ड को जन्म के पूर्व से ही बाँध लेता है, उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। जैसे-शरीर का त्रिताप सहन करना। यह प्रारब्ध द्वारा प्राप्त है। शरीर धारणरूपी कर्म बिना कारण नहीं होता। अतः शरीर धारणरूपी कर्म का कारण क्या है? तो कर्म, कारण में तंतुवत् बीजरूप में शामिल है अर्थात् कारण में बीजरूपी कुछ कर्म बना, तभी इस प्रारब्ध कर्म ने स्थूल शरीर का आकार धारण किया। यसर्थ सृष्टि की उत्पत्ति ही कर्म में बँधकर हुई है। अतः पूर्व से नाल रूप में लपेटा हुआ कर्म जलाने पर भी नहीं जलता। सभी प्राणियों का सृजन इसी प्रकार से होने पर वे स्वतः ही कर्म बन्धन में खींचे चले जाते हैं। कर्म की ओर जाने में कठिनता नहीं होती क्योंकि स्वतःसिद्ध साधन शरीर में ही मौजूद हैं।

मानषो जनम पाम्यो बंध छोडवा,
वली रे वसेखे भरत खंड।
कुली मांहे उतम आकार पामी,
सामां बांधे छे अधका बंध ॥ १० ॥

भावार्थ :- सृष्टि के प्राणियों को ८४ के बन्धन से निकलने के लिए ही मानव तन मिला

है। पुनः यह तन उन्हें अपने से प्राप्त नहीं हुआ है। वह तो प्रभु की देन है। प्रभु कृपा कर दें, तो ही मिलता है। अतः हे मानवात्माओं! तुम सब प्रभु कृपा को प्राप्त कर मानव तन में आये हो। फिर स्थान भी तो देखो! उत्तम भरतखण्ड के बीच मानव तन ऐसे सरलता से नहीं मिलता। यह भरतखण्ड कर्मभूमि में कर्मभूमि और तपोभूमि में तपोभूमि है। दोनों तत्त्वों का संयोग और समय की प्रबलता, वह भी कलियुग के बीच तो अत्यन्त ही अलभ्य है, जिसका महत्त्व शास्त्रों में भरा पड़ा है। इन तीनों के संयोग से तो पीतल मात्र सोना ही नहीं, चिन्तामणि बन सकता है। तो अपने को चिन्तामणि बनाने के बदले ऐसी भूमि में ऐसा तन वह भी ऐसे समय में प्राप्त करके तुम प्रत्यक्ष ही जीव को अधका बंध-तन के कर्म-बन्धन में क्यों बाँध रहे हो? चिन्तामणि को काँच क्यों बना रहे हो? तुम्हें तो काँच को भी चिन्तामणि बनाने का साधन प्राप्त है।

मांहे अंधारुं मांहे अजवालुं,
रुदे ते कोय न संभारे।
परवस बांध्यो करम करे,
अवतार अमोलक हारे।। ९१।।

भावार्थ :- अपने दिल में-अन्तःकरण में ही अंधेरा अर्थात् माया, कुफ़्र, राक्षसी वृत्ति भी है और अजवालुं अर्थात् प्रकाश, सत्य ज्ञान, ईमान आदि देव-वृत्तियाँ भी हैं। इन दोनों वृत्तियों द्वारा अर्थात् तमोगुण प्रधान वृत्ति द्वारा तुच्छ कर्म करके नर्क भी जा सकते हैं और सात्विक कर्म करके ऊर्ध्व-वैकुण्ठ में भी जा सकते हैं। परन्तु इस तन द्वारा क्या करने पर अथवा कौन-सा मार्ग चलने पर सुखी होंगे, इस बात पर कोई दिल से विचार-विवेक नहीं करता। वेद, शास्त्रादि सद्ग्रन्थ पुकार-पुकार कह रहे हैं कि दूसरे जीवों को कष्ट मत पहुँचाओ, पंचविषयों से अपनी इन्द्रियों को सँभालकर रखो, अपने किसी अंग से किसी को दुःख मत दो, जहाँ तक बने सुख पहुँचाओ, यही मानव तन प्राप्ति की निशानी है। आज मेरे वचन से किसी का दिल तो नहीं दुःखा न? मैंने किसी को बुरी निगाह से तो नहीं देखा न? कानों से मैंने बुरी बातें तो नहीं सुनी न? हाथों से बुरा कर्म तो नहीं किया न? इस प्रकार अपने गुण, अंग, इन्द्रियों को सँभालने के बदले मायावी मन के परवश होकर उदण्डता से मनमानी कर्म करते हैं और इन बुरे कर्मों के बंधन की सूक्ष्म छाप सूक्ष्म शरीर पर लगाकर तथा छोड़कर उस

पर कालिख पोत (कलंक लगा) रहे हैं। इन कर्मों का प्रतिफल क्या होगा, इस विषय में जरा-सी भी चिन्ता नहीं है। ऐसे मानव अवतार की क़ीमत जाने बिना हार रहे हैं क्योंकि इस कलिकाल में प्राप्त मानव तन चिन्तामणि रूप साधन है, जिसके द्वारा चित्त देकर कुछ भी बनाया जा सकता है। अतः ऐसे चिन्तामणि साधन द्वारा यदि मानव महाप्रलय से रहित अखण्ड सुख प्राप्त कर सकेगा, तो मानव अवतार की जीत होगी। पुनः जीव को ८४ के चक्कर में बँधाने का कर्म किया, तो मानव तनरूपी अवतार की हार होगी।

कोई वेद विचार ना करे,
भाई सहु को स्वादे लाग्युं।
अनल एणी पेरे चाले ते माटे,
साचुं ते सरवे भाग्युं ॥ ९२ ॥

भावार्थ :- इस कलिकाल में विषय में उन्मत्त लोगों को अशुभ कर्म से बचाने के लिए वेद, शास्त्र आदि सद्ग्रन्थों द्वारा महापुरुष बारम्बार पुकार-पुकार कर सावचेत कर रहे हैं कि 'हे मानव! निषेध कर्म को छुओ मत, दूसरे को बुरी भावना से देखो मत, दूसरे जीव को रुलाने का

अधिकार तुम्हें नहीं है, हो सके तो हँसाओ, सृष्टिकर्ता की किसी भी रचना की हिंसा मत करो, तुम सृजन तो कर नहीं सकते, अतः नाश करने का भी तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।' परन्तु वेद के उक्त वचनों पर कोई विचार नहीं करता क्योंकि सृष्टि के सभी प्राणियों को उनके मन ने अपने वश में कर लिया है । पंचविषय के स्वाद में दीवानों की तरह फँसे रहना ही उन्हें नीतियुक्त धर्म लगता है। अतः वे मन के बताए मार्ग पर ही अनल-आत्मा को चला रहे हैं। मन की गति को बिना समझे उसके इशारे पर नाच रहे हैं। इस झूठे मन ने सभी को अपने वश में करके झूठ ही पकड़ाया है। अब यहाँ सत्य की पुकार करते हुए कहें कि, 'ब्रह्म-सत्य, आत्मा की सत्यता को पहचानो, विषय का परित्याग कर सत्य का पालन करो, त्याग-वैराग्यरूपी सीढ़ी पर चढ़ो, विषय का सुख, सुख नहीं है, वह तो भास मात्र है, आत्मा का सुख ही सत्य है' तो लोग पागल कहेंगे। समझना तो क्या सुनना भी नहीं चाहेंगे। अतः सर्वत्र माया झूठ - मन झूठ - विषय झूठ - विषय का सुख झूठ अर्थात् झूठ ही झूठ का साम्राज्य फैला है। एक नहीं सारी सृष्टि के लोगों को माया ने जीत ली। सत्य वस्तु-ब्रह्म और आत्मा की सत्यता, आत्मा

का सुख, ब्रह्मलीला की पहचान तो उड़ गयी।

साचुं बोल्युं गमे नहीं केहने,
सहुने ते लागसे दुख।
वेद तणा वचन विचारो,
जे कहे छे पोते मुख ।। ९३ ।।

भावार्थ :- ऐसी परिस्थिति में बहते जीव को सत्य कहें, तो उतना ही बुरा लगता है, जितना बुरा कर्म करनेवाले को बुरा कहें, चोरी करनेवाले को चोर कहें अथवा काने व्यक्ति को काना कहने पर दुःख लगता है। सत्य बोलनेवाले की दशा ऐसी होती है। देखो न! रावण को सत्य सूचनारूपी भविष्यवाणी देने पर शनि को कैसे कुएँ पर उलटा लटकना पड़ा था? कलियुग के मानव भी उसी प्रकार सत्य वचनों को अनसुना कर समझते हैं कि 'आहा......! जवानी में विषय भोगने में कितना सुख है। परलोक किसने देखा है? कौन मूर्ख अभी यहाँ मिल रहे नगद सुख को छोड़कर परलोक के उधार के सुख की इच्छा करे?' जमाना ऐसा ही है। परंतु क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह मैं अपनी ओर से नहीं कह रहा हूँ। परंतु यह देखो कि वेद क्या करने को

निषेध करता है और क्या करने की आज्ञा देता है। वेद द्वारा कहे प्रत्यक्ष वचनों को बिना सुने विषयों में तल्लीन मानव, मानवता खोकर नरपशु बन चुका है।

वेद कहे मारा मूल आकासे,
साखा छे पाताल।
तोहे न समझे मूढ मती,
अने फरी फरी पडे मांहे जाल ।। ९४ ।।

भावार्थ :- वेद भगवान पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि 'मेरा मूल आकाश की ओर है और शाखा पाताल तक पहुँची हुई है।' इस बात को समझे बिना कि यदि मूल आकाश की ओर हो, तो फल जड़ अथवा धड़ में कैसे मिल सकता है? पुनः यदि वह फल शाखा में कहा है, तो नीचे पाताल में ढूँढ़ने के बदले शून्य - निराकार में ढूँढ़ने से मिलेगा? इस वृक्ष के फल की प्राप्ति के लिए आकाश की ओर ढूँढ़ते हैं। ऐसी मूढ़ बुद्धि (मति) द्वारा कहीं वेद-वैराट के सुखरूपी फल की प्राप्ति की जा सकती है? हरगिज़ नहीं! परंतु मानवमात्र ऐसी बुद्धि के चक्कर में पड़कर शून्य-निराकार को साधते-साधते जीवन गँवा देते हैं और अन्त में बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर को प्राप्त कर

कर्मरूपी जाल में जकड़ते चले जाते हैं।

वेद तणुं तां व्रक्ष नथी,
भाई ए छे प्रगट वाणी।
अवली के सवली विचारो,
ए आंकडी न कलाणी ॥ ९५ ॥

भावार्थ :- वेद-वैराटरूपी वृक्ष जाहिरी वृक्ष के समान नहीं है। वह तो उसकी उत्पत्ति और उसका खिंचाव उलटी ओर प्रबल होने के कारण इसकी तुलना एक वृक्ष के साथ की गई है। इसका उत्पत्ति स्थान ऊपर की ओर आधारित है।अक्षर पुरुष वैराटरूपी वृक्ष का धड़ है, निरन्जन उसकी डाल है, त्रिदेवा शाखारूप हैं, ८४ लाख योनि पत्ते रूप हैं तथा सुख और दुःख - ये इस वृक्ष के दो प्रकार के फल हैं। वेद के इन प्रत्यक्ष वचनों को समझे बिना निराकार-शून्य का ही फल समझकर दुनिया अपने-आप ही दुःख उठा रही है। ऐसे उलटे वैराटरूपी वृक्ष को दुनिया सीधा समझकर सीधे मार्ग को छोड़कर उलटा मार्ग पकड़कर जमपुरी सिधार रही है। जिस प्रकार शरीर की उत्पत्ति उलटी है, उसी प्रकार उसकी गति भी उलटी है और साधनरूप इन्द्रियाँ आदि भी उलटा चलनेवाली ही हैं तथा

विषय भी संजमपुरी के घाट में उतारनेवाले अर्थात् *'परिणाम् विषमेव'* सदृश उलटे ही हैं। इस पिण्ड-ब्रह्माण्ड और वेद के कोहेडे-उलझन की आँकड़ी को खोलकर आज तक कोई किसी को सुना-समझा नहीं पाया है। इन दोनों की आँकड़ी को बिना समझे आज तक सृष्टि कर्मरूपी भवसागर में ही गोते खा रही है।

सत वाणी छे वेद तणी,
जो ते कोय जुए विचारी।
ए कोहेडो रचियो रामतनो,
सघला ते मांहे अंधारी ॥ ९६ ॥

भावार्थ :- वेदों ने जो वाणी बोली है, वह सत्य है। अपने वचनों द्वारा वेदों ने सत मार्ग बताया है। वेद भाष्य में मूल से वेदों का जो अर्थ किया गया है, वहाँ ब्राह्मण पण्डितों ने मूल शब्द का अपने अनुकूल अर्थ लगाकर लक्ष्य ही उलटा दिया है। मूल से यही परम्परा चली आने के कारण वेदों का कहना और वेद लेकर चलनेवालों के चलन में धरती-आसमान का अन्तर है। विश्व का प्राणी मात्र यदि इस बात पर विचार करके देखे, तो पाएगा कि वास्तव में दोष वेद का नहीं, दोष तो हमारी अज्ञानता का

है। वैराट के प्राणी मात्र क्षणिक देखने भर के लिए बादलरूपी कोहेडे की तरह रचे गये हैं। सभी के अन्दर अज्ञानतारूपी अंधेरा भरा हुआ है। क्षणिक कोहेडा सदृश जीवन में अपना क्या कर्तव्य है, जीव यह भी नहीं जानता। जीवन को ही सब कुछ समझता है कि जन्म के पहले भी हमारा चेतन था और मृत्यु के पश्चात् भी रहेगा। परंतु कहाँ और उस जीवन के लिए यहाँ क्या कर्तव्य करना चाहिए? इसका अंधेर सबके अन्दर भरा पड़ा है।

कोई दोस मा देजो रे वेदने,
ए तो बोले छे सत।
विस्व पडी भोम अगनान मांहे,
ए भोम फेरवे छे मत ॥ ९७ ॥

भावार्थ :- कोई भी मूल वेद को दोष मत देना। वेदों ने तो जो कुछ मिला, सत्य कहा। नेत नेत कहकर क्या वेदों ने झूठ कहा? वेदों ने ब्रह्म नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा, परंतु मैं जहाँ तक गया, वहाँ तक मुझे ब्रह्म नहीं मिला, ऐसा कहा। ब्रह्म के होने की ओर संकेत कर अपने को न मिलने की सीधी बात वेद ने कह दी। झूठ नहीं कहा। परन्तु तुम ही विचारने में गलती कर रहे

हो। ऐसे अज्ञान के बीच पड़कर विश्व के प्राणी ब्रह्मतत्त्व से हाथ धो बैठे हैं। ऐसा क्यों हुआ? इसका कारण इस भोम की शक्ति है। इस भूमि में आते ही माया सभी की बुद्धि को हर लेती है। माया ने मन को अपने तरफ फिरा लिया, तो अब माया के परवश हुआ मन कहाँ विषय के मौज-आनन्द को छोड़कर विषम, सत्य ब्रह्म की खोज के विषय में विचार कर सकेगा ? अन्यथा वेदों ने 'नेत-नेत' अर्थात् 'ब्रह्म यहाँ तक नहीं हैं, परंतु कहीं तो जरूर हैं', ऐसा तो प्रत्यक्ष कहा। किंतु इतना कहने पर भी सृष्टि में ब्रह्मतत्त्व नहीं है, ऐसा नहीं है। है तब भी, ब्रह्माजी की यह दशा हुई, तो हमारी क्या दशा होगी? यही संशय ब्रह्मतत्त्व बन गया अर्थात् यही दृढ़ कर छोड़ दिया गया!

अरथ जुए सहु उपली वाटनो,
मांहेलो ते मांहे नव संभारे।
वैराट पूर वहे वेहेवटे,
दुख सुख कोय न विचारे।। ९८ ।।

भावार्थ :- कलियुग में नाना मदों में उन्मत्त जीव विषय के परवश होकर ऊपरी अर्थवाला मार्ग देख रहे हैं। परमात्मा है, परलोक भी है,

आप्तपुरुषों के वचन सिद्ध प्रमाण दे रहे हैं, हम पहले भी नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, सामने जाते हुए देख ही रहे हैं, परंतु मद में मस्त होकर यही मानते हैं, "सब कुछ यही संसार है, हम कभी मरेंगे नहीं। सब झूठ-मूठ की बातों से हमें डरवाते हैं।" इस प्रकार सभी लोग इह लोक के नगद पंचजन्य सुख के प्रेमी बने हैं। किसी को परलोक के सुख-उधार की चिन्ता नहीं है। वेद, शास्त्र, महापुरुषों के वचन कहते हैं कि एक-एक इन्द्रिय द्वारा दूसरों की दुःख से रक्षा करो, हित करो, अहित नहीं, दिल को साधो। यह परलोक का धन है। दया, सत्यता, वैराग्य, त्याग-इन्हें अन्तःकरण में सँजोना है। यही परलोक का खजाना है। परन्तु सब आकार को साधने में जीवन दे रहे हैं। उपरोक्त उदण्डपना से इह लोक की चिन्ता में एक-दो नहीं, बल्कि वैराट के ८४ के पूर-मन के बहाव में सारी दुनिया ही बही जा रही है। मद की मस्ती में मस्त होकर इतने अन्धे बन चुके हैं कि यहाँ दुःख सहन करने पर मैं सुखी बन सकता हूँ या यहाँ सुख भोगने पर मैं अपने परलोक के लाखों के जीवन से हाथ धो बैठूँगा, इस बात पर विचार-विवेक पहुँचाने की भी बुद्धि नहीं रही इनमें!

वेद विचार करी करी वलिया,
पारब्रह्म नव लाध्या ।
वली वलिया उलट्या त्यारे पाछा,
बंध विस्वनां बांध्या ।। ९९ ।।

भावार्थ :- सृष्टि के आदि में वेद उस तत्त्व की खोज करने गया । जब हजार वर्ष की मेहनत और कठिन परिश्रम के बाद भी उस तत्त्व का साक्षात्कार नहीं हुआ अर्थात् वह पारब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सका, तब पीछे लौटकर सृष्टि में उत्पन्न मानव की बुद्धि पर विचार किया कि 'ब्रह्म' विषय की कठिनता तो ये साधारण जीव उठा नहीं सकेंगे । अतः बताकर क्या करूँ? जिसके अन्दर सेर भर वजन भी उठाने की शक्ति नहीं है, उस पर मन भर वजन लाद दें, तो मूर्खता किसकी? यह विचार करके उनके लिए कर्म प्रधान कल्याणकारी मार्ग का प्रबन्ध कर दिया और उन्हें शिवलिङ्ग, शालग्राम, दूब आदि के पूजनरूपी कर्म में लगा दिया । अब "*देव जैसी पातरी, चलत दुनिया जेह*" यसर्थ विधि-निषेध बताकर कर्म की ही प्रधानता दिखा दी ।

आ तां व्यासजीनुं कह्युं कहुं छुं,
तमे मानजो साधो संत ।

न मानो ते जई सुकजीने पूछो,
आ बैठा छे मांहे भागवत।।१००।।

भावार्थ :- हे सत की व्यापारी आत्माओं! ये सब बातें मैं अपनी तरफ से नहीं कह रहा हूँ। व्यासजी द्वारा कहे वचनों के द्वारा प्रमाणित कर कह रहा हूँ। तुम यदि कोई साधु-संत पुरुष, सत्य की जिज्ञासा रखनेवाली सत आत्मा में से हो, तो मेरे वचनों द्वारा कही बातों पर यदि विश्वास न आता हो, तो शुकदेव मुनिजी से जाकर पूछो, वे भागवत में बैठे हैं। उन्होंने भागवत में क्या बताया है, विचार-विवेक करो!

वेद पुराण भारत सहु बांध्या,
त्यारे दाझ रुदेमां समाणी।
ततखिण आव्या गुरुजी पासे,
बोल्या नारदजी वाणी।।१०१।।

भावार्थ :- वेदव्यासजी ने वेद के चार भाग किये। १७ पुराणों की रचना की और तत्पश्चात् महाभारत ग्रंथ भी निर्मित किया। महाभारत में जाकर अंततः उन्होंने मानव मात्र के चारों वर्णों सहित स्त्री जाति को भी भक्ति और ज्ञान का मार्ग बताकर मुक्ति का अधिकार दिया। परन्तु

इतना करने के बाद भी उनके हृदय में शान्ति नहीं हुई। बार-बार हृदय में आह्वान होने लगा कि 'काम अधूरा है ..... काम अधूरा है।' परन्तु क्या काम अधूरा है, वह नहीं समझ में आ रहा था। इस तरह बड़े चिन्तित होकर नदी किनारे बैठे थे। उसी समय उनके (व्यासजी के) गुरु नारदजी वहाँ आ पहुँचे। व्यासजी को चिन्तित अवस्था में देखकर नारदजी ने उनकी खबर ली। तब व्यासजी ने अपनी सारी रामकहानी गुरुजी को सुना दी। अशान्ति का मूल कारण बता दिया और जितनी रचनाएँ थीं, सब उनके आगे रख दीं।

घणी खंडणी कीधी व्यासजीनी,
पूरी वचनोने श्रवणां न दीधी।
वाणी सरवे नाखी उडाडी,
अवतारनी लाज न कीधी ॥१०२॥

भावार्थ :- गुरु नारदजी ने जब व्यास द्वारा रचित ग्रन्थों को देखा, तो जितने ग्रन्थ वे देखते गये, उतने ही वे तपते गये। सारी रचनाओं को देखा भी नहीं। दो-चार ग्रन्थ देखकर सारे ग्रन्थों को जमीन पर पटक दिया और व्यासजी के प्रति नाराज होकर उनकी बहुत खण्डनी की। उनके

पूरे वचनों को सुना भी नहीं और भलीभाँति फिटकार दिया। व्यासजी ने जो वाणी लिखी थी, उनकी सभी वाणियों को रद्द कर दिया। व्यासजी अवतारी पुरुष थे। अतः उनके साथ ऐसा व्यवहार करना योग्य नहीं था। परन्तु सत्य के आगे नारदजी ने अवतार की भी मर्यादा नहीं रखी। व्यासजी की प्रत्यक्ष मूर्खता देखकर उनकी भूल के प्रति नारदजी ने उन्हें सचेत कराया।

सबला रोष भराणां रिषीजी,
जोई व्यास वचन।
सास्त्र सरवे बांधीने,
तें बोल्या बूडतां जन ॥१०३॥

भावार्थ :- व्यासजी के कर्म को ऋषि नारदजी जितना देखते गये, उतना ही उनके चेहरे की आकृति बदलती गयी। प्रत्यक्ष आग-बबूला हो गये। अवतारी पुरुष व्यासजी का मूर्खतापूर्ण कार्य देखकर उनसे रहा नहीं गया और वे क्रोधित होकर बोल उठे, "तुमने वेद से लेकर सत्रहों पुराण की रचना की और अठारहवाँ ग्रन्थ महाभारत भी रचा। पुनः ब्रह्म सूत्र और शारीरिक मीमांसा की रचना भी की। किंतु

तुमने जितने भी शास्त्रों की रचना की, सभी में कर्म को ही प्रधानता दी। ये भूस कूटने की क्या जरूरत थी? आगे कलियुग आ रहा है। कलियुग के मानव क्या तुम्हारे ये शास्त्र पढ़कर मुक्त होंगे? तुमने यही कल्याण किया? कल्याण करने के बदले तुमने तो भारी अकल्याण कर दिया क्योंकि एक तो वेदों के कर्म को सिर पर लेकर लोग ऐसे ही कर्म में डूब रहे थे। दूसरे उन्हें मुक्ति का मार्ग बताने के बदले तुमने कर्म को प्रधानता देकर डूबते हुए की छाती पर और बड़ा पत्थर बाँध दिया। यह कैसा अनर्थ कर डाला तुमने? यह सत्य, त्रेता आदि युग नहीं है! यह तो कलियुग है!!! कलियुग में कौन तुम्हारे कर्म का पालन कर सकेगा? कलियुग के मानव की आयु क्षीण होगी, मन अत्यन्त चंचल होगा, बुद्धि कम होगी, काम प्रधान होगा, पापों का साम्राज्य होगा। अतः पाँच सेकेण्ड में भक्ति करने से उनका जीवन सुफल हो जाय, उनके लिए मुक्ति का ऐसा सरल मार्ग होना चाहिए। किंतु हे मूढ़ाधीश व्यास! तुम्हें मैं क्या कहूँ? तुमने तो उन्हें कर्म का जटिल मार्ग पकड़ा दिया!!"

वेराट धणी ज्यारे नव लाध्यो,
त्यारे कां न रह्यो तूं गोप।

विस्व विगोई सा माटे,
तें उलटा वचन कही फोक ॥१०४॥

भावार्थ :- तुझ मूर्ख को जब वैराट (सृष्टि) के धनी-सृष्टिकर्ता अक्षर नहीं मिले, तब तुमने मौन धारण क्यों नहीं कर लिया? इन थोथे कर्मप्रधान ग्रन्थों की रचना तुमने क्यों की? इससे तो अच्छा था, चुप होकर मौन बैठना। बिना फल की मेहनत करने की क्या जरूरत थी? एक तो विश्व के प्राणियों के आगे कर्म की बड़ाई करके कर्म से ही मुक्ति बताकर उलझे हुओं को और उलझा दिया अर्थात् उलटे मार्ग की बड़ाई करके झूठे वचनों को पुराणों में भर दिया। अतः सारे विश्व को कर्म के बन्धन में उलझाने जैसा वज्रलेपी गुनाह तुमने क्यों किया? दूसरे 'गुरुजी मेरा यह कार्य देखकर मुझे शाबाशी देंगे' यह सोचकर किये गये कार्य के फल के रूप में तुम्हें उलटा गुरुजी की फिटकार खानी पड़ी। इस प्रकार गुरुजी (मैं) ने तुम्हारी सारी मेहनत को चावल रूप में स्वीकार करने के बदले भूस सदृश उड़ा दिया।

विसमां वचन देखी व्यासजीना,
पूरी ते द्रष्ट चढावी।

श्री कृस्नजी विना बीजुं सरवे मिथ्या,
एम कह्युं समझावी ।।१०५।।

भावार्थ :- कलियुग के लोगों के लिये व्यासजी द्वारा बताये गये कर्मप्रधान मार्ग (वचन) पर चलना अत्यन्त कठिन (विसमां) था। युगप्रमाण पालन करने में कठिन मार्ग (वचन) को देखकर गुरु नारदजी ने पूरी दृष्टि चढ़ा ली अर्थात् उनकी आँखें आवेश में लाल-लाल हो गयी। वे फक्कड़ वीतरागी तो थे ही! अतः किसी प्रकार का मुलाहज़ा क्यों बरतते? उन्होंने व्यासजी को बहुत ही फिटकार दिया। फिटकार पाकर और की हुई मेहनत को विफल होता देखकर व्यासजी दोनों चरण पकड़कर गुरु के शरणापन्न हो गये। तब शिष्य व्यास को गुरु नारदजी ने कहा, "देखो! श्री कृष्ण के नामस्मरण, उनकी लीला, चिन्तन के बिना तुम्हारे सारे ग्रन्थ भूस कूटने तुल्य साबित हुए। कृष्ण तत्त्वरहित ये थोथे ग्रन्थ दुनिया को उलझानेवाले हैं। इन मिथ्या वचनों में ही दुनिया उलझी हुई है।"

वचन तणो अहंमेव व्यासजीनो,
नाख्यो ते सरव उडाडी।

दया करीने खंडणी कीधी,
दीधी आंखडी उघाडी ॥ १०६ ॥

भावार्थ :- वेद, पुराण आदि ग्रन्थों की रचना करने पर व्यासजी को यह अहंकार हो आया था कि कलिकाल में मुक्ति का मार्ग बताने जैसा विशाल कार्य, जो आज तक कोई नहीं कर पाया था, मैंने कर दिखाया। उस अभिमान को गुरु नारदजी ने शाबाशी देने की जगह फिटकार देकर उड़ा दिया। शिष्य व्यासजी द्वारा की गई भूल को दिखाकर गुरु नारदजी ने उनके प्रति दया करके उनकी खण्डनी इस ध्येय से की कि फिर वे कभी ऐसी भूल न करें। इस तरह फिटकारकर गुरु नारदजी ने शिष्य व्यास की अंदर की विचार - विवेकरूपी आँखें खोल दी और उन्हें श्री कृष्ण तत्त्व समझाकर पकड़ा दिया।

तेणे समे कह्युं नारदजीए,
न वले जिभ्या मारी एम।
कठण वचन कह्यां व्यासजीने,
में केम केहेवाय आ तेम ॥ १०७ ॥

भावार्थ :- उस समय नारदजी ने अपने शिष्य व्यासजी को जो शब्द कहे, वे शब्द मुझसे

उच्चारण नहीं हो सकते कारण कि वे दोनों तो गुरु-शिष्य थे और अपने शिष्य को गुरु जी चाहे वह कह सकता है। परन्तु "*हाम बाप हिन्दुस्थान*" अर्थात् हिन्दुस्तान के बाप कहलानेवाले हाम-अवतारी पुरुष व्यासजी को गुरु नारदजी द्वारा कहे गए वे शब्द मेरी इस जिह्वा (जीभ) द्वारा कभी नहीं कहे जायेंगे। अन्यथा तो व्यासजी को नारदजी ने अत्यन्त कठिन वचन कहे थे, जो उनके लिए सर्वथा अयोग्य थे। तो मेरे द्वारा वे वचन कैसे कहे जा सकते हैं?

आटलुं पण हुं तो ज कहुं छुं,
रखे केने अजाण्युं जाय।
आ दुनियां भेला साध तणाए,
त्यारे सुं करुं में न रेहेवाय ॥१०८॥

भावार्थ :- गुरु-शिष्य अर्थात् नारद और व्यासजी के बीच की बातें भी मैं तो इसलिए कह रहा हूँ कि कहीं किसी को अनजाने में 'कर्म ही मुक्ति प्रदान करेगा। कर्म करने पर ही अनादि सुख-मुक्त सुख प्राप्त होता है।' यह जानकर कर्म द्वारा मुक्ति की आशा रखकर बाद में निराश न होना पड़े। मूर्खों (दुनिया) के साथ-साथ सज्जन-विद्वान (साध) भी कर्म में ही खींचे

चले जा रहे हैं,यह मुझसे सहन नहीं हो सकता। मूर्खों का अपनी ही मूर्खता के कारण धोखा खाना स्वभाविक है। परन्तु विद्वान कहलाकर मूर्खों की भाँति धोखा खाना, तो बड़ी दुःख की बात है। कोई अन्धा गिरे तो कैसा आश्चर्य, जब आँखवाले ही गिर रहे हों तो? अतः इन विद्वानों की इस गति को देखकर मुझसे रहा नहीं जाता। तब इतना कह रहा हूँ।

हाकली गुरुगम दीधी नारदजीए,
ते लई व्यास घेर आव्या।
सार वचन लई ग्रन्थ सघलाना,
रदे ते मांहे समाव्या ॥१०९॥

भावार्थ :- जब गुरु नारदजी ने अपने शिष्य व्यासजी को फिटकारा, तब व्यासजी गुरु-शरणापन्न होकर रोने लगे। तब शिष्य के प्रति दया करके गुरु नारदजी ने उन्हें गुरुगम-गुरु ज्ञान (मन्त्र) के रूप में 'एक पन्थ, दो काज' अर्थात् जिससे कलियुग के प्राणियों का उद्धार भी हो जाय और अवतारी पुरुष व्यासजी द्वारा अवतार लेकर आने का कर्तव्य भी सफल हो जाय, इस ध्येय से "मूल मन्त्र-चत्रश्लोकी भागवत" अर्थात् भागवत के साररूप वे चार श्लोक दे

दिये, जिन्हें शिवजी ने नित्य गोलोक से प्राप्त किया था। शिवजी द्वारा स्वामी कार्तिक को मिला। स्वामी कार्तिक द्वारा सनकादिक को मिला और सनकादिक से नारदजी ने प्राप्त किया था। वह लेकर व्यासजी अपने आश्रम लौट आये। तत्पश्चात् अपने द्वारा रचित सम्पूर्ण ग्रन्थों का सारस्रूप-नारदजी द्वारा प्रदत्त उस मंत्र का व्यासजी ने १२ वर्ष तक मनन किया। १२ वर्ष तक पचाने (मन्थन करने) के बाद व्यासजी ने जो उगला, जो वर्णन किया, वह है 'श्रीमद्भागवत', जिसे पुराणों का सारस्रूप महापुराण भी कहा है। अतः १२ वर्ष के मन्थन के पश्चात् बुद्धि द्वारा चौकस करके व्यासजी ने जो हृदय में ग्रहण किया, उसी का नाम है 'श्रीमद्भागवत महापुराण'!

सार तणो विचार करीने,
बांध्या द्वादस स्कंध।
त्यारे ठरयो रदे एणे वचने,
मन पाम्युं आनन्द ॥११०॥

भावार्थ :- मूल-वेद से लेकर सत्रहों पुराणों पर विचार-विवेक कर इन सभी ग्रन्थों के फल-माखन के रूप में श्रीमद्भागवत रखा गया।

नारदजी द्वारा प्रदत्त चार श्लोकों का विस्तार वेदों से शुरू कर अन्त में लक्ष्यरूपी वस्तु श्रीमद्भागवत पकड़ाया। यह ग्रन्थ द्वादश स्कन्धों में पूर्ण हुआ। यसर्थ श्रीमद्भागवत महापुराण 'वेदान्त' के नाम से भी परिचित है। वेदव्यासजी को अन्य सभी पुराणों की रचना द्वारा जो शान्ति न मिल सकी, वह शान्ति महापुराण श्रीमद्भागवत की रचना द्वारा प्राप्त हुई। हृदय ने भी कबूल किया कि अब अवतारी पुरुष का कार्य पूरा हुआ। श्रीमद्भागवत की रचना पूरी होते ही मन स्वतः ही हर्षित होकर उमड़ने लगा। तब व्यासजी ने 'अपना तन धारण करना सफल हुआ' ऐसा माना। जिस प्रकार इस रचना द्वारा व्यासजी का हृदय शान्त हुआ, उसी प्रकार कलिकाल में त्रिताप में जलती दुनिया के दिल को शान्त कर सुमार्ग में लगाने के लिए यह ग्रन्थ 'औषधि मूलक' सिद्ध हुआ।

उदर सुकजी उपना,
अने आंहीं उपनुं भागवत।
व्यासे वचन कही प्रीछव्यां,
ग्रही प्रीसव्यां संत ॥१११॥

भावार्थ :- व्यासजी की पत्नी के मुख से

प्रवेश कर १२ वर्ष तक उनके गर्भ में रहने के कारण शुकदेवजी व्यास पुत्र कहलाते हैं। अपने पुत्र को अपना ही अंग माना जाता है। अतः 'नाभी से वैराट और मुख से वेद' पुनः 'मुख से भागवत, उदर से वैराट' इस प्रकार उत्पत्ति मानी जाती है। तो सृष्टि का मूल यहाँ नाभी है। नाभी से तात्पर्य है - उदर। यसर्थ व्यासजी के उदर से शुकदेवजी की उत्पत्ति कही जाती है। पुनः सृष्टि का मूल-नाभी द्वारा उत्पन्न वैराट और मुख द्वारा उत्पन्न वेद-इन दोनों कोहेडों के बन्धन से पार लगानेवाली वस्तु 'श्रीमद्‌भागवत' की यहाँ उत्पत्ति हुई। व्यासजी ने सर्वप्रथम भागवत का ज्ञान शुकमुनि को समझाया - पढ़ाया और बाद में शुक अवतार शुकदेवजी ने उस फल में चोंच मारी अर्थात् उस फल का मनन-मन्थन करके उसमें रस भरा। तात्पर्य यह है कि उस फल को सर्वप्रथम स्वयं शुकदेवजी ने ग्रहण किया तथा स्वयं पचाने के बाद वह ब्रह्मरस ८८ हजार ऋषियों के आगे परोसा अथवा पिता द्वारा दिए हुए ज्ञान को निर्णयात्मक रूप देकर, रसदार बनाकर उसका प्रचार किया।

सारनुं सार थयुं भागवत,
वचन थयां ववेक।

वली अमृत सींच्युं सुकदेवे,
तेणे थयुं रे वसेक ॥११२॥

भावार्थ :- एक प्रकार से मार्गदर्शक रूप में सारस्रूप वेद है। वेदों का सार पुराण है। पुनः उक्त दोनों का सारस्रूप भागवत यहाँ उत्पन्न हुआ। अतः वेद से लेकर सम्पूर्ण ज्ञानपूर्ण वचनों का सार भागवत है। भागवत की रचना का सूत्रपात (आरंभ) यहाँ से हुआ। जैसे - व्यासजी को अशान्ति होना, गुरु नारदजी से सार प्राप्त करना, १२ वर्ष तक प्राप्त सारस्रूप वस्तु का मनन करना और अन्त में फल प्राप्त करना। अतः भागवत की रचना पूरे विवेक द्वारा हुई। उक्त मेहनत द्वारा व्यासजी को प्राप्त हुआ फल वीतरागी योगेश्वर शुक अवतार शुकदेवजी के विवेकपूर्ण वचनों द्वारा रसदार होकर प्रकट हुआ अर्थात् व्यासजी की मेहनत को उनके पुत्र शुकदेवजी ने अमृतरूपी रस से सींचा। इस प्रकार शुकमुनि द्वारा उस फल में अमृतरसयुक्त चोंच मारने पर वही श्रीमद्भागवत महापुराण एक महत्त्वपूर्ण, आत्मा-उद्धारक अमृत के रूप में जनता के बीच प्रकट हुआ। तब से जीव अमरत्व प्राप्त करने लगे।

सकल सारनुं सार निपनुं,
सहु को ते मुखथी भाखे।
पण वचन भारे विचार न थाय,
त्यारे विप्र वाणी पेहेलानी दाखे ।।११३।।

भावार्थ :- सम्पूर्ण आप्तपुरुषों के वचनों का फलरूप सार वेद, वेदों का लक्ष्यरूप सार अर्थात् वेद+अन्त=वेदान्त, वेदों के अन्तिम लक्ष्य परमात्मारूपी फल को निर्देश कराने का सामर्थ्य रखनेवाला ग्रन्थ श्रीमद्‌भागवत महापुराण प्रकट हुआ। *'ये भागवत सार का सार है, वेदान्तरूप है, शक्तिशाली ग्रन्थ है'*। ये बातें सभी विद्वान अपने मुख से कहते तो हैं, परंतु यदि इस ग्रन्थ के प्रति उन विद्वानों की श्रद्धा और विश्वास देखा जाय, तो आश्चर्य होता है। परन्तु वस्तु जितनी शक्तिशाली और गहनशील होती है, उसकी प्राप्ति में छिपी समझ में भी उतनी ही गहनता होती है। किन्तु मुख से मात्र कहनेवाले विद्वानों द्वारा उक्त ग्रन्थ के वचनों पर किए गए विचार-विवेक और उसकी निश्चयता में भार-गहनता नहीं आती। भारी वचनों को समझने के लिए बुद्धि भी भारी चाहिए और उद्योग भी भारी चाहिए। भारी कठिनता से ही भारी वस्तु

की प्राप्ति की जा सकती है। तभी तो विद्वान लोग जब भागवत का पारायणादि शुरू करते हैं, तो शुरूआत में वेदों के कर्मकाण्ड से विधिवत् कर्म कराते हैं। मुख से तो भागवत को 'सार नुं सार' कहते हैं, परन्तु लोभ के परवश होकर 'मूलगां जई झाले' कर्मकाण्ड को महत्त्व देते हैं क्योंकि कर्म संसार को पकड़ाता है और भागवत कर्म छुड़ाता है। अतः भागवत आगे रखकर कर्म को प्रधानता देकर ये हाट नहीं चला रहे हैं, तो और क्या कर रहे हैं? इन्हें कर्मकाण्ड द्वारा कमाई ही तो करनी है। इन्हें कहाँ भागवत द्वारा आत्म-कल्याण करना है? यसर्थ वे कर्मकाण्ड को ही महत्त्व देकर कर्म से ही मुक्ति दिखाते हैं।

सुकजी केरां वचन समझी,
जो कोई रदे विचारो।
सात दिवस मांहे परीखत वैकुंठ,
वचने पार उतार्यो ॥११४॥

भावार्थ :- शुकदेव मुनि के श्रीमद्भागवत के वचनों को समझाकर उन पर हृदय-अन्तःकरण से विचार करो कि उन वचनों में क्या कहा है? ये किस धाम में अथवा कैसे सुख

में पहुँचानेवाले वचन हैं? ये वचन कितने शक्तिशाली हैं, इस तत्त्व पर विचार करके उन वचनों के महात्म्य को समझो!! इन्हीं वचनों को श्रवण कराकर योगेश्वर शुकदेवजी ने ७ दिन में अकाल मृत्यु के मुख में जानेवाले राजा परीक्षित को भवसागर से निकालकर वैकुण्ठ में मुक्ति प्रदान की थी। अकाल मृत्युवालों की मुक्ति नहीं मानी जाती। परन्तु जहाँ शुकदेव जैसे योगेश्वर और भागवत सदृश अमृत रसरूप ज्ञान हो, वहाँ अकाल मृत्यु का नियम क्या रह सकता है? कदापि नहीं!

ते ज वचन वांचता सांभलता,
जाए जम वारो बांध्यो।
अरथ तणी ओलखाण न आवे,
प्रेम वचन नव लाध्यो॥११५॥

भावार्थ :- जिन वचनों को श्रवण कर अकाल मृत्यु का ग्रास बननेवाले राजा परीक्षित को वैकुण्ठ में मुक्ति प्राप्त हुई। भागवत के वे ही वचन पढ़ते और सुनते हुए भी यहाँ तो वक्ता और श्रोता वैकुण्ठ पहुँचने के बदले ऐसे-ऐसे जम फाँस में बाँधनेवाले कर्म करते जा रहे हैं कि जिसके कारण उन्हें जमद्वार पर खड़ा होना पड़ता

है। इन विद्वानों को भागवत के वचनों में छिपे गोप्य अर्थ की पहचान नहीं है। अतः ये अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं। *'भागवत के अन्दर बताया गया प्रेम कैसा है? उस प्रेम को लेने से क्या नफा होता है? वह प्रेम किन परमात्मा के कैसे सुख में पहुँचानेवाला है? उस प्रेम को कैसे लिया जाय?'* इन बातों का कुछ भी ज्ञान इन्हें नहीं है। यहाँ तो दोनों पक्ष में स्वार्थ का व्यापार चलता है। वक्ता को धन का स्वार्थ है, तो श्रोता को नाम का अभिमान है।

अहेनिस अरथ करे समझावे,
केहनो रंग न पलटो थाए ।
बेहेराने कालो संभलावे,
बांध्या ते माटे जाए ।।११६ ।।

भावार्थ :- जिस भागवत को श्रवण कर सात दिन में परीक्षित का रंग पलट गया, अकाल मृत्यु के मुख में जाने के बदले वह वैकुण्ठ के द्वार में प्रवेश कर गया, भागवत के उन्हीं वचनों को यहाँ श्रोता और वक्ता रात-दिन श्रवण करते और कराते हैं, परन्तु उस ज्ञान द्वारा न श्रोता का रंग ही पलट (बदल) पाता है और न वक्ता का ही। उन वचनों की चोट न श्रोता को लग

पाती है और न वक्ता को! दोनों जैसे के तैसे ही रह जाते हैं। इसका कारण क्या? इसका कारण यह है कि अभी की कथा-मण्डान में तो ऐसे वक्ता और श्रोता मिले हैं कि श्रोता तो कान के बहरे हैं और वक्ता मुख के काले अर्थात् गूँगे* हैं। तो चर्चा की चोट क्या असर करेगी? बहरा इसलिए कहा है कि किसी भी श्रोता को चर्चा सुनकर जीवन में उतारना नहीं है। सुनकर वहीं छोड़ देना है। पुनः कालो इसलिए कहा है कि आज के वक्ता को श्रोताओं को चर्चा के गोप्य अर्थ की पहचान कराकर परलोक पकड़ाना नहीं है, परमात्मा के प्रति प्रेम और संसार से बैर का बोध कराना नहीं है। उन्हें तो केवल श्रोताओं को हँसाकर अपने पास धन बढ़ाना है। यसर्थ ये दोनों भागवत जैसे

---

*"मूकोऽस्ति को वा बधिरश्च को वा,
वक्तुं न युक्तं समये समर्थ।
तथ्यं सुपथ्यं न श्रृणोति वाक्यं"

-(शंकराचार्य प्रश्नोत्तरी)।

अर्थ :- गूँगा कौन है? जो समय पर उचित वचन कहने में समर्थ नहीं है - वह गूँगा है। पुनः बहरा कौन है? जो यथार्थ और हितकर वचन सुन नहीं सकता - वह बहरा है।

मोक्षदायी ग्रन्थ की चर्चा सुनते-सुनाते हुए भी अनर्थ कर्म के बन्धन में पड़कर जमफाँस में बँधे जा रहे हैं।

आंकडी कोय न जुए रे उखेडी,
वचन तणां जे ववेक।
गुरुगम टाली खबर न पडे,
ए अरथ भारे छे वसेक ।।११७।।

भावार्थ :- भागवत के अन्दर की आँकड़ियों को आज तक न किसी ने खोलकर बताये हैं और सुननेवालों में से भी न किसी ने सुना ही है। अतः उन आँकड़ियों को समझे बिना ये क्या करें? जब ये वचनों की आँकड़ियों में ही गोते खा रहे हैं, तो द्वार खोलकर वस्तु कैसे प्राप्त कर सकें? इन आँकड़ियों को गुरुगम के बिना कौन खोल सकेगा? जिनके पास सच्चे गुरु का ज्ञान होगा, वही इन आँकड़ियों को सुलझाकर द्वार प्राप्त कर सकेगा। अन्यथा भागवत के वचन तो बड़ी भारी गहनता रखते हैं। आँकड़ी न खुलने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है। विशेष ग्रन्थों के वचन भी विशेष होते हैं और अर्थ भी विशेष ही होता है। अतः उसके द्वारा वस्तु भी विशेष ही प्राप्त होती है।

ए रे अरथ मांहे छे अजवालुं,
जो कोय जोसे रे विचारी।
रुदया मांहे थासे प्रकास,
ज्यारे जागसे जीव संभारी।।११८।।

भावार्थ :- श्रीमद्भागवत के वचनों के अर्थ में प्रकाशपूर्ण रोशनी है। जो इन वचनों को विचार कर देखेगा, तो उन्हें इन वचनों में प्रत्यक्ष ब्रह्म-तत्त्व का प्रकाश दिखाई देगा। जीव को रोशन कर आत्मा में बदलाकर परमात्मा से मिलवाने की शक्ति इन वचनों में है, परंतु वह शक्ति अर्थ को विचार कर देखने से मिलेगी। भागवत के वचनों के अर्थ का यदि प्रकाश प्राप्त कर सको, तो वह प्रकाश हृदय के चारों अन्तःकरणों को प्रकाशित करेगा। जब मन, बुद्धि और चित्त उन वचनों को कबूल कर लेंगे, तो उस प्रकाश को प्राप्त करने में धाम का अहमेव (अहंकार) उत्पन्न होगा। तत्पश्चात् चारों अन्तःकरणों द्वारा इन्द्रियों में प्रकाश फैलेगा। तब जन्म-जन्मान्तर से अज्ञान में पड़े जीव की नींद भाग जायेगी और जीव जागृत हो जायेगा।

जीव जाग्यो त्यारे नथी वस्त वेगली,
आतम पर आतम जोड।

त्यारे वासो दईने विस्वने,

सनमुख रेहेसे कर जोड ।।११९।।

भावार्थ :- जब जीव उक्त वचनों के प्रकाश से इसी तन में जागृत हो जाएगा, तब जागृत जीव से परमात्मारूपी वस्तु अलग नहीं रह पाएगी। आत्मा का परमात्मा के साथ संयोग हो जाएगा। आत्मा प्रत्यक्ष ही परात्मा को देखने लगेगी। तब तो जागृत जीव-आत्मा विश्व को पीठ देकर, ठुकराकर अपनी परात्मा के सन्मुख हाथ जोड़कर खड़ा रहेगा। उसे विश्व की इच्छा, तृष्णा, मोह, ममता, लोभ आदि कुछ भी नजर नहीं आयेगा। नजर में एक मात्र लक्ष्य-परात्मा रहेगा। अब तो सर्वभावेन आत्मा परात्मा के आनन्द में मस्त रहेगी।

विध सघली समझी वैराटनी,

माया करसे सत।

स्वामी सेवक थासे संजोग,

त्यारे उडी जासे असत ।।१२०।।

भावार्थ :- जब उक्त वचनों के ज्ञान द्वारा जीव 'वैराट की विध' अर्थात् ये पिण्ड और ब्रह्माण्ड किस प्रकार से उत्पन्न हुए हैं, पाँच तत्त्वों के मिश्रण से किस प्रकार स्वप्नवत् सृष्टि की रचना की गई है? यह समझकर जागृत हो

जायेगा, तब जिस मायावी तन में होकर उस आत्मा ने परात्मा प्राप्त किया, वह तन भी सत्य होगा। जिन पाँच तत्त्वों के मिश्रण से उस तन की रचना हुई थी, वे पाँचों तत्त्व भी धन्य-धन्य हो जायेंगे। जिस प्रकार शुकदेव, मीरा आदि भक्तों का तन धन्य-धन्य कहलाया। जागृत जीव की परात्मा के पिता परमात्मा हैं। अतः जब जीव जागृत हो जाएगा, तब इस आज्ञाकारी जीवात्मा को उसके पिता के पास ले जाने में माया भी सच्ची सहायक बनेगी क्योंकि माया ब्रह्म की अर्धाङ्ग रूप है। ये शरीर के गुण, अंग, इन्द्रिय सब माया द्वारा ही उत्पन्न हैं। ये सब भी तब मिलकर जीवात्मा को सच्चा ब्रह्म प्राप्त करानेवाले ब्रह्ममार्ग पर अग्रसर होने में बल देंगे। तब तो स्वामी-परमात्मा और सेवक-जीवात्मा दोनों का संजोग हो जायेगा। जिस असत् के वश में होकर आत्मा जीव कहलाती थी, अब वह असत् भी उड़ जायेगा। अतः जिस सेवक के आगे सूर्यरूपी स्वामी खड़े हैं, अंधकाररूपी असत् उस सेवक के आगे कैसे रह सकेगा? कदापि नहीं! हरगिज़ नहीं!!

थासे संजोग त्यारे बंध छूटया,
करम नहीं लवलेस।

निहकरम तणां निसानज वाग्यां,
अखंड सुख पामसे वसेक ।। १२१ ।।

भावार्थ :- उपर्युक्त प्रकार से जब स्वामी और सेवक का संयोग होगा, तब उस सेवकरूपी जीवात्मा के लाखों वर्षों का कर्मरूपी बन्धन छूट जायेगा। जीवात्मा के तीनों प्रकार के जैसे संचित, प्रारब्ध और कृत कर्म समाप्त हो जायेंगे। परमात्मा के प्रत्यक्ष ज्ञानाग्नि में जलकर कर्म की जाली भस्म हो जायेगी। उस जीव के लिए तब तो कर्म लेश मात्र भी नहीं रह जायेगा। अब तो उस जीव के हृदयपट में निष्काम (निहकरम) कर्म के निशान प्रकट होंगे। जैसे कुन्ती श्री कृष्ण से कहती है -

स्वकर्म-फल-निर्दिष्टां
यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश!
त्वयि भक्तिर दृढ़ाऽस्तु मे ।।

- (पाण्डव गीता)।

अर्थात् "अपने कर्मों के फलस्वरूप जिस-जिस योनि में मेरा जन्म हो, उस-उस योनि में हे हृषीकेश! मेरी तुझमें भक्ति दृढ़ रहे।" उसी प्रकार से उस जीव के मुख से भी निष्काम भक्तिरूपी कर्म के निशानों का आह्वान होगा, जिस प्रकार

मीरा के मुख से स्वतः ही निष्काम भक्ति की निशानरूपी धुन बजने लगी थी कि 'मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी।' तत्पश्चात् जीवात्मा अपने स्वामी के पास जाकर विशेष अखण्ड सुख में सुखी होकर बैठेगा।

बीजा केहेने दोस न दीजे रे भाईजी,
ए माया विकराल।
करोलिया जेम गुंथी गूथें,
मुझाई मरे मांहे जाल ।।१२२।।

भावार्थ :- अन्य-दूसरों को दोष मत दो क्योंकि हे भाइयों! कहे प्रमाण किसी से चला नहीं जाता। चाहते तो सभी हैं कि 'मैं कामी, क्रोधी अथवा लोभी न बनूँ।' इस प्रकार सभी सद्गुणयुक्त ही बनना चाहते हैं, परन्तु माया ऐसी शक्तिशाली है कि लोग जबरदस्ती उसके परवश हो जाते हैं। ये माया विकराल है। किस कोने में विकराल मुँह फाड़े बैठी रहती है और अकस्मात् ही जीव को अपने वश में करके कुकर्म कराने लगती है। जिस प्रकार करोलिया-मकड़ी अपने ही मुख से गूथी हुई जाली में अपने को खो बैठती है, एक मकड़ी द्वारा लाखों बच्चे जन्म लेते हैं और खाना न मिलने पर बच्चे

अपनी जन्मदात्री माँ को ही पेट की भूख मिटाने के लिए ग्रास बना लेते हैं अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी अपने द्वारा ही गूथी हुई जाली में उलझकर उसी जाली में मर जाती है, उसी प्रकार मायावी जीव अपने ही गुण, अंग, इन्द्रियों के परवश होकर माया में बहकर कुकर्म कर डालते हैं और कर्म के बन्धन में बँध जाते हैं।

जे जीव होय जल तणों,
ते न रहे विना जल।
अनेक विधनां सुख देखाडो,
पण मूके नहीं पाणीवल ॥ १२३ ॥

भावार्थ :- इन वचनों को सुनकर, इस ज्ञान को जानकर भी जो जीव कुकर्म, अकृत अथवा निषेध कर्म करता है, महापुरुषों के सत्य वचनों को ठुकराता है, परलोक की चिन्ता नहीं करता, तो समझ लेना कि वह माया का ही जीव है। माया के जीव से माया छोड़ी नहीं जायेगी। तीनों काल में माया ही उसका घर है। जिस प्रकार चरकीन का भँवरा और गुलाब का भँवरा-दोनों देखने में एक ही समान हैं, परन्तु दोनों का स्थान अलग-अलग है। माया के जीव माया से ही

उत्पन्न होने के कारण एक पल के लिए भी माया के बिना नहीं रह सकते। जैसे - मछली और पानी। उसी प्रकार इन मायावी जीवों को भले अनेक प्रकार से वैकुण्ठ के अपार सुख दिखाओ, परन्तु वे उन सुखों को अपने पंचविषय के सुखों से बढ़कर कभी नहीं मानेंगे और पंचजन्य सुखों को पानी के बुलबुले की आयुकाल जितनी अवधि के लिए भी छोड़ नहीं सकेंगे।

तेम जीव होय सागर तणों,
ते मूके नहीं भवसागर ।
अखंड सुख जो अनेक देखाडो,
पण मूके नहीं पोते घर ॥१२४॥

भावार्थ :- उसी प्रकार जो भवसागर-असार संसार का जीव हो, उसे वैकुण्ठ का सुख सुनते ही जहर सदृश लगेगा। जिस प्रकार खारे जल में रहनेवाले जीव-जन्तुओं को मीठे जल में डालते ही वे मर जाते हैं और मीठे जल की मछली को नमकदार खारे जल में डालते ही उसके प्राण चले जाते हैं, उसी प्रकार वैकुण्ठ के जीव मीठे जल की मछली समान हैं। अतः भवसागर के खारे-चौरासी लाख योनियों के दुःखरूपी जल

का नाम सुनते ही वैकुण्ठ के मार्ग पर चलने लगेंगे। परन्तु यदि जीव ८४ के सागर के हों, तो वैकुण्ठ मार्ग का नाम ही उन्हें काँटेदार लगेगा। स्वतः का पंचजन्य नगद सुख छोड़कर, त्याग और वैराग्य के उजाड़ वह भी उधार के मार्ग पर चलने का नाम सुनते ही वे दम तोड़कर भागने लगेंगे। अखण्ड सुख का वर्णन भले ही अनेक बार दिखाओ, उस सुख का वर्णन सुनते ही उन्हें दुःखदायी लगेगा। कदाच मजबूरी में सुनना भी पड़े तो 'उंघे कां उठ जाय', परन्तु अपना स्थानरूपी घर छोड़कर वे कदापि नहीं रह सकेंगे।

खरो हसे जे खरी भोमतणों,
आ वचन विचारसे जेह।
अगिन झाला देखीने छाडसे,
अखंड सुख लेसे तेह॥१२५॥

भावार्थ :- अतः सुख का मार्ग चलकर सुख की घाटी पर तो वही उतर सकेगा, जो सच्ची भूमिका-वैकुण्ठ का सच्चा जीव होगा। जो वैकुण्ठ का सच्चा जीव होगा, वह 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' अर्थात् सुनते ही त्याग, वैराग्य ग्रहण कर लेगा। सच्ची बातों के प्रति उन्हें विश्वास उत्पन्न होगा और जो सच्ची आत्मा है, वही विचार करके

इन वचनों को ग्रहण कर सकेगी। जो सच्ची आत्मा होगी, वह संसार के पंचजन्य सुखरूपी अग्नि की झाला को देखकर उस जलती ज्वाला से अपनी आत्मा को बचायेगी। जिस आत्मा को यह संसार जलते तावे सदृश दिखाई देता है, वही आत्मा त्याग और वैराग्य के मार्ग पर चलकर वैकुण्ठ के अखण्ड सुख को प्राप्त कर सकेगी।

मन करमने ठेलसे,
जेथी प्रगट थाय सरवा अंग।
साथी बोध संघाती बोले,
जीव मन एके रंग ॥१२६॥

भावार्थ :- जो जीव संसार की पहचान अग्नि की ज्वाला के रूप में कर लेगा, उसका मन अब संसार के पंचजन्य सुखों में जायेगा ही नहीं! उसका मन अब उन सुखों से दूर भागने लगेगा!! तब तो स्वाभाविकतया कर्म बन्द हो जाएगा। अब जब काले सर्परूपी भयावह संसार में मन उचाट होने लगेगा, तब मन कर्म को दूसरी ओर ठेलने-ढकेलने लगेगा। जब मन उस अखण्ड सुख का स्वाद लेने लगा, तो कर्म भी वहीं का होने लगेगा। अब जीव और मन एक होकर, अखण्ड परमात्मा के सुख में ओत-प्रोत होकर सर्वांग में परमात्मा के प्रति प्रेम भरने

लगेंगे। हृदय पट से प्रेम का मूल स्त्रोत प्रकट हो आएगा, तो वह जीव परमात्मा के प्रेम में विभोर होकर नाचने लगेगा। कभी हँसेगा, तो कभी रोएगा, कभी गाएगा। इस प्रकार बारम्बार रोमांचित होते रहेगा। अन्ततः साथी-प्रमुख राजा मन अन्तःकरण अपने साथ चलनेवाली इन्द्रियरूपी संघात (फौज) को इस प्रेम का बोध कराने लगेगा। तब इन्द्रियाँ भी मन की बातें स्वीकार कर उसके अनुकूल ही बोलने लगेंगी। अब तो जीव और मन - दोनों एक ही दिशा - परमात्मा की तरफ का सुख लेने लगेंगे।

हवे गोप वचन केहेवासे गुरुगम,
ते केम प्रगट होय।
विस्नु संग्राम करीने लेसे,
साध हसे जे कोय ॥१२७॥

भावार्थ :- अब तक मैंने मेरे गुरु के वचन नहीं कहे हैं। किंतु अब तो गोप वचन– मेरे गुरु के ज्ञान में छिपे गोप्य रहस्य कहने हैं। यहाँ तक मैंने तारतम पक्ष की बात नहीं की। किंतु मैं अपने गुरु का गोप्य तत्त्वयुक्त ज्ञान ऐसे-वैसे जीव के आगे कैसे प्रकट करूँ? मेरे गुरु का ज्ञान तो 'विष्णु संग्राम' अर्थात् धर्मयुद्ध करके लेनेवाला

जीव ही प्राप्त कर सकेगा। जो सच्चे सतगुणी साधु होंगे, वे मेरे आगे जिज्ञासा प्रकट कर कहेंगे। "अपने गुरु का ज्ञान आपको हमें बताना ही पड़ेगा। मैं लेने के लिए तत्पर हूँ।" अतः त्यागी, वीतरागी, 'सूरे पूरे घायले लेवाए' सदृश जीव ही मेरे गुरु के ज्ञान को ले सकेगा और मैं भी उसे ही दूँगा।

आ तां अनुमाने बाण नाख्यां उडाडी,
बीजा भारी उडाड्या न जाय।
सनमुख मले नहीं जिहां सुरो,
ते हथूका विना न चोडाय॥१२८॥

भावार्थ :- संसार के लोग वेद, शास्त्रों, पुराणों, उपनिषदों तथा अन्य ऋषि-महर्षियों के ग्रन्थों की तरह ही श्रीमद्भागवत महापुराण के ज्ञान के विषय में भी आज तक जो अनुमान लगाते आये थे, उनके उन अनुमानों को मैंने अन्य ग्रंथों के वचनों तथा श्रीमद्भागवत के प्रत्यक्ष वचनों के बीच सन्तुलन करके उड़ा दिया अर्थात् समझाकर निर्मूल कर दिया। किंतु मेरे सद्गुरु के भारी-गोप्य ज्ञानपूर्ण वचन मेरे द्वारा समझाये नहीं जाते। उन गोप्य रहस्यपूर्ण वचनों को मैं कहाँ तक समझाऊँ? अतः जब

तक मेरे सन्मुख मायावी विकारों को त्यागकर आत्मीय गुण धारण करनेवाला शूरवीर जीव, मेरे सद्गुरु के ज्ञानपूर्ण रहस्यमयी वचनों को धनी की ही समझ के अनुकूल अन्तःकरण में उतारनेवाला घायल जीव नहीं मिल जाता, तब तक मैं अपने धनी के ज्ञानपूर्ण प्रकाशवंत वचन अन्य के आगे नहीं कह सकता। क्योंकि मेरे गुरु के ज्ञानरूपी हथौड़े की चोट का निशाना सच्चे जीव का हृदय ही बन सकता है। अन्य मायावी विकारयुक्त जीवों के अन्तःकरण में यह ज्ञानरूपी बाण छोड़ा नहीं जा सकता।

साध ओलखासे वचने,
अने करसे समागम।
साध वाणी साध एम ओचरे,
संगत छे साध रतन ॥१२९॥

भावार्थ :- मेरे इन वचनों पर विचार और इनकी पहचान तो सच्ची साधना में उतरनेवाली साधक आत्माएँ ही कर सकेंगी। अन्य तो सुनकर उड़ा देंगे। जो सच्चे जिज्ञासु साधनशील जीव होंगे, वे इन वचनों को सुनकर मेरे पास आयेंगे, मुझसे मिलेंगे। अतः हे साधनशील मुमुक्षु आत्माओं! आप्तपुरुषों की

वाणी ऐसा कहती है कि सच्चे साधन द्वारा लक्ष्य की सिद्धि करनेवाले साधुओं की संगत से परमात्मा तत्त्वरूपी रत्न को प्राप्त किया जा सकता है। यसर्थ सच्चे साधु का संग करो!

-(किरंतन, प्र. १२६/चौ. १२९)।

।।हां रे मारा साध कुलीनां सांभलो।।

हां रे मारा साध कुलीनां सांभलो।।टेक।।
माया कोहेडो अंधेर केहेवाय,
माहें साध बंधाणा जाए।
तमने हजी लगे सोध न थाय,
काल ताकी ऊभो माथे खाए।।१।।

भावार्थ :- हे साधुओं! तुम्हारे अहोभाग्य से तुम्हें इस युग में जन्म प्राप्त हुआ है। जिस कलियुग का बखान करते-करते बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भी तृप्त नहीं हुए, ऐसे युग में जन्म प्राप्त करनेवाले हे भाग्यवान् साधुओं! तुम लोग मेरी बातों को सुनो!! सृष्टि में व्यापक यह बादल सदृश अंधकाररूप वास्तविक वस्तुओं को ढँककर असत् दिखाने में सामर्थ्यशाली माया-रूप कोहेडा-उलझनरूप है। इस प्रकार अन्धेर में डालनेवाली सामर्थ्यशाली माया के परवश

होकर उसकी छलयुक्त करतूत को बिना समझे मूर्ख तो उसके बन्धन में पड़े ही पड़े, परन्तु त्याग और वैराग्य की क़ीमत जाननेवाले विद्वान ज्ञाता भी माया के कर्मरूपी बन्धन में बँधे जा रहे हैं। हे साधनशील पुरुषों! वेद-शास्त्रों द्वारा आप्तपुरुषों की चेतावनी सुनकर भी तुम्हें अब तक माया की शक्तियों-कलाओं, छलछिद्र की पहचान नहीं हो पायी? माया किस-किस रूप में आकर जीव को अपने वश में करके नचाती है, क्या तुम यह नहीं समझते? ऐसी शक्तिशाली माया को तुम साधारण समझ रहे हो क्या? यही माया कालरूप होकर सभी जीवों के सिर पर खड़े मँडरा रही है, जैसे अभी का अभी दबोच लेगी। किसी को मालूम नहीं कि मेरी मौत किस वर्ष, किस दिन, किस क्षण में, कहाँ पर और किस प्रकार होगी!

अतः ऐसे भयावह स्थान पर जन्म लेकर अकृत कर्म में उन्मत्त क्यों हो रहे हो? क्षणिक पंचजन्य सुख में भूलकर जीवन मत गँवाओ। तुम अपने आत्म-कल्याणार्थ ८४ के चक्कर से निकलकर इस जीवन में आये हो। यसर्थ अपना उद्धार करो!

साध वाणी तमे सांभली रे,
कां न विचारो मन।

आणे अजवाले मानषे,
तमे कां रे भूलो साध जन ॥२॥

भावार्थ :- साधु-आप्तपुरुषों द्वारा वेद, पुराणादि सद्ग्रन्थों में इंगित वाणी को तुमने सुना है। शास्त्र, पुराणों में इंगित इन साधु-महात्माओं की पुकार को सुनकर तुम अपने मन में विचार क्यों नहीं करते? क्या उनकी पुकार ४ पैरवाले पशुओं के लिये हैं? नहीं, अपितु मानव मात्र के मार्गदर्शन के लिए यह पुकार की जा रही है क्योंकि तुममें विचार-विवेक है। तुम विचार कर सकोगे तथा तुम अपने विवेक द्वारा निर्णय करके इस मानव तन द्वारा परमात्मा प्राप्त कर सकोगे। अतः तुम क्यों नहीं ध्यान देते? इस प्रकाशवन्त मानव तन में ऐसी शक्ति है कि यह चौदह लोकों में उजाला कर सकता है अर्थात् अपने विचार-विवेक, बुद्धिरूपी शक्ति द्वारा इस तन से ही अपना उद्धार करते हुए चौदह लोकों के जीवों का भी उद्धार कर सकता है। इस तन द्वारा जो इच्छा करो, वह प्राप्त कर सकते हो। अतः ऐसे अमूल्य अवसर को हे साधुओं! भूलन-नींद में पड़कर क्यों गँवा रहे हो?

खिण मांहे अरथ ज लीजे रे,
जे वचन कह्यां वेद व्यासे।

दीपक वा मा खमे नहीं,
हवणां धबक अंधारुं थासे ।। ३ ।।

भावार्थ :- हे साधनशील आत्माओं! जीवन क्षणिक है। अतः अवधि के अनुसार कार्य भी शीघ्र ही करना चाहिए अर्थात् शास्त्रों के वचनों का अर्थ तौलकर तुरन्त ही जीवन में लेना चाहिए। सभी शास्त्रों का कहना है कि अपने गुण, अंग, इन्द्रियों को बुरे कर्म करने से रोको अर्थात् दिन-प्रतिदिन बुरा मत सुनो, बुरे वचनों से जबान को रोको, बुरी दृष्टि से मत देखो! अतः वेदव्यासजी द्वारा कहे उक्त कल्याणार्थी वचनों के अर्थ को तुरन्त ग्रहण करो। मानव तन दीपक सदृश क्षणिक है। कालरूपी पवन (वा) के बीच यह नहीं टिक पायेगा अर्थात् जीवन का भरोसा नहीं है। अभी या कुछ देर बाद अथवा पचासों वर्ष में समाप्त हो सकता है। कालपुरुष ने निश्चित कर किसी को यह लिखकर नहीं दिया है कि 'अमुक वर्ष बाद ही मैं तुझे लेने आऊँगा। अतः ध्यान, भक्ति, तपस्या आदि धर्म बाद में करने से भी चलेगा। अभी तू पंचजन्य विषयों के नगद सुख का आनन्द ले।' ऐसा है किसी के पास लिखा हुआ? कलियुग के मानव की आयु अन्य युग की मानव की आयु के अपेक्षा क्षणिक

में क्षणिक है। अभी का अभी तुरन्त ही सौ वर्ष बीत जायेंगे। १०० वर्ष की क्या आशा करनी! गई हुई श्वास न लौटे तो? पीछे तो तुरन्त ही यहाँ के कर्म के फलस्वरूप ८४ के बेसुध अंधकारमय योनि में फँसकर जीवन अस्त हो जायेगा।

कथतां सांभलतां ए गिनान रे,
जमवारो आवसे रे।
अधवचे सरव मुकावी,
तरत बांधीने जासे रे॥ ४ ॥

भावार्थ :- ऐसे 'सार नुं सार' श्रीमद्भागवत की कथा सुनाने और सुनने पर भी यदि जीवन में भिन्नता नहीं आई, अमृत प्राप्त करने के बाद भी यदि अन्त में सुनाने और सुननेवाले-दोनों को जमवारो अर्थात् जम के द्वार के आगे पहुँचना पड़े, तो फिर क्या मतलब रहा ? अमृत प्राप्त हुआ, तो फिर पीना भी तो चाहिए न! जीवन में चलना भी चाहिए तो ग्रन्थों में कहे प्रमाण!! जब समय आ पहुँचेगा, तो काल पुरुष तुम पर दया नहीं करेगा। सब कुछ अधबीच में ही छुड़ाकर तुरन्त जमफाँस में बाँधकर ले जायेगा। उसके आगे तो यहाँ किए गए तुम्हारे

शुभ और अशुभ कर्म ही साथ देंगे, अन्य कोई नहीं।

साचुं कहे दुख लागसे रे,
साचुं ते केहने न सुहाय।
प्रगट कहिए मोहो ऊपर,
त्यारे दोहेला ते सहुने थाय ॥ ५ ॥

भावार्थ :- अभी जमाना ऐसा है कि सत्य बात कहने पर असत् मार्ग पर चलनेवाले को दुःख लगता है। सत्य कहनेवाले मारे जाते हैं। देखो न! त्रेता युग में भी सत्य वचन सहन नहीं हुआ था। सत्य वचन कहने पर शनि देव को कुएँ पर उलटा लटकना पड़ा था। फिर यह तो कलियुग है। व्याभिचार, चोरी, छलछिद्र करनेवाले को 'यह नहीं करना' कहूँ, तो शोभा नहीं देता। यदि न कहूँ, तो शास्त्र मना करता है। आज के युग में मोहरूपी मदिरा के नशे में उन्मत्त हुए लोगों के आगे सत्य कहने पर अपने ऊपर ही खतरा है। किसी एक व्यक्ति को प्रत्यक्ष इंगित करके 'ऐसा करना मना है' कहा जाय, तो उसे असहनीय दुःख लगेगा। अपनी भूल सहन करने की शक्ति भी आज की दुनिया में नहीं रही!

अवलुं देखी हुं न सकुं,
त्यारे सुं करुं में न रेहेवाय।
वेष धरी लजवो साधने,
एम ते माटे केहेवाय ॥ ६ ॥

भावार्थ :- आज की दुनिया को उलटे मार्ग पर दौड़ते देखता हूँ, तो मैं अपने-आप को सँभाल नहीं पाता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस मार्ग पर चलकर दुनिया सुख के बदले दुःख, वह भी असहनीय दुःख में पड़ेगी। वे तो बिना जाने दौड़ रहे हैं। उन अज्ञानियों को उस दुःख की जानकारी देना ज्ञानी का धर्म है। यसर्थ उलटे मार्ग पर उन्हें चलता देखकर मैं कहे बिना नहीं रह सकता। आज की दुनिया में मार्गदर्शक कहलानेवाले साधु-सन्त भी मात्र भेष धारण करके भेष की अवहेलना कर रहे हैं । साधु में साधुत्व नहीं रहा । भेष मात्र धारण करके दुनिया को ठग रहे हैं। गृहस्थियों से भी गिरे हुए साधु-सन्तों के लक्षण दिखाई देते हैं। गृहस्थी तो रजोगुणी हैं। परन्तु साधुओं में तो सत्व गुण प्रधान होने के बदले वे तो तमोगुण में उन्मत्त हैं और रजोगुणी गृहस्थियों के मार्गदर्शक कहलाते हैं। देखो तो! जो मार्गदर्शक स्वयं तमोगुणरूपी कुएँ में पड़ा हो, वह कुएँ के बाहर खड़े रजोगुणी

गृहस्थियों को क्या सतोगुणी मार्ग बतायेगा ? ऐसा आश्चर्ययुक्त चरित्र मुझसे सहन नहीं होता। ऐसा मैं तब कहता हूँ कि इन भेषधारी दुष्ट साधुओं ने दुनिया के बीच सच्चे साधुओं के नाक में भी दम कर दिया है। दुनिया भेष देखते ही साधु जानकर गलती करनेवाले साधु की याद दिलाते हुए यह इंगित कर देती है कि 'आज-कल के साधु वैसे ही होते हैं, जैसे वह था न!'

दुष्ट थई अवगुण करे,
ते जै जमपुरी रोए।
पण साध थई कुकरम करे,
तेनुं ठाम न देखुं कोए ।। ७ ।।

भावार्थ :- जो साधु, सज्जन, मार्गदर्शक - प्रभु के नजदीक रहनेवाला कहलाकर मार्ग छोड़कर चलता हो, दुष्ट-अज्ञानी कुकृत करनेवाला मूढ़ अथवा शास्त्रोक्त ज्ञान से हीन हो, वह अपनी मूढ़मति द्वारा किए गए कर्म के फलस्वरूप जमपुरी में जाकर रोएगा। परन्तु जो साधु ज्ञानी, समझदार निवृत्त मार्गवाला बनकर प्रवृत्ति मार्ग का कर्म करे, शास्त्रों का विद्वान-ज्ञाता एक साधु यदि मूढ़ का-सा आचरण-व्यवहार अथवा कर्म करे, तो ऐसे साधु के लिए

ठहरने की जगह नहीं है। वैकुण्ठ की तो क्या बात करना, उनके नर्क में जाने पर नर्क भी अधिक पापों से जलने लगेगा। वह वहाँ भी बैठ नहीं सकेगा। ऊपर कहीं जायेगा, तो लोग उसे पत्थर मारेंगे। इस प्रकार वह अधर में ही लटका रहेगा। ब्रह्माजी की लड़की को देखो, जिसे कलियुग की प्रार्थना सुनकर जमपुरी खाली होने पर कृष्ण भक्ति छुड़ाने हेतु कार्य-कारणवश उत्पन्न किया गया था।

क्रोध अहंमेव समे नहीं,
अने वेष धरो छो साध।
लोभ लज्या नमे नहीं,
मांहे मोटी ते ए व्राध ॥ ८ ॥

भावार्थ :- आज-कल के साधुओं के मुख्यतः यह लक्षण बन गये हैं कि क्रोध, अभिमान, लोभ आदि तमोगुण उनके अन्दर समा नहीं पाते। जरा-जरा सी बात पर ये विकार उछल पड़ते हैं और इनके परवश होकर साधु कुकर्म कर डालते हैं। फिर वे हैं, तो साधु भेष में! अतः साधु में सत्व गुण की प्रधानता होनी चाहिए, न कि तमोगुण की!! किन्तु आज-कल के साधुओं को लोभ और लज्जा ने अन्दर से इतना जकड़ा हुआ है कि "साधु जमात में अग्रगण्य बनूँ", इस लोभ के

वश में होकर वे दूसरे साधु से मिलन-व्यवहार भी भूल बैठे हैं, अपने को ही बड़ा समझ बैठे हैं । लोभ के परवश होकर वे सोचते हैं कि 'मैं क्यों दूसरे साधु के आगे नमुं? इस प्रकार यदि मैं दूसरे साधु के आगे नमूँगा, तो शिष्य-मण्डली के बीच मेरा क्या महत्त्व रह जाएगा? मेरी आवक कम हो जाएगी।' पुनः लज्जा के परवश वे सोचते हैं कि "दूसरों के प्रति यदि मैं नम्र और दीन बनूँगा, तो जनसमूह में मेरे लोग क्या कहेंगे? ऐसा ही कहेंगे न कि हमारे साधु इतने बड़े होकर दूसरों के आगे नमते हैं। इन साधुओं के बीच हमारा क्या लेन-देन है, कि दुनिया को साधु के चरण में नमना चाहिए।" इस प्रकार लोभ और लज्जा आज के साधुओं को अपने वश में करके नचा रही है। प्रत्येक साधु के दिल में यह दुर्गुण बड़ा सिंहरूप बनकर बैठा है। उन्हें जन्मसिद्ध, व्याधि रोग-सा रोग लग गया है। अज्ञानियों का इस रोग के वशीभूत होना, बड़ी बात नहीं है, परंतु ज्ञानी भी ऐसे ही बन बैठे हैं। अतः साधु और असाधु एक हो गये हैं।

उतम कहावो आपने,
अने नाम धरावो साध।
साध मल्यो नव ओलखो,
मांहे अवगुण ए अगाध ।। ९ ।।

भावार्थ :- वर्णों में उत्तम ब्राह्मण, चारों वर्णों में पूजनीय, निवृत्त मार्गगामी साधु और शास्त्रोक्त ज्ञान से सम्पन्न कहलाते हैं, परन्तु अन्दर दिल में जातिमद, भेषमद और ज्ञानमदरूपी दुर्गुण ने जकड़ रखा है, जिस मद के चक्कर में ये फूले नहीं समाते। वे सृष्टि के प्राणियों की बुद्धि को तोलाभर समझते हैं और अपनी बुद्धि को सवा सेर भर समझते हैं। कोई अन्य साधु मिल भी गये, तो उससे पहचान नहीं कर पाते क्योंकि पूछताछ का व्यवहार तो अभिमान में मिट चुका है। उसकी दृष्टि में वह दूसरा साधु भी तो सृष्टि के अन्दर के तोलाभर बुद्धि का ही हिस्सेदार है। अतः क्या परिचय करें? 'उससे क्या पुछूँ, जो मैंने नहीं समझा है।' मायावी गुणयुक्त यह अहंकारी वृत्ति अगाध रूप से उसके अन्तःकरण में जमी हुई है। छुड़ाने पर भी नहीं छुटती। काम, क्रोध, छलछिद्र ने तो अन्दर घर ही जमा लिया है।

न करो संगत साधनी,
मन ना धरो विस्वास।
संजमपुरीना दुख सांभलो,
पण तोहे ना उपजे त्रास ॥१०॥

भावार्थ :- उपरोक्त गुणों के वशीभूत होने के कारण शास्त्र पुकार को भी नहीं मानते। शास्त्र पुकार-पुकार कर कह रहा है कि साधु की संगत करो। साधु के पास परमात्मा तत्त्वरूपी रत्न मिलेगा। किंतु जिन साधुओं को वह तोलाभर का हिस्सेदार समझ रहा है, उसके साथ वह सत्संग कैसे करेगा? ऐसे अवगुणों के कारण साधु की संगत से वंचित रह जाते हैं। कदाच संगत हो भी जाय, तो उस साधु की वाणी में और वचन में उन्हें विश्वास नहीं आ पाता। मन में विश्वास तब उदय होता है, जब अन्दर की भावना अच्छी हो, तभी साधु द्वारा तत्त्व भी प्राप्त होता है। शास्त्र पुकार रहा है, परन्तु उस पर विश्वास कर उसे प्राप्त करने की श्रद्धा यदि अन्दर हो, तब न! 'अरे ! ऐसे साधु बहुत पड़े हैं। मुझसे बढ़कर आगे कौन हो सकेगा ?' ऐसे भाव छिपे हुए हैं, वो अपने को सवा सेरभर माननेवाले साधु तोलेभर के हिस्सेदार पर कहाँ से विश्वास कर पाएगा? शास्त्रों में वर्णित संजमपुरी के भयंकर दुःखों को बारम्बार सुनने पर भी, वहाँ के दुःख के प्रति किसी भी मायावी जीव में जरा-सा भी डर (त्रास) उत्पन्न नहीं होता ! इसका कारण यह है कि शास्त्रों की पुकार के प्रति हमें

विश्वास नहीं है। जीव संसार के विषयों में इतना उन्मत्त हो गया है कि सामने दिखनेवाला ही उसके लिए सब कुछ तथा सत्य है। जिसे काले सर्प की पहचान न हो, वह उस सर्प को पकड़ लेगा। परन्तु जिसे विश्वास हो कि यह काला सर्प डंक मारता है, क्या वह उस काले सर्प को पकड़ेगा?

छेतरवा हीडो छो जगदीसने,
ते छेतर्‍या केम करी जाए।
पास बीजाने मांडिए,
जई आपोपुं बंधाए ॥११॥

भावार्थ :- किंतु हे ज्ञानीजनों! अभी तो तुम सब माया के नशे में उन्मत्त होकर अभिमान लेकर अन्दर तो विकारों से सम्पन्न हो, परन्तु वेश-भूषा बनाने, बुरी नजर, बुरे वचन, बुरे विचार रखने, छिपकर कुकृत्य करके दूसरों के आगे सच्चे साबित होने जैसी जो ऊपरी ढोंग रचने की चाल चल रहे हो, ऐसा करके तुम दूसरों को नहीं बल्कि अपनी आत्मा अर्थात् जगदीश परमात्मा को ही ठग रहे हो। किंतु जगदीश को ठगा नहीं जा सकता। वे तो अन्दर से सब कुछ देख रहे हैं। जैसे 'जीव करे मनसे गालडी, सा

सभे थींदी घर'। अतः सामर्थ्यशाली को ठगना चाहोगे, तो खुद ही ठगे जाओगे। इस प्रकार दूसरों को फँसाने के लिए बुनी हुई जाली को बिछाने से, उस अनर्थ कर्मरूपी जाली में जीव स्वयं ही फँस जाता है।

अस्नान करी छापा तिलक देओ,
कंठ आरोपो तुलसी माल।
गिनानी कहावे साध मंडली,
पण चालो छो केही चाल ॥१२॥

भावार्थ :- हे ब्राह्मणों तथा मर्यादी वैष्णवों! तुम सब स्नान करके भले ही शरीर पर शंख, चक्र आदि छाप मारो, ऊर्ध्वपुंड्र तिलक लगाओ, गले में एक-दो क्या, सौ तुलसी की माला लगाओ, समाज-जनसमुदाय के बीच बड़े ज्ञानी, उग्र विद्वान कहलाओ, लाखों जनता भले ही तुम्हारे आगे-पीछे, दायें-बायें चले। साध-मण्डली के मार्गदर्शक-सम्प्रदाय के प्रमुख बनो, परन्तु 'जोलों न साधे दिल' अर्थात् जब तक हृदय के अन्दर का विकार निकालकर हृदय को स्वच्छ निर्मल नहीं बनाओगे, तब तक कुछ नहीं होगा। सर्वप्रथम अपनी छाती पर हाथ रखकर विचार करो कि तुम स्वयं कैसी चाल

चल रहे हो? अपना हृदय ही, अपने छिपाकर किए हुए अकृत कर्मों की साक्षी देगा। यसर्थ दुनिया को दिखाने के लिए आडम्बर मत रचो। प्रभु- परमात्मा की नजर में अपने दिल को कहाँ तक निर्मल, पवित्रकर, उनके अनुकूल बनाए हो, इस प्रकार अपने ही चलन पर नजर करो!!

वेष उतम तमे धरो,
पण माहेलो ते मेल न धुओ।
पंथ करो छो केही भोमनो,
रिदे आंख उघाडी नव जुओ ॥१३॥

भावार्थ :- ब्राह्मण कुल में होकर बाहरी भेष तो बड़ा उत्तम रचा है। स्वच्छ सफेद धोती धारण किये हो, तिरछी पाग सिर पर लटकाये हो, जिससे कि तुम्हारे भेष की उत्तमाई को देखकर मध्यम-क्षत्रिय और वैश्य तथा अधम-क्षुद्र सभी तुम्हारे चरण में नमते हैं। परन्तु जिस प्रकार बाहर से तुम्हारा भेष उत्तम दिखाई देता है, उसी प्रकार क्या तुम्हारा अन्तःकरण भी स्वच्छ निर्मल है? नहीं! अन्दर तो उलटा ही है!! तुम्हारे अन्दर तो दया, क्षमा, शील, सन्तोष, शान्तता, धैर्य आदि आत्मीय गुणों का तो नाम भी नहीं है। क्षण में क्रोध के मारे भभक उठते हो। अन्दर के मायावी

विकाररूपी मैल को तो धोकर दूर किया नहीं है। काम के वश में अन्धे बने हो, लोभ के मारे रात-दिन भटक रहे हो। क्या तुम नहीं जानते कि काम, क्रोध तथा लोभ - ये 'त्रिविधं नरक-स्येदं द्वारं' तीनों तुम्हें किस घाट ले जायेंगे? अतः यहाँ 'जिस भोम में पहुँचने का मार्ग चल रहे हो, यह मार्ग चलकर मीर घाट उतरोगे या तीर घाट?' इन बातों को हृदय की विचार-विवेकरूपी आँखों से अच्छी तरह देख लो!

मन मेलां धुओ नहीं,
अने उजला करो आकार।
आकार तिहां चाले नहीं,
चाले निरमल निराकार ।। १४ ।।

भावार्थ :- जन्म-जन्मान्तर के मन के मैलरूपी विकारों को तो धोकर स्वच्छ नहीं किया है, तो क्या ज्ञानी बने? ज्ञानरूपी जल से मन को वश में करके उसे कुमार्ग से हटा नहीं सके, तो ज्ञानी कहलाकर क्या नफा मिलेगा ? मन के वश में कौन नहीं है? तो चार पैरवाले पशुओं में और तुममें भिन्नता ही क्या रही? वे चार पैरवाले अज्ञानी भी अपने आहार, निद्रा, भय, मैथुनरूपी धर्म पर सीमित रहते हैं। परन्तु

विद्वान कहलानेवाला मानव तो उनसे बढ़कर बना, वही कर्म छिपाकर करता है। पशु तो उससे ठीक ही हैं। कम-से-कम अकृत कर्मों को अन्दर छिपाकर बाहर उत्तमाई तो नहीं दिखाते। बाहरी आकार-तन को उजला, स्वच्छ, पवित्र करके क्या मिलेगा? जगदीश के पास ले जानेवाले उस कठिन मार्ग पर क्या आकार जायेगा? वैकुण्ठ के मार्ग पर चलनेवाला तो जीव है। अतः उसे स्वच्छ और पवित्र करो। वह मार्ग तो निर्मल निराकार-चेतन का मार्ग है। यसर्थ आकार को धोने से वह मार्ग तय नहीं हो पाएगा।

वैकुंठ ऊंचुं सिखर पर,
ऊवट चढतां उंचाण।
मोहजल लेहेरी मारे सामियो,
इहां वाय ते वा उंधाण ॥१५॥

भावार्थ :- वैकुण्ठ मार्ग तो बड़ा ऊँचा है। उस मार्ग पर तो त्याग, वैराग्य, शील, शान्त, धैर्य, सन्तोषरूपी वस्त्र को पहनकर ही चलना पड़ेगा। इस प्रकार का चीरक भेष धारण करके इस कठिन चढ़ावयुक्त ऊँचे मार्ग के शिखर पर उतर सकोगे, तो वैकुण्ठ का सुख प्राप्त होगा। पुनः चीरक भेष धारण तो किया, एवं तपस्या

के लिए संसार को छोड़कर हिमालय के निर्जन वन में भी निकल पड़े, अपितु भूख, प्यास, डर आदि मायावी लहरें बार-बार जीव को पदच्युत करने के लिए उस पर टूट पड़ती हैं। पुनः यह भी सहन कर आगे बढ़ो, तो थोड़ा मार्ग तय करते न करते स्वयं माया ही टूट पड़ती है और 'छल बल वल करी जाय समीपा, अंचल बात बुतावे दीपा' ध्यान में मस्त योगी (जीव) के आगे इन्द्रलोक की उर्वशी अथवा वसन्त अप्सरा की तरह छमछमाने लगती है। तब माया के परवश हुई इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देव भी 'सूर लोक आई कपाट उघाड़े' इन्द्रियरूपी कपाट खोल देते हैं। इस प्रकार ब्रह्म के ध्यान में लगे जीव के आगे माया के षट् ऊर्मियों - शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और प्यास ही अप्सराओं के साथ छमछमाते हुए आते ही समूह इन्द्रियों सहित चारों अन्तःकरण विषयों की ओर उलटी पवन चलाने लगते हैं।

चढवुं ऊंचुं चीरक थई,
वाटे दुख दिए घणा दुष्ट।
प्रवाह उतरतां सोहेलुं,
पण दोहेलुं ते चढतां पुष्ट।।१६।।

भावार्थ :- शिखर की वैकुण्ठरूपी घाटी में उतरने के लिए त्याग और वैराग्य युक्त मार्ग पर चढ़ना पड़ता है। यह मार्ग अत्यन्त ऊँचा है। इस रास्ते पर चढ़ते समय उपरोक्त बहुत प्रकार के दुष्ट-तस्करों, दुःख देने और मार्ग से गिराकर च्युत करने हेतु टूट पड़ते हैं। अतः इस मार्ग पर अत्यन्त होशियारी से त्याग और वैराग्य को मुख्य कर धैर्य, शान्ति, गरीबी, क्षमा तथा ज्ञानरूपी वस्त्र पहनकर यदि चढ़ें, तो पार उतर सकेंगे, जैसे - नरनारायण ऋषि। परवाही मार्ग पर चलना तो अत्यंत सरल है। स्वतः ही चले जाते हैं। दुःख नहीं उठाना पड़ता । काम, क्रोध, लोभ आदि धारण करने के लिए सीखना नहीं पड़ता। वह तो जन्मसिद्ध है। अतः स्वतः ही आ जाता है। परन्तु पुष्टि मार्ग पर चलने में भारी कठिनाई है। यसर्थ सारी दुनिया परवाही मार्ग पर ही चली जा रही है।

सोहेलुं देखी कां उतरो रे,
आगल दुख अनेक।
चढतां घणुंए दोहेलुं,
पण वैकुंठ सुख वसेक ।।१७।।

भावार्थ :- परवाही मार्ग को सरल देखकर

हे मानवों! तुम सब उस मार्ग पर क्यों उतरते चले जा रहे हो? चलने पर तो मार्ग सरल दिखाई देता है। परन्तु वह मार्ग चलकर आगे किस घाट में उतरोगे, यह नहीं देखते हो? आगे तो जमपुरी का दुःखदायी घाट है। वहाँ पहुँचकर क्या करोगे? क्योंकि *"कांटे चूभे दुख पाइए, सेहे न सके लगार। पर होत है मोहे अचंभा, ए क्यों सेहेसी जम मार।।"* वैकुण्ठ के चढ़ावदार मार्ग पर चलने में बड़ी कठिनाई है। परन्तु यहाँ यदि ७०-८० वर्ष का दुःख उठा लोगे, तब तुम लाखों वर्षों के वैकुण्ठ के विशेष सुख को प्राप्त कर पाओगे। अतः विचार कर लो कि तुम्हें लाखों वर्षों के सुख के लिए ८० वर्ष का दुःख सहन करना है या ८० वर्ष विषयजन्य सुख भोगकर लाखों वर्षों का सुखदायी जीवन बिगाड़ना है?

सुपनतणां सुख कारणे,
केम खोईए अखंड सुख।
सुख सुपने देखी करी,
केम लीजे साख्यात दुख ।।१८।।

भावार्थ :- मानव होकर भी विचार-विवेक किये बिना, शून्य दिमागवाले पशुवत् बनकर क्यों स्वप्निक, झूठे पञ्चजन्य सुख हेतु वैकुण्ठ

के अखण्ड सुख को खोने जैसी मूर्खता करनी चाहिए? विचार तो करो! क्षणिक स्वप्नवत् विषयों के सुख को देखकर उस सुख के लिए ऐसा अमूल्य अवसर चूककर तुम सब क्यों जमपुरी के साक्षात् दुःख को खरीद रहे हो? वहाँ के दुःख को देखकर जरा विचार तो करो कि वह दुःख सहन भी कैसे होगा?

चीरक थई तमे ना सको रे,
मायामां थयां मोटा।
वाणी विचारी नव जुओ,
पछे सास्त्र करो कां खोटा ॥१९॥

भावार्थ :- शास्त्रोक्त त्याग, वैराग्य, दया, क्षमा, शील, संतोष, धैर्य, ज्ञान, प्रेमरूपी वस्त्र तुम कैसे धारण कर सकोगे? तुम तो विषय में उन्मत्त होकर 'कण्ठ बांहोडी घाले' गजेन्द्र की तरह मस्त चाल में चल रहे हो। कामी, क्रोधी, लोभी, चोरी, निर्दयता आदि गुणों को धारण कर माया के बीच छलछिद्र करके भी बड़ा बनना चाहते हो, बड़े बन रहे हो। धनवान् बनकर विषय भोग के लिए अनर्थ से अनर्थ कर्म करने में भी चूकते नहीं हो। शास्त्रों की वाणी-वचन पर विचार करके देखते भी नहीं हो! 'पाप-पुण्य कुछ नहीं है। पाप

करनेवाला ही सुखी है।' ऐसा विचार कर यह निश्चित कर लेते हो कि धर्म मार्ग पर चलने से दुःखी बनना पड़ता है। परन्तु यह विचार मन में नहीं लाते कि पापी को सुख भी तो उसके पूर्व के पुण्य के फलस्वरूप ही मिल रहा है। तुम्हारे पूर्व का पुण्य न हो, पाप हो, तो यहाँ सुख कैसे मिलेगा? जहाँ भी देखो धर्म की ही विजय होती है। यहाँ पाप कर्म करनेवाले पूर्व के पुण्य का फल भोग रहे हैं। परन्तु यहाँ का पाप दूसरी योनि में भोगे बिना वे कहीं छूट सकेंगे? कदापि नहीं! तुम धर्म पर चलते हुए भी दुःखी हो अर्थात् तुम पूर्व का पाप भोग रहे हो। यहाँ किए धर्म का प्रतिफल आगे अत्यन्त सुखदायी होगा। शास्त्रों एवम् आप्तपुरुषों का यही कहना है। इस पर विचार तो करो! शास्त्रों के वचन को मत झुठलाओ। शास्त्र झूठ नहीं सत्य कहता है।

दुखडां खमी तमे ना सको,
माया सुखे रह्यां मांणो।
चढाय नहीं एणी उवटे,
पाछां चढतां ने कां तांणो॥२०॥

भावार्थ :- वैकुण्ठ-मार्ग का दुःख तुम नहीं सह सकोगे। उस मार्ग का दुःख धारण न कर

सकने पर ही तो तुम माया के विषयजन्य सुख ले रहे हो। माया का सुख सामने है, नगद है। अतः इसी में तुम्हारा विश्वास है कि यही सुख सच्चा है। वैकुण्ठ का सुख तो उधार का सुख है। वह भी है या नहीं, कौन जाने! शास्त्रों का कहना है कि ऐसा है। परन्तु कैसे विश्वास करें ? पर एक रोज तो विश्वास जरूर आएगा। लेकिन माया के गुणों को परित्याग किये बिना वैकुण्ठ के कठिन रास्ते पर चढ़ा नहीं जायेगा। विषय सुख के प्रेमी ऐसे कठिन मार्ग पर चढ़ नहीं सकेंगे। परन्तु चढ़नेवाले को पीछे क्यों खींचते हो? उसके मार्ग पर बाधा पहुँचाने से क्या मिलेगा? अतः उस मार्ग पर चलनेवाले साधक के प्रति छलछिद्र रचकर उसकी साधना में बाधा मत पहुँचाओ। उसे बन्धन में मत डालो।

ताण्युं तमारुं सुं करे,
जेने लाग्यो छे चोलनो रंग।
साध कहावी असाध थाओ छो,
करो छो भजनमां भंग ॥२१॥

भावार्थ :- जिस साधक के हृदय में जमपुरी के दुःख के प्रति भय उत्पन्न हुआ और परमात्मा के प्रति अन्तःकरण में प्रेम उत्पन्न हो आया, उस साधक को उस मार्ग से पीछे खींचकर

अपना-सा बनाने के लिए तुम्हारे द्वारा प्रयुक्त खिंचाव क्या कर सकेगा? मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, ध्रुव, प्रह्लाद आदि भक्तों को कोई उनके मार्ग से फिरा नहीं सका था। जिस साधक को परमात्मा के नामरूपी चुंदरी का प्रेमरूपी रंग लग गया हो, उसे भला कोई कैसे डिगा सकेगा? किन्तु तुम तो कहलाते हो ज्ञानी, साधनशील साधक, परन्तु साधु के एक भी गुण तुममें दिखाई नहीं देते। असाध-सी चाल चलकर, दुष्टों-सा कर्म करके कहलाते हो साधु!! दूसरों की भजन-भक्ति में विघ्न पहुँचाते हो, ईर्ष्या के वशीभूत होकर दूसरों का किया देखकर जल मरते हो, खुद भी नहीं खाते और दूसरों को खाते देखकर क्रोधित हो उठते हो। स्वयं उस कठिन मार्ग पर नहीं चल सकते और दूसरे चले तो उसे पीछे खींचते हो, उसे मार्ग से गिराने पर तुल जाते हो। मीरा की शादी कराने के लिए हजारों टूट पड़े, चैतन्य महाप्रभु को किस-किस ने हैरान नहीं किया!! परन्तु वे बाधक बननेवाले यह मार्ग चलकर कहाँ पहुँचे? यह तो विचार करो!!!

पगलां पोतानां जुओ नहीं,
अने बीजाने देओ छो दोस।
सास्त्र अरथ समझ्या नथी,
तां जातो नथी रिंदे रोस ॥२२॥

भावार्थ :- 'स्वयं मैं किस प्रकार चल रहा हूँ? क्या शास्त्रोक्त मानव लक्षण मुझमें हैं? मैं स्वयं विषयों से कितना दूर हुआ हूँ? दूसरों को क्षमा करने में मैं कहाँ तक समर्थ हूँ? मैंने दिन भर में किसी का दिल तो नहीं दुखाया न? मेरी नजर बुरे से तो नहीं टकरायी न? जबान से मैंने किसी को अपशब्द तो नहीं कहे न? हाथों से किसी को दुःख पहुँचानेवाले अकृत कर्म तो नहीं किये न? मेरे अन्दर आत्मीय गुण जैसे क्षमा, दया आदि की वृद्धि तो हो रही है न? दूसरों को दुःख पहुँचाकर मैं दुःखी होता हूँ या सुखी? मायावी पदार्थों से मैं कितना दूर हूँ? काम, क्रोध, लोभ आदि घातक वृत्तियों को मैं कहाँ तक छोड़ सका हूँ?' अपनी इन सब आंतरिक प्रवृत्तियों में तो झाँकते नहीं। अपने अन्दर के भैंसभर दोष को तो देखते नहीं, दूसरों के तिलभर के दोष को ढूँढ़-ढूँढ़कर ताड़ बनाने की कोशिश करते हो। अपने को निर्दोष जताने और दूसरों को

दोषी बनाने में जीवन लगा रहे हो। शास्त्रों में क्या लिखा है, शास्त्रों के अर्थ को समझो! क्या छोड़ने को कहा है जानो!! मायावी विकारों - मायावी पदार्थों के प्रति की ममता छोड़ने के लिए शास्त्र बारम्बार पुकार रहा है। अतः काम, क्रोध, लोभ, निन्दा, चोरी, झूठ, छलछिद्र आदि तमोगुणी मायावी विकारों को छोड़कर जीव मात्र के प्रति दयालु, क्षमाशील, शान्तिपूर्ण और धैर्ययुक्त बनो। शास्त्र जो वृत्तियाँ छुड़वा रहा है, उसी को क्यों पकड़े बैठे हो? जिसे धारण करने को कहता है, वह क्यों नहीं लेते? इसका कारण यह है कि तुम शास्त्रों के अर्थ को समझ नहीं पाये हो। शास्त्रों के कथन के प्रति तुम्हें विश्वास ही कहाँ है, जो तुम दुर्गुणों को त्याग सको। इसीलिए बारम्बार शास्त्रों के वचन सुनने और सुनाने पर भी तुम्हारे अन्दर का रोष-क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि जाता नहीं!

सास्त्रे मारग बे कह्या,
त्रीजो न कह्यो कोय।
एक वाट वैकुंठ तणी,
बीजी स्वर्ग जमपुरी जोय ।।२३ ।।

भावार्थ :- शास्त्रों में मानव मात्र के लिए दो

मार्ग बताये गये हैं। तीसरा मार्ग नहीं दिखाया। उक्त दो मार्गों में से एक मार्ग है वैकुण्ठ का, जहाँ त्याग, वैराग्य, शील, सन्तोष, दया, क्षमा, ज्ञान, भक्ति, धैर्य, शान्तिरूपी साधनों द्वारा पहुँचा जाता है। दूसरा मार्ग है जमपुरी का, जहाँ काम, क्रोध, लोभ, निन्दा, चुग़ली, निर्दयता, ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट आदि तमोगुण वृत्तियों के वशीभूत होकर पहुँचना पड़ता है। स्वर्ग प्राप्ति के लिए रजोगुणी वृत्ति धारण करनी होगी। यज्ञादि कर्म करने पड़ेंगे। फिर भी क्षणिक सुख ही प्राप्त होगा। क्षणिक सुख के बाद पुनः कर्मभूमि मृत्युलोक में ही जन्म लेना पड़ेगा। यसर्थ स्वर्ग का सुख भी जमपुरी का दुःख देनेवाला ही है।

वली एक वाट कही करी,
ते ततखिण कीधो लोप।
तिहांना हता ते चालिया,
पण रही ते मायामां गोप ॥२४॥

भावार्थ :- उपनिषद् में वर्णन आता है कि एक शिष्य ने गुरु से पूछा, "गुरुदेव! यहाँ पर एक दूसरा ही मार्ग दिखाई देता है।" तब उस मार्ग के विषय में गुरु ने शिष्य से कहा, "यह तीसरा

मार्ग★ है तो सही! परन्तु इस मार्ग पर तो तुम और हम नहीं चल सकते। इस मार्ग पर तो जो राजहंस हो, वही चल सकता है। इस मार्ग की बात करते नहीं बनती। इससे तो भला इसे गोप्य रखना ही उचित है। इस मार्ग पर चलनेवाले जो थे, वे यह मार्ग चलकर चले गये। दूसरा कोई इस मार्ग पर नहीं चल सकता। यसर्थ हमारे लिए यह मार्ग होते हुए भी नहीं के समान है। इसकी बात मत पूछो।" इस प्रकार मायावी जीवों ने इस तीसरे मार्ग को माया के बीच गोप्य ही रख दिया। आज तक वह मार्ग गोप्य है। (इससे पूर्व वह मार्ग व्रजमण्डल की गोपियों ने चलकर दिखाया था। अभी वही मार्ग प्रकट हुआ, *'परा दशाधा प्रेम लक्षणा भक्ति मार्ग'* के रूप में!)

★मैतं पन्थामनुगा भीम ऐष
येन पूर्व नेयथं तं ब्रवीमी।
तम ऐतत्पुरुष मा प्रपन्था भयं
परस्तादभयं ते अवार्क्।।

-(श्रुति, ८/१/१०)।

अर्थ :- हे पथिक! इस मार्ग पर मत चल!!

तमे रे जुओ पोते आप संभारी,

केही रे लीधी छे वाट।

केही रे भोमना बंध बांधो छो,

उतरसो कीहे रे घाट ॥२५॥

भावार्थ :- हे साधनशील सज्जनों! तुम सब अपने अन्तःकरण की विचार-विवेकरूपी आँखों से अपने गुण, अंग, इन्द्रियों को मायावी विषयों से हटाकर देखो। जाना तो सभी को है। किंतु क्या शरीर परलोक जानेवाला है? नहीं! आत्मा जायेगी परलोक!! तो परलोक का अस्तित्त्व रखनेवाली इस आत्मा को किस मार्ग पर चला रहे हो? शास्त्रों के अनुकूल समझ रखकर देखो कि तुम अपनी आत्मा को वैकुंठ के मार्ग पर चला रहे हो या दूसरे मार्ग पर? क्योंकि " *साथजी समझ ऐसी चाहिए, जैसा*

क्योंकि यह परलोक का 'परा दशधा प्रेम लक्षणा भक्तिरूपी प्रेम का मार्ग' भीम की भाँति भयंकर कठिन एवम् 'परस्तादभयं' अर्थात् तलवार की धार पर पीछे की ओर चलने जैसा है। यह मार्ग है तो सही, परन्तु तुम्हारे और मेरे जैसे लोगों के लिए तो नहीं के बराबर है। इस मार्ग से आज तक कोई नहीं गया।

कह्या शास्त्र वचन।" अतः शास्त्र किस भोम के प्रेम के बन्धन में बँधने को कह रहा है? इन्द्रियों को पंचविषयों से प्राप्त होनेवाले मन के अनुकूल सुख से या वैकुण्ठ के जगदीश के चरणों में पहुँचानेवाले त्याग, वैराग्य, प्रेम, दया, क्षमा आदि आत्मीय गुणों से? शास्त्र किस मार्ग पर चलकर कैसे बंध में बँधकर कहाँ पहुँचने के लिए कह रहा है? शास्त्रों के वचनों द्वारा अपने चले हुए मार्ग प्रति विचार करके देखो कि तुम स्वयं वैकुण्ठ के घाट में उतारनेवाले मार्ग पर चल रहे हो या जमपुरी में उतारनेवाले मार्ग पर?

गुण पचवीसे बांधिया रे,
बांध्या ते नवे अंग।
इंद्री पखे गुणे बांधिया,
कांई द्रढ करी माया संग॥२६॥

भावार्थ :- ज्ञान, त्याग, वैराग्य आदि आत्मीय गुणों को धारण कर प्रभु के चरणों में प्रेमरूपी रस्सी द्वारा बँध जाने के बदले यह शरीर पंचमहाभूत निर्मित पचीस प्रकृतियों, नौ द्वार, दस इन्द्रियों, सत, रज, तम-इन तीन गुणों के प्रेम में बँध गया। एक भी गुण अथवा इन्द्रिय स्वाद प्राप्त करने जैसे अपने कर्मरूपी धर्म को

छोड़ना नहीं चाहते। उनके अन्दर उस कर्म से प्राप्त सुख की ममता ऐसी दृढ़ हो चुकी है कि एक बार वज्र भी टूट जाये, परन्तु मायावी पदार्थों के प्रति जीव को लगी हुई यह ममता नहीं छूट पायेगी। इस प्रकार जीव माया के संग से ऐसे रंग में रंगकर बँध गया है!

बंध प्रभुसूं न बांधिया रे,
त्यारे केणी पेरे आवे तेह।
रदे विचारी जोइए जो,
बांध्यो छे केसुं नेह ।।२७।।

भावार्थ :- शास्त्र कहता है, "प्रभु के साथ बन्धन बाँधो। इन्द्रियाँ निग्रह करो। विषय के पञ्चजन्य सुखों का परित्याग करो।" परन्तु ये बन नहीं पाता। अंग-प्रत्यंग को माया के साथ बाँधकर हम इस मार्ग पर सदा से चलते आए हैं, तो हमारे आगे वे वैकुण्ठरूपी घाटी के जगदीश के चरण कैसे आयेंगे? इस बात पर शास्त्रों के वचनों द्वारा हृदय से विचार कर देखो कि तुम किसके साथ नेह (प्रेम) बाँधकर किस ओर पहुँचने का मार्ग तय कर रहे हो? तुम्हारा प्रेम काम, क्रोध, लोभ आदि मायावी गुणों से है या तुमने आत्मीय गुणों-त्याग, वैराग्य, शील, दया

आदि से बाँधा है?

जे रे गामनी वाट ज लीजे,
आवे तेह ज गाम।
जाणीने जमपुरी जाओ छो,
त्यारे न आवे अखंड विसराम॥२८॥

भावार्थ :- देखो! जिस मार्ग से चलने पर जिस घाट में उतरा जाता है, उस घाट में उतरने के लिए उसी मार्ग पर चलना पड़ेगा अर्थात् जिस गाँव का मार्ग लोगे, वह मार्ग चलकर वही गाँव आयेगा। अतः मीर घाट के मार्ग पर चलनेवालों के आगे मीर घाट और तीर घाट के मार्ग पर चलनेवालों के आगे तीर घाट ही आयेगा। तीर घाट का मार्ग चलकर मीर घाट उतरना चाहोगे, तो नहीं बनेगा। अब स्वयं विचार करो कि मैं किस घाट का मार्ग लेकर चल रहा हूँ? शास्त्रों के द्वारा जानते-जानते भी कामी, क्रोधी और लोभी बनकर जमपुरी के मार्ग पर चलने से तुम्हारे आगे वैकुण्ठ का अखण्ड विश्रामदायी, आनन्दपूर्ण घाट कदापि नहीं आयेगा। यदि जमपुरी का मार्ग चलकर भी अखण्ड सुख में विश्राम मिलने लगे, तो जमपुरी कौन जायेगा?

सूथी वाट जाणी संजमपुरी,
कां सहुए उजाणां जाओ।
वेद पुराण तमे सांभली,
एम रुदे फूटा कां थाओ॥२९॥

भावार्थ :- संजमपुरी का मार्ग सरल है। मायावी सुखों में उन्मत्त होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट आदि मायावी गुणों के परवश होकर मन के अनुकूल होकर उदण्डवत् दौड़ने के लिए इन्द्रियों को साधना नहीं पड़ता। उस मार्ग पर तो वे स्वतः ही चली जाती हैं। इस मार्ग पर चलते समय सारी दुनिया भी साथ मिलेगी, यह जानकर सभी उस मार्ग पर क्यों दौड़ रहे हो? क्या तुमने वेद, पुराण आदि सद्ग्रन्थों की पुकार नहीं सुनी है ? वेद, पुराण आदि तुम्हारे लिए ही डंके की चोट पर चिल्ला रहे हैं। शास्त्रों के वचनों को सुनते और सुनाते हुए भी ऐसे मार्ग पर क्यों चल रहे हो? यह तो आँख बिना के अंधे का-सा मार्ग है! ऐसे हृदय के फूटे नेत्रवाले मत बनो!

देखादेखी पंथ करो छो,
रदे नथी विचार।

सास्त्र वाणी जो सत करो,

तो भूलो केम आ वार।।३०।।

भावार्थ :- तुम भी तो उसी पन्थ पर चल रहे हो, जिस पर दूसरे चलते हैं। 'दूसरे कामी, क्रोधी, लोभान्ध बनकर चल रहे हैं, तो मैं क्यों न चलूँ? दूसरा व्यभिचारी बनकर चल रहा है, तब भी तो सुखी है। तो मैं भी व्यभिचारी क्यों न बनूँ?' यही सोचते हो। परन्तु यह नहीं सोचते कि 'उसकी एक आँख फूटी है, मैं भी अपनी एक आँख क्यों न फोड़ लूँ?' अन्तःकरण से विचार कर बुद्धि का प्रयोग किए बिना देखादेखी मार्ग पर चल रहे हो। यदि शास्त्रों के वचनों के प्रति तुम्हें सच्चा विश्वास होता, तो ऐसे मार्ग पर नहीं चलते! शास्त्र निषेध मार्ग नहीं पकड़ते!! वेद, शास्त्र के प्रति अंध-विश्वास होने के कारण ही तुम इस प्रकार भूलकर मनमानी मार्ग पर चल रहे हो। वेद, शास्त्र आदि कह रहे हैं और तुम सुन रहे हो कि इस मानव तन द्वारा निषेध कर्म करने में कैसा जोखम है, परन्तु तुम्हारा सुनना और सुनाना सब व्यर्थ है। ऐसी भूल तो पशु अथवा अंधा भी न करे!

ढोलतां ढोलाने सोहेलुं,
पण आगल ऊंडी खाड।
लोही मांस सरवे सूकसे,
पछे घरट दलासे हाड॥३१॥

भावार्थ :- नीचे के मार्ग अर्थात् गुण, अंग, इन्द्रियों के वश में होकर उतरना और उतारना अथवा चलना और चलाना सरल होता है। उसमें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। वह मार्ग तो अनुकूल लगता है। परन्तु नीचे के मार्ग पर उतरना जितना सरल है, आगे उतना ही गहरा तीर घाट अर्थात् ८४ का असहनीय दुःख तैयार ही मिलता है। वहाँ ८४ के तीर घाट में तो सूक्ष्म देह का रक्त और मांस अग्नि में सूखा दिया जाएगा और हड्डियों को बार-बार चक्की में डालकर पीसा जायेगा। तब यहाँ माया में उन्मत्त होकर 'कंठ *बाहोड़िया घाले*' रूप मजा में जो स्वाद मिलता है, उस स्वाद की याद जमपुरी में आएगी!

केस त्वचा जासे चरमाई,
नसो त्रूटसे निरवाण।
विधविधनां दुख देखसो,
पण तोहे नहीं छोडे प्राण॥३२॥

भावार्थ :- उस समय जमपुरी के सूक्ष्म तन में केस जलकर राख बन जायेगा और त्वचा रबर सदृश शिथिल बन जायेगी। कर्म के अनुसार ८४ नर्ककुण्डों में अलग-अलग दुःख भोगते-भोगते नस-नस टूटने लगेगी। इतना होने पर भी प्राण नहीं छुटेगा। वहाँ का तन तो सूक्ष्म होगा। उस समय वही सूक्ष्म तन जागृत का कहलायेगा और यह प्रत्यक्ष-अभी का तन स्वप्नवत् बन जायेगा। यहाँ के कर्मों का पश्चाताप वहाँ जमपुरी में होगा। उस जागृत तन में यहाँ के वेद, पुराणों की पुकार भी हृदय में उमड़-उमड़कर आयेगी, तब तुम अपने-आप को धिक्कारोगे। परन्तु वह जमपुरी का दुःख भोगे बिना छुट नहीं पाओगे!

जमपुरीनां दुख्र दारुण,
ते सुं नथी तमे मांण्या।
पुराण ते माटे कहे पुकारी,
केणे जाए रखे अजाण्या॥ ३३॥

भावार्थ :- संजमपुरी का जो दुःख है, वह अत्यन्त दारुण, कठिन एवम् भयंकर है। वह दुःख सहन करते समय जीव को बड़ा कष्ट होगा, परन्तु मजबूर होकर भी भोगना तो अवश्य

पड़ेगा। देखो! वहाँ के दुःखों को शास्त्रों में कैसा भयंकर बताया है। शास्त्रों के कहे प्रमाण क्या तुम जमपुरी के दुःख को भयंकर नहीं मानते? शास्त्रों की पुकार के प्रति क्या तुम्हें विश्वास नहीं आता? अभी भले न मानो, विश्वास न करो। परन्तु अन्त समय में इस स्वप्निक तन से छूटने पर जब जागृत का दुःख प्रत्यक्ष सामने आएगा, तब तो मानोगे न! पुराण बना है मानव के लिए, न कि पशुओं के लिए। उस दारुण दुःख से हमें बचाने के लिए पुराण पुकार रहा है कि 'उस जमपुरी के दुःख से अपने को बचाओ!' अब उन वचनों पर विश्वास न करो, तो किसका दोष? यसर्थ पुराण पहले से ही मानव मात्र को पुकारते हुए इस विषय में चेतावनी दे रहा है कि 'कोई भी मानव जाने बिना यहाँ से जमपुरी का दुःख भोगने न जाए! सुनकर-समझकर यहीं से बचने की कोशिश करे!! मार्ग बदल ले अथवा उस भयंकर दुःख के विषय में जानकर ही जमपुरी जाए!!!'

कुंड अठावीस कह्यां सुकदेवे,
एक बीजाथी चढता जाए।
त्यारे पड्यो परीखत दुख सुणी,
स्वामी बीजा तो ना संभलाए।।३४।।

भावार्थ :- जब शुकदेव मुनि जमपुरी के अथाह दुःखदायी नर्ककुण्डों का क्रम से वर्णन करके राजा परीक्षित को सुना रहे थे, और वहाँ के एक-दूसरे से उत्तरोत्तर बढ़ते हुए दुःखों का वर्णन सुनते-सुनते जब २८वें नर्ककुण्ड के वर्णन तक पहुँचे, तब राजा परीक्षित असह्य दशा में पहुँचकर बोल उठे, "अब आगे का वर्णन मुझसे सुना नहीं जाएगा।" ऐसा दारुण और भयंकर वर्णन सुनकर राजा मूर्छित होकर जमीन पर गिर गया और शुकमुनि को रोकते हुए कहा, "स्वामीजी! अब मेरे प्राण निकल रहे हैं। आगे के एक भी कुण्ड का वर्णन सुनने की शक्ति मुझमें नहीं है। अतः आप वर्णन करना बन्द कर दीजिये।"

छपन रह्यां विन सांभल्यां,
ते तां सुणी न सक्यो राए।
कलकली कंपमान थयो,
ते तां कह्यां न सुण्यां जाए ।। ३५ ।।

भावार्थ :- चौरासी नर्ककुण्डों में से राजा परीक्षित द्वारा २८ नर्ककुण्डों का वर्णन ही सुना गया। छप्पन नर्ककुण्डों का वर्णन करना रह गया। कारण वे नर्ककुण्ड ऐसे दुःखप्रद हैं कि

उनका वर्णन राजा भी नहीं सुन सका। २८ नर्ककुण्डों का वर्णन मात्र सुनने से कठोर हृदय वाला राजा भी कलकलाकर काँपते हुए जमीन पर गिर गया। यसर्थ शुकदेव मुनि ने आगे का वर्णन नहीं किया। शेष छप्पन नर्ककुण्डों का वर्णन न कहा गया और न सुना ही गया। ऐसे दुःखप्रद भयंकर नर्ककुण्डों का वर्णन सुनने मात्र से राजा परीक्षित की ऐसी दशा हुई, तो ऐसे भयंकर दुःख नर्क में जाकर यदि भोगने पड़ें, तो जीव की क्या दशा होगी? विचार करो!

देव ते दोस लिए नहीं,
ते माटे कीधां पुराण।
देखी पडो कां खाडमां,
आ तां सहुने करे छे जाण ॥ ३६ ॥

भावार्थ :- दैव-परमात्मा की अक्ल बड़ी भारी है। वे बड़ी होशियारी से काम करते हैं। अपने सिर पर दोष न लगे अथवा नहीं लेने के लिए उन्होंने सृष्टि में मानव मात्र के जीवों के लिए पुराणरूपी चिट्ठी का प्रबन्ध कर दिया। परमात्मा द्वारा भेजी गई वेद-पुराणरूपी चिट्ठी के अन्दर लिखा है, 'यदि मुझे प्राप्त करना हो, तो इस अमुक मार्ग पर चलकर आना। इसके

अलावा अन्य मार्ग पर चलोगे, तो तुम्हारी इस लापरवाही की सजा के रूप में ८४ नर्क का द्वार खुला रखा है। मैंने तुम्हें सचेत कर दिया। अब आगे उस दुःखप्रद नर्क में पड़ोगे, तो मेरा दोष नहीं।' इस प्रकार से जगदीश की चिट्ठी सुनते और पढ़ते हुए भी जानने-समझने पर भी ८४ की खाड़ी में क्यों पड़ रहे हो? ये शास्त्र-पुराण तो सभी को जानकारी दे रहे हैं कि किस मार्ग से जाने पर ८४ में पहुँचोगे और किस मार्ग से चलकर वैकुण्ठ पहुँचोगे ! अब चलना तुम्हारी मर्जी!!

स्वादे लाग्यां सुख भोगवो,
पण पछे थासे पछताप।
व्यास वचन जोतां नथी,
पछे घससो घणुं बंने हाथ ॥ ३७ ॥

भावार्थ :- परन्तु क्या करें? दुनिया में कोई भी अपने को नर्क के दुःख में पहुँचाना नहीं चाहते। चाहता तो हर कोई यही है कि वह सुखी और वैकुण्ठ के आनन्द का धनी बने! तो फिर ऐसा मार्ग क्यों चलते हैं? इसका कारण यह है कि उन्हें यहाँ के पंचविषयजन्य सुख का स्वाद लग गया है। इन्द्रियाँ ऐसी बन चुकी हैं कि एक भी विषय-स्वाद पर निग्रह नहीं कर पातीं। फिर

यहाँ माया का सुख तो अभी-का-अभी भोगने को मिलेगा। स्वाद में जीभ चटकाना, रूप में आँख गाड़ना और स्पर्श में हाथ बँटाना कौन नहीं चाहता? ऐसे प्रत्यक्ष सुख की इच्छा तो सभी करते हैं। उधार का - परलोक का सुख तो मिले न मिले, ऐसा लगता है। जवानी की लहरों में उन्मत्त जीव को परलोक के उधार के सुख के प्रति कैसे विश्वास आए? फिर परलोक के उधार के सुख की ओर यदि कदम बढ़ाये, तो यहाँ का नगद सुख छूट जाता है! नगद का सुख लेते परलोक का उधार का सुख भी मिलता, तो शायद दुनिया परलोक के सुख को तिलाञ्जलि नहीं देती। यौवन, धन, प्रतिष्ठा, मान, मद के प्रति उन्मत्त होकर परलोक के सुख को भूलकर तभी तक चल सकोगे, जब तक इन्द्रियाँ ढीली नहीं पड़ जाती। पीछे जब यौवन चला जाएगा, शरीर में सुस्ती आने लगेगी, अंग-अंग ढीले पड़ने लगेंगे, तब कृत कर्मों के फलस्वरूप ८४ ही आगे आयेगा। तब पश्चाताप करने लगोगे। अपने-आप को, अपनी बुद्धि को धिक्कारे बिना रह नहीं सकोगे! व्यासजी के वचन क्या कह रहे हैं, वह तो अभी देखते नहीं!! जवानी के मद में उन्मत्त मन अभी व्यास और शुकदेव के

वचनों को क्या देखे!!! इस प्रकार शास्त्रों द्वारा निषिद्ध मार्ग पर कब तक चलोगे? जब यह तन छूटने लगेगा और जब आगे यमराज आकर खड़े होंगे, तब जीव दो बातों पर पछताएगा। एक यह कि जीवन भर कमाया हुआ संचित धन खर्च नहीं कर पाया और दूसरा जीवन भर में परलोक के विषय की कुछ भी कमाई नहीं की। दोनों हाथ इन्हीं दो बातों पर पछताते-पछताते, रोते-रोते, अपने-आप को धिक्कारते-धिक्कारते जायेंगे।

भटजी चोखुं तमने केम कहे,
जेणे मांड्युं ए ऊपर हाट।
सूथी देखाडे संजमपुरी,
तमे अपगरो एणी वाट।। ३८।।

भावार्थ :- कथाकार भट्टजी तुम्हें सच्चा ज्ञान प्रत्यक्ष कैसे कह सकते हैं? नहीं कह सकते! भागवत के अन्दर निहित सच्चा ज्ञान श्रोताओं को कहना, उनके लिए अपने-आप ही अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने जैसा होगा क्योंकि उनके घर में भी लड़के-बच्चे और सुन्दर स्त्री है। अपने पेट के साथ-साथ कितनों का पेट भरना है। फिर उनकी दूसरी कमाई भी तो नहीं है। भागवतरूपी हाट में जितना व्यापार हो, कमाई

मिले, उसी में सारा व्यवहार हल करना है। अब इस परिस्थिति में यदि भट्टजी श्रोताओं से 'कर्म द्वारा मुक्ति नहीं होगी। कर्म तो शरीर की शुद्धि मात्र के लिए है। आत्मा का उद्धार तो ज्ञान-भक्ति द्वारा ही संभव है। अतः ज्ञान-भक्ति के मार्ग पर चलो।' ऐसा कह दें, तो उनका व्यापार कैसे चले? यहाँ तो पाँच रुपये के भागवत से जीवन के लिए पाँच लाख कमाना है। अतः ऐसे भट्टजन आगे भागवत पधराकर भागवत के नाम पर बाजार लगाते हैं। आगे भागवत रखकर कमाई के लिए भागवत के प्रारंभ में और पूर्णाहुति के समय वेदों के विधान द्वारा कर्म कराते हैं तथा कर्मकाण्ड द्वारा ही मुक्ति बताकर श्रोताओं को संजमपुरी के सरल मार्ग पर भेज देते हैं। फिर श्रोताओं! तुम्हारी भी अक्ल मारी गई होती है क्या? वैतरणी नदी कहाँ है, क्या यह तुम नहीं जानते? उसे पारकर तुम्हारा जीव किस घाट उतरेगा-जमपुरी, स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ? क्या इतना भी विचार-विवेक तुममें नहीं है? भट्टजी द्वारा बताए गए जमपुरी के मार्ग को ग्रहण कर तुम कहाँ पहुँचोगे, यह तो देखो!

बुध तमारी किहां गई,

पछे आवसे कीहे काम।

वचन जुओ सुकदेवनां,
तेमां प्रगट पराधाण ॥ ३९ ॥

भावार्थ :- अतः हे श्रोताओं! तुम भी पशु-बैल तो हो नहीं!! तुम भी भट्टजी की तरह मानव ही हो। तुम्हारे पास भी बुद्धि है, विचार-विवेक है। यसर्थ भट्टजी जहाँ हाँकते हैं, वहीं मत दौड़ो। बुद्धि लगाकर विचार करो और कर्म छोड़कर ज्ञान तथा भक्ति के मार्ग पर चलो। यह तन छोड़ने के बाद बुद्धि लगाओगे, तो क्या काम बनेगा? 'मरने के बाद दवा का क्या काम?' अभी ही शुकदेवजी के वचनों को देखकर विचार करो कि उन्होंने वेद, पुराण में क्या कहा है? उन्होंने वहाँ प्रत्यक्ष ही परे घर के चिन्ह, प्रलय से बचने का मार्ग, परे घर में पहुँचने का मार्ग और उस मार्ग पर चलने का साधन, इस प्रकार सब कुछ बताया है। पुनः यह भी बताया है कि कर्म-मार्ग द्वारा क्या होता है और कहाँ का सुख मिलता है!

अर्थ लई सास्त्र तणो,
तमे ओलखजो आ ठाम।
बीहो छो छाया थकी,
जुओ करे छे कोण संग्राम ॥ ४० ॥

भावार्थ :- शुकदेव मुनि और व्यासजी ने शास्त्रों में क्या कहा है? उनके ज्ञानपूर्ण वचनों द्वारा पिण्ड और ब्रह्माण्ड की पहचान करना। क्या उन्होंने अपने वचनों में तुम्हारे जीवन को अनादि बताया है? माया को सुखदायी कहा है? जिस भोम-स्थान में अभी तुम बैठे हो, उसे सुखदायी भोम बतायी है या दुःखदायी? विषयों द्वारा प्राप्त होनेवाले जिन सुखों को तुम सच्चा मान रहे हो, क्या उन्होंने भी उसी को सच्चा कहा है या अन्य को? विचार करो! अपनी ही छाया अर्थात् अपने ही लड़के-बच्चे से डरते हो (बीहो छो)? सोचते हो कि 'मैं न रहूँ, तो इनकी क्या दशा होगी? मर ही जायेंगे।' यह नहीं विचारते कि यदि तुम्हीं उन्हें बचानेवाले होते, तो क्या उन्हें मरने देते? अमर नहीं कर लेते? तुम्हारा यह अभिमान टिड्डी के आसमान रोकने जैसा है। तुम्हारे परलोक मार्ग की साधना में बाधक बनकर संग्राम करनेवाले - भिड़नेवाले तुम्हारे ही कुटुम्ब-परिवार के स्त्री, लड़के-बच्चे आदि हैं और तुम उन्हीं के पालन-पोषण में अपना परलोक और आत्म-सुख खोए बैठे हो!

कोण तमसुं जुध करे,
बीजो ऊभो सामो कीहो चोर।

आप बंधाणां आपसुं,
मांहेली गमा तिमर घोर ॥ ४१ ॥

भावार्थ :- देखो! तुम्हें परलोक के मार्ग पर चलने से रोकने के लिए कौन तुमसे युद्ध करते हैं? विचार करो!! सबसे पहले घर में माता-पिता, कुटुम्ब-परिवार के सदस्य ही तैयार रहते हैं। जन्म से लेकर १५-१८ वर्ष तक वे ही विरोधी बनकर लड़ते हैं। दूसरी ओर अन्तःकरण के अन्दर के ज्ञान, भक्ति, त्याग, वैराग्यरूपी रत्न को चुरानेवाले इन्द्रियरूपी चोर सामने खड़े रहते हैं। ये इन्द्रियरूपी चोर जीव को उलटी ओर खींचते हैं और उसके अन्दर के ज्ञान को नष्ट कर देते हैं। इससे जीव की बुद्धि मारी जाती है और गुण, अंग, इन्द्रिय, त्याग और वैराग्य को अपने वश में कर लेते हैं। ऐसे में बीचों-बीच जवानी की लहर उमड़ आती है। पूर्व का संस्कार तो था ही। अब कामेन्द्रियाँ अशांत होने के कारण सताने लगती हैं। रात भर नींद नहीं आती। जब वासना तृप्त हो जाती है, तब ऐसी घोर नींद आती है कि जीव उसी में मस्त होकर खर्राटे लेने लगता है। कामेन्द्रियों को तृप्त करते-करते जीव स्वयं ही ऐसे साँकल में बँध जाता है कि श्वास लेने का भी समय

उसे नहीं मिल पाता। इच्छा, तृष्णा तो अन्दर उत्तरोत्तर उमड़ती ही जाती है। इस इच्छा, तृष्णारूपी अग्नि के कुण्ड में निरंतर आहुति डालते-डालते जीव के अन्तःकरण में अमावस्या की काली रात्रि सदृश घोर अंधकार-अज्ञान छा जाता है। अर्थात् अन्तःकरण में परिवार की अज्ञानतायुक्त ममता इस प्रकार जम जाती है कि अन्त में सुस्त और जीर्ण अवस्था में पहुँचे हुए शरीर से भी जगह, धन-सम्पत्ति, लड़के-बच्चे की हाय ... हाय .... नहीं छूट पाती तथा घर और धन की रक्षा के लिए घर के बाहर बँधे कुत्ते के रूप में जीवन अस्त हो जाता है।

संसार सूतो घारण करी,
ते तां केणी पेरे जागे रे।
पण साध कहावो निद्रा करो,
मुने दुख ते तेनुं लागे रे॥४२॥

भावार्थ :- उपरोक्त प्रकार से अपने-आप साँकल में फँसकर मायानन्द को ब्रह्मानन्द मानकर माया के अज्ञानजन्य जन्म-जन्मान्तर के संस्काररूपी नशे में सोकर सारा संसार खर्राटे ले रहा है। इनका यह मायावी नशा एक ही जन्म का नहीं, बल्कि पूर्व कितने जन्मों का जमा हुआ

है, जिसके फलस्वरूप जीव सूखी लकड़ी-सा बन चुका है। ज्ञानरूपी जल डालने पर जिसके टूटने का भय है और ज्ञान समझाने पर रूठने का भय है। ऐसे जीव को विश्वास दिलाकर 'बीजो घाट' अर्थात् आत्मीय आकार देना बड़ा कठिन होता है। माया में जन्मों से जकड़ा हुआ जीव सरलता से कैसे जागे? ये तो हुई गृहस्थी में फँसे जीवों की बात ! परन्तु संन्यासी कहलाकर वेद, शास्त्रों, पुराणों, वेदान्त आदि प्रकाण्ड ग्रंथों द्वारा चर्चा-कथा करनेवाले, भेष धारण करके परमात्मा के नजदीकी कहलानेवाले के भी अन्दर काम, क्रोध आदि घोर मिथ्या के प्रति ममता बाँधकर उतने ही दीवाने होते हैं, जितने गृहस्थी हैं। यह देखकर मुझे अत्यन्त दुःख होता है कि ये भी ऐसे ही हैं, तो ऊर्ध्व मार्ग चलकर कौन दिखायेगा?

निद्रा परी नाखी देओ,
उठीने ऊभा थाओ।
बीजी ते वात मूकी करी,
तमे ग्रहो प्रभुनां पाओ।।४३।।

भावार्थ :- यसर्थ हे साधनशील साधकों-सज्जनों! वेद-शास्त्रों की पुकार को सुनकर

परलोक की चिन्ता करो!! मूढ़ तो मूढ़ हुए, पर कोई तो जागो!!! शास्त्रों के वचन सुनकर अज्ञानजन्य निद्रा का परित्याग करो। माया को पहचान कर जीव को सुमार्ग पर चलाओ। मायावी विकारों को दूर करके त्याग, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, क्षमा, दयारूपी आत्मीय सिंगार धारण करके सुमार्ग पर पदार्पण करो। तुम्हारे जीवन की जितनी अवधि शेष रह गयी है, उसमें दुनियादारी की बातें छोड़कर एक प्रभु-परमात्मा अथवा जगदीश के चरण ग्रहण करो। उन्हीं के प्रति प्रेम रखो। उन्हीं में ममता बाँधो। झूठे के प्रति अज्ञानजन्य ममता ही घारन-मदरूप है। अतः इससे आत्मा को छुड़ाकर प्रभु के चरण में लगाओ।

पतिव्रतापणे सेविए,
नव थाए वेस्या जेम।
एक मेलीने अनेक कीजे,
तेणी थाए धणीवट केम ॥४४॥

भावार्थ :- हे सज्जनों! हे साधकों!! तुम गणेश को, राम को, हनुमान को, शिव को अथवा अन्य किसी को भी इष्ट मानकर भजते हो, जिस किसी भी इष्ट की भजन-भक्ति

अथवा मनन-चिन्तन करते हो, सो करो, परन्तु पतिव्रता भाव से एक की ही करो। यदि तुम अपने इष्ट को अपना मालिक अथवा पति मानकर और स्वयं को उनकी अर्धांग जानकर पतिव्रता भाव से उनकी अनन्य भक्ति करोगे, तो वे तुम्हारी रक्षा जरूर करेंगे। परन्तु वेश्या बनकर सभी को मानते-नमते और पूजते चलोगे, तो तुम न घर के रहोगे न घाट के। तुम्हारी रक्षा किसी से नहीं होगी। एक पति को छोड़कर अनेकों के पीछे दौड़नेवाली स्त्री का पति भला कौन हो सकता है? उस वेश्या का कोई एक निश्चित पति नहीं होगा। अतः उसकी रक्षा करने के लिए कौन आगे बढ़ेगा? उस वेश्या की रक्षा कैसे हो सकेगी? यदि एक को मानोगे, तो तुम्हारी रक्षा, जतन उस पति को करनी ही पड़ेगी और वह करेगा भी क्योंकि 'पतिव्रता नङ्गी रहे, सो तो पति को लाज'!

गेहेन घारण तमे पर हरो,
टालो ते तिमर घोर ।
उठीने अजवाले जुओ,
त्यारे देखसो माहेला चोर।।४५।।

भावार्थ :- हे साधकों! उक्त वचनों को

समझकर जिस गेहेन धारण - अज्ञानजन्य अंधकाररूपी माया के नशे के परवश होकर भक्ति के नाम पर वेश्यापन कर रहे हो, उसे छोड़ दो और एक ही इष्ट को अपनाओ!! अन्तःकरण के अन्दर जन्म-जन्मान्तर के तिमर-अमावस्या की रात्रि सदृश अज्ञानजन्य अंधकार को दूर करो। इस काम, क्रोध, लोभ सदृश घोर अंधकार के कारण तुम्हारे अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश नहीं हो पा रहा है। जीव उस अंधेरे में बेसुध हो रहा है। आप्तपुरुषों के ज्ञान द्वारा बुद्धि-विचार-विवेक को जागृत कर देखो और शास्त्रों में कहे प्रमाण महापुरुषों के वचनों की समझ धारण कर अन्तःकरण के मायावी विकारों को दूर करो। इन मायावी विकारों के स्थान पर अन्तःकरण में इश्क, ईमान, दया, क्षमा, शील, धैर्य, संतोष, विनय, नम्रता, गरीबी आदि गुणों को धारण करो और त्याग-वैराग्य के मार्ग पर चलो। दुर्गुण को त्याग कर सद्गुण धारण करना ही उठकर खड़े होना है। जिस प्रकार नरसैयां, नरसिंह मेहता, मीरा, सूरदास, शुकदेव आदि भक्त खड़े हुए थे। दुर्गुणों को त्यागते ही जीव के अन्दर वास्तविक ज्ञान का उदय होगा। ज्ञानरूपी सूर्य

के प्रकाश में तुम अन्तःकरण के ज्ञान, भक्ति, त्याग, वैराग्यरूपी रत्न-धन को चुरानेवाले अन्दर - अन्तःकरण में छिपे चोरों - गुण, अंग, इन्द्रिय तथा चोरों के सरदार-मन को प्रत्यक्ष देख सकोगे, पहचान सकोगे! पहचानना ही देखना है।

ज्यारे अर्थ लेसो वाणी तणो,
त्यारे अर्थमां छे अजवास।
अजवाले जीव जागसे,
त्यारे थासे टली चोर दास ॥ ४६ ॥

भावार्थ :- आप्तपुरुषों द्वारा वेद, पुराण, शास्त्र आदि सद्ग्रन्थों के वचनों में कहे प्रमाण यदि तुम अपने जीवन से निषेध कर्मों को छोड़कर विधान में दिए गए गुणों को दिल में धारण करोगे, जैसे - निर्दयी न बनकर जीव के प्रति दया करोगे, जिस प्रकार अपने को दुःख लगता है, इच्छा होती है, मन सुखी होना चाहता है, उसी प्रकार दूसरों को भी तो होता होगा न! इस प्रकार सबके प्रति समदृष्टि रखोगे, छलछिद्र नहीं करोगे, किसी को दुःख नहीं पहुँचाओगे, दूसरों के सुख-दुःख के प्रति अपना-सा भाव रखकर व्यवहार करने

अथवा निर्दयता छोड़कर दया धारण करने के अर्थ का वचन लोगे, शास्त्र-विहित कर्मों को समझकर चलोगे, तो उस अर्थ के ज्ञानरूपी प्रकाश को तुमने अपने जीवन में उतारा अथवा व्यवहाररूपी साँचे में ढाला, यह कथन सिद्ध होगा। इस प्रकार अर्थ का प्रकाश होते ही काम, क्रोध, लोभ आदि मायावी अन्धकार उस प्रकाश के आगे टिक नहीं सकेगा, भाग जायेगा। अन्तःकरण में अर्थ का प्रकाश होते ही प्रेम का उदय होगा और जीव जागृत हो जायेगा। तब तो गुण, अंग, इन्द्रियरूपी अन्तःकरण के जो चोर अज्ञानी जीव को कामी, क्रोधी, लोभी बनाकर उसका इश्क, ईमान, प्रेम, त्याग, वैराग्यरूपी रत्न चूराकर उसे विषय की ओर खींचनेवाले बैरी बने थे, वे सभी जीव के दास बन जायेंगे, जीव को परमात्मा के सुख में पहुँचाने में सहायक बन जायेंगे क्योंकि "अजवालामां न रहे चोर"।

वेरी टली वोलावा थासे,
जो ए करसो जतन।
एणी पेरे ए पामसो,
अमोलक ए रतन ॥४७॥

भावार्थ :- तब गुण, अंग, इन्द्रिय तथा अन्तःकरणों का बैरीपन टल-मिट जाएगा और वे सज्जन बनकर दास भाव लेकर जीव-आत्मा को परमात्मा-जगदीश के चरण तले पहुँचानेवाले बन जायेंगे। जैसे जबान जगदीश का गुणगान करने में स्वाद लेगी, कान लीला-श्रवण के स्वाद लेगें, आँखें परमात्मा के दर्शन की लालसा करेंगी। इस प्रकार सभी जीव के अनुकूल होकर दौड़ेंगे। पुनः इन गुण, अंग, इन्द्रिय तथा अन्तःकरणरूपी चोरों का पल-पल जतन करने से (जैसे-मेरे मन ने दिन भर में निषेध कर्म अथवा बुरा चिन्तन तो नहीं किया न, आँखें अनर्थ देखने के लिए तो नहीं दौड़ी न, जबान ने दूसरों को अनिष्ट वचन तो नहीं कहा न, कान ने किसी की निन्दा तो नहीं सुनी न) जीव बुरे कर्मों से निवृत्त होता जाएगा। इस प्रकार इन कर्मचारियों का जतन कर यदि इन्हें सुमार्ग पर चलाओगे, तो परमात्मा तत्त्व प्राप्त करोगे। पाँच तत्त्वों से निर्मित इस मानव तन का मोल नहीं किया जा सकता। ये तो रत्नरूप है। यदि इसी रत्न द्वारा व्यापार कर चिन्तामणि-रूपी प्रभु को प्राप्त कर सकोगे, तो यह रत्नरूपी मानव जीवन सुफल कहलायेगा। अन्यथा तो

पशुवत् ही सिद्ध होगा। इस रत्न सदृश तन की प्राप्ति के लिए त्रिदेवा भी तरस रहे हैं।

जनम मानषो खंड भरतनो,
श्रेष्ठ कुली सिरदार।
ए वृथा कां निगमो,
तमे पामी उतम आकार ॥४८॥

भावार्थ :- यहाँ ८४ लाख योनियों में विचार-विवेक संपन्न उत्तमातिउत्तम मानव तन, उसमें भी भरतखण्ड के बीच की श्रेष्ठ कर्मभूमि, साधन में श्रेष्ठ-तपोभूमि कहलानेवाली भूमि में जन्म लेकर और जिस कलियुग का बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि तथा त्रिदेवा भी धन्य-धन्य कहकर गुणगान करते हैं, ऐसे अमूल्य युग में तन प्राप्त करके, उसमें भी सिरदार सद्गुरु द्वारा लाया अक्षरातीत का तारतम ज्ञान प्राप्त करके भी हे मानवात्माओं! इसे व्यर्थ क्यों गँवा रहे हो? यह मानवतनरूपी अमूल्य अवसर पुनः हाथ आनेवाला नहीं है। थोड़ा तो विचार-विवेक कर लो!!

चार पदारथ पामिया रे,
एथी लीजिए धन अखंड।

अवसर आ केम भूलिए,
जेथी धणी थाए ब्रह्मांड ।।४९ ।।

भावार्थ :- उक्त चारों पदार्थों के संयोग का अवसर इसी भोम में प्राप्त होता है। इन चारों पदार्थों के संयोग से धामधनी वैकुण्ठाधीश रूपी अखण्ड धन और वहाँ का सुख लेना हो, तो द्वार खुला है। मानव होकर ऐसा सुहावना अवसर क्यों गँवा रहे हो? जिन पदार्थों द्वारा १४ लोकों के धनी-मालिक वैकुण्ठ के आनन्द के भागीदार बन सकते हो। कोठी-ध्वजावाले कहला सकते हो।

चौदे भवन जेने इछे,
कोई विरलाने प्राप्त होए।
ए पामी केम खोइए,
तुं तां रतन अमोलक जोए ।।५० ।।

भावार्थ :- जो चौदह लोकों के मालिक कहलाते हैं, वे भी उपर्युक्त चार पदार्थों की वाञ्छना करते हैं। जैसे तुलसीदासजी कहते हैं, *"चार पदारथ हैं जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं"*। पुनः *'ब्रह्माजी ढूंढ़त फिरे, शिवजी किन्ह पुकार। जटा मुकुट तन त्याग के, हम क्यों न होवे व्रज नार'* क्योंकि इस तन की

वाञ्छना १४ लोकों के सभी जनों को है। यहाँ का मानव तन तो पूर्व के कितने जन्मों के संचित पुण्य से प्राप्त होता है। तुम्हारे पुण्य के विषय में मैं क्या कहूँ? इस अवसर पर जन्म प्राप्त करके चार पदार्थों का अधिकारी होने का अधिकार प्राप्त है। अहोभाग्य है तुम्हारे! ऐसे अवसर को प्राप्त कर अज्ञानतावश जीवन क्यों खो रहे हो? यदि यह अमूल्य तन खो दिया, तो अखण्ड धन भी हाथ से चला जाएगा। अमूल्य रत्न द्वारा चिन्तामणि के बदले कौड़ी मत खरीदो। यह ८४ में बार-बार तन धारण करना कौड़ी है। तुम्हें तो अभी मानव तनरूपी अमूल्य रत्न मिला है। इस रत्न को पहचानकर चार पदार्थरूपी साधन द्वारा व्यापार करोगे, तो चिन्तामणि रूपी १४ लोक के मालिक-जगदीश बन सकोगे। वह सुख प्राप्त कर लेने पर बाकी ही क्या रहा!

रतन ते आने केम कहिए,
पण आ भोम उपमा एह ।
कै कोट रतन जो मेलिए,
आणे तोले न आवे तेह ॥ ५१ ॥

भावार्थ :- इस मानव तन को रत्न कैसे कहा

जाय? रत्न तो जड़ पदार्थ कहलाता है और यह तन तो चेतन है। चाहे लाख प्रमाण दो, किंतु जड़ जड़ ही रहेगा और चेतन चेतन ही रहेगा। चेतन के मूल्य के आगे जड़ के मूल्य की कैसी तुलना? किंतु इस संसार में क़ीमती नगों में रत्न का नाम सबसे ऊँचा है। यसर्थ इस नश्वर संसार के जीवों को इस मानव तन की क़ीमत का बोध कराने के लिए रत्न की उपमा देनी पड़ती है। वास्तव में तो इस मानव तन की क़ीमत के आगे एक ब्रह्माण्ड के अन्दर विद्यमान सभी रत्नों की क़ीमत रख दी जाय, अपितु एक ब्रह्माण्ड के तो क्या! ऐसे-ऐसे अनन्त कोटी ब्रह्माण्डों के अन्दर विद्यमान सम्पूर्ण रत्नों की क़ीमत भी रख दी जाय, तब भी उन सारे रत्नों की क़ीमत इस मानव तन के बराबर नहीं हो सकेगी। अतः इस तन के मूल्य की पहचान तो करो!

हवे सुधरसो संगत थकी,
जो मलसे एहवो साध।
सास्त्र अरथ समझावसे,
त्यारे टलसे सघली व्राध॥५२॥

भावार्थ :- हे सज्जनों! अब तो मुझे आशा है कि तुम इस अमूल्य तन की क़ीमत समझकर

परलोक के प्रति चिंता रखकर सुमार्गगामी होने की इच्छा करोगे। अपने-आप को आत्मघात से बचाने का मार्ग ढूँढ़ोगे। शास्त्रों के वचनों के अनुकूल अपने उद्धार हेतु साधुओं में उग्र विद्वान साधुओं की पहचान कर उनकी संगत करोगे। ऐसा साधु डाकुओं के गाँव को भी भक्तों के गाँव में परिवर्तित कर देने की शक्ति भरकर तुम्हें माया और ब्रह्म की पहचान करा देनेवाले रास्ते पर लगा देगा। वे तुम्हें शास्त्रों का अर्थ अर्थात् मूल-तत्त्व समझा देंगे। जब तुम ऐसे साधु को प्राप्त कर लोगे, तब तुम्हारे सम्पूर्ण जन्म-मरणरूपी व्याधिरोग टल जायेंगे, मिट जायेंगे। परन्तु यदि तुम उस सच्चे साधु को पहचानकर उसकी शरण में जाओगे, तो!

संगत करसो साधनी,
ए रुदे करसे प्रकास।
त्यारे ते सरवे सूझसे,
थासे अंधकारनो नास॥ ५३॥

भावार्थ :- मेरे वचनों को सुनकर शास्त्रों में कहे प्रमाण यदि तुम सच्चे साधु की संगत प्राप्त करोगे, तो ऐसे साधु की संगत से क्या होगा? वे साधु तुम्हारे रुदे-हृदय अन्तःकरण में ज्ञान का

प्रकाश भर देंगे अर्थात् तुम्हारे संशयरूपी विकारों को ज्ञान द्वारा निर्मूल करके हृदय में ज्ञान का प्रकाश भर देंगे। जब उस साधु के ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण अज्ञानजन्य संशय निर्मूल होकर हृदय में एक-एक वस्तु के प्रति दृढ़ता-निश्चयता आयेगी, तब तुम माया की कलाओं तथा ब्रह्म के लक्षणों को ज्ञानरूपी आँखों द्वारा प्रत्यक्ष देखकर समझ जाओगे क्योंकि माया, ब्रह्म, आत्मा, पाप, पुण्य, परलोक आदि सूक्ष्म हैं। अतः सूक्ष्म वस्तुओं को सूक्ष्म ज्ञान-दृष्टि से ही समझा और देखा तथा जाना जाता है। इस प्रकार यदि माया और ब्रह्म को समझ लोगे, तो तुम्हारे हृदयपट के अज्ञानजन्य अंधकार का नाश हो जायेगा। ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने से जीवन पलट जायेगा, ८४ का चक्कर मिट जायेगा और परलोक सुधर जायेगा। भक्ष्य और अभक्ष्य का ज्ञान होने पर जिस प्रकार छोटा बच्चा स्वतः ही बदल जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा भी कर्म और कर्तव्य बदल जायेगा।

ज्यारे अंध अगनान उडी गयुं,
त्यारे प्रगट थयां पारब्रह्म।
रंग लाग्यो ए रसतणो,
ते छूटे बलतो केम ॥५४॥

भावार्थ :- माया अंधी है। उसके लिए कोई अपना और कोई पराया नहीं होता। वह अपने गुण द्वारा सबको अपने समान कर देती है। अज्ञानजन्य अंधकार को ही अंध अज्ञान कहा है। अतः जब तुम्हारे हृदयपट में जमी जन्म-जन्मान्तर की अज्ञानता साधु की ज्ञानाग्नि में जलकर भस्म हो जायेगी, तब उस हृदय में ब्रह्मबोध तथा ब्रह्म के प्रति प्रेम प्रकट होगा। पर्दारूपी अज्ञानता के हट जाने पर ब्रह्म प्रत्यक्ष ही प्रकट हो जायेंगे। *'इतहीं वैकुण्ठ इतहीं शून्य, इतहीं प्रगट पूर्ण पारब्रह्म'* सदृश भाव आने लगेगा। हिमालय में तपस्या करने जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इस प्रकार प्रकट दृढ़ता - निश्चयता के पश्चात् परमात्मा के प्रति प्रेमरूपी रंग लग जायेगा और प्रेम उत्पन्न हो जायेगा। तब तो प्रेमरूपी रस के नशे में *"जित देखों तित श्याम देखाय"*। अब तुम्हारे हृदयपट में उत्तरोत्तर बढ़कर जलती हुई ऐसी प्रेमाग्नि कैसे बुझ (छूट) सकेगी ? जैसे *'अनेक विघन जो उपजे, पण मूकिए नहीं साध संग।'* तब तुम माया के प्रति निडर होकर कहोगे, *"भलो थयो भाग्यो जंजाल, हवे सुख सों भजसूं गोपाल।"*

वस्त खरीनो जे रंग लाग्यो,
ते थाय नहीं केमे भंग।
भलियो जे भगवानसुं,
तेनो दीसे एकज रंग ॥ ५५ ॥

भावार्थ :- आत्मा को जब परमात्मारूपी सच्ची वस्तु का प्रत्यक्ष रंग लग गया, प्रेमरूपी नशा जब चढ़ गया, तो भले महाप्रलय हो जाय, उसका वह प्रेम का नशा कभी भंग नहीं हो सकेगा। वह नशा, वह रंग तो ऐसा है कि, *'लगी लगी सो लगी'*। जैसे - मीरा, चैतन्य महाप्रभु, जड़भरत, वाल्मीकि आदि भक्तों को लगी थी। जब हृदयपट में उन परमात्मा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया, तब वह प्रेम परमात्मा में लीन कर देगा क्योंकि प्रेम का रूप ही ब्रह्म है। जैसे *'रसो वै सः, ब्रह्म वै रसः'*। तब ऐसी दशा में आत्मा का एक ही लक्षण (रंग) होगा। क्या? *'नजरों निमख न छुटहीं, तो नहीं लागत पल।' 'छिन खेले छिन में हंसे, छिन में गावेंगीत।'* अतः दया, क्षमा, धैर्य, शील, सन्तोष, प्रेम, त्याग, वैराग्य आदि आत्मीय गुणों की खान हृदय में भरी रहेगी।

सुख अखंड एणी पेरे,
तमे लेजो संगत साध।

अधखिण विलम न कीजिए,
आ आकार खोटो साज ॥ ५६ ॥

भावार्थ :- इस प्रकार सच्चे साधु की संगत करके ब्रह्मानन्द का अखण्ड सुख प्राप्त करने का यह अवसर है क्योंकि *'सतसंग बड़ा संसार रे साधो, सतसंग बड़ा संसार'*। अतः साध संग के लिए आधे क्षण की भी देरी न करो। लाखों का नुकसान होता हो, तो भी साधु का पाँच मिनिट का भी संग छोड़ो नहीं। जैसे-'जो सिर साटे साधु मिले, तो भी सस्ता जान'। ब्रह्मानन्द का अखण्ड सुख तो साधु की संगत द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः आत्म-कल्याणार्थ सच्चे साधु की पहचान उसके आचरण, शब्द अथवा ज्ञान द्वारा करो क्योंकि *'जे बड़ो लाभ, ते बड़ो जोखम'*। यह शरीर तो झूठा है। परंतु यदि समझो तो इस झूठे, जोखमपूर्ण शरीर से दुर्लभ से दुर्लभ बड़ा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। लगनशील बनो, तो इस तन द्वारा क्या प्राप्त नहीं किया जा सकता?

खोटाथी खरो लीजिए,
अवसर एवो आज।

आ वेला अमृत घडी,

परमोध कहे मेहेराज ।। ५७ ।।

भावार्थ :- *'नव द्वार रचे नरक के'* ऐसे खोटा-नश्वर शरीर से खरा-आत्मा और परमात्मा प्राप्त कर सकते हो, ऐसा मानव तनरूपी-अवसर आज प्राप्त है। परन्तु इस मानव तन का मूल्य जानना अत्यंत आवश्यक है। यह मानव तन अमृत सदृश गिरती हुई घड़ी-बेला है। यदि यह क्षण चूक जायेंगे, तो अमृत मुख में नहीं गिर पायेगा। इसी तन द्वारा अमर बन सकते हो । इसलिए इसे अमृत कहा है और इस तन की अवधि क्षणिक में क्षणिक तथा भरोसा करने योग्य न होने के कारण इसे घड़ी कहा है। अतः गई हुई श्वास बाहर आये न आये, इसका क्या भरोसा? यसर्थ अमृत को चूकने मत दो! इस तन की अमूल्यता का बोध कराते हुए, श्री मेहराज डंके की चोट पर समय की जानकारीरूपी प्रबोध दे रहे हैं।

साध जो जो तमे सांभली रे,

वचन मा करजो लोप।

प्रगट कह्युं आ पाधरुं,

बीजी गुरुगम थासे गोप ।। ५८ ।।

भावार्थ :- हे साधक-सज्जनों! शास्त्रों के जो वचन मैंने तुम्हें समझाये हैं, अब उन सुने हुए वचनों को अपने विचार-विवेकरूपी तराजू द्वारा तौलकर देखो! इन वेदोक्त, शास्त्रोक्त वचनों को लोप मत करो, ठुकराओ मत!! अपने जीवन के मूल्य को जानकर मौत से डर रखो और सुने हुए वचनों पर अमल करो। सुने हुए वचनों को अमल में न लाना ही लोप करना है। दुनिया भागवत ग्रन्थ के वचनों को भी वेद, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थों के वचनों की तरह हलका जानकर भूल में पड़ी थी, वह भूल मैंने दुनिया को दिखा दिया। दूसरे ग्रन्थों और इस भागवत ग्रन्थ में क्या भिन्नता है, वह समझाकर दुनिया को मूल तत्त्व बता दिया। किंतु मेरे गुरु का ज्ञान तो मैंने अभी तक बताया ही नहीं है, गोप्य रखा है। अपने गुरु का ज्ञान मैं जैसे-तैसों को इतनी सरलता से नहीं दूँगा!

बीजां वचन भारी केम कहिए,
तेतां अरथी विना न अपाय ।
केसरी दूध कनकनां रे,
पात्र विना न समाय ॥ ५९ ॥

भावार्थ :- समस्त ज्ञानों से भारी-अमूल्य मेरे

गुरु के ज्ञानपूर्ण भारी वचन मैं किसी अपात्र को कैसे कह सकता हूँ? ये भारी वचनों को तो अर्थी-अर्थात् जिज्ञासु, त्याग-वैराग्य युक्त आत्मीय गुण धारण करनेवाले पात्र के सिवाय अन्य को नहीं दिया जा सकता है। इस सिंहनी के दूध सदृश ज्ञानपूर्ण तेजयुक्त वचनों को ग्रहण करनेवाला पात्र भी कनक-सोने के समान सच्चा और निर्मल होना चाहिए। यदि यह वचन ग्रहण करनेवाला हृदयरूपी पात्र★ कच्चे काँच सदृश हो, तो वस्तु भी नष्ट हो जायेगी और पात्र भी टूट जायेगा अर्थात पात्र को अधोगति का दुःखदायी कष्ट सहन करना होगा। यसर्थ अपने गुरु का ज्ञान मैं काम, क्रोध, लोभ आदि मायावी विकारों से रहित प्रेमी, दयालु, क्षमाशील, संतोषी, विचारशील, धैर्यधारी, त्यागी, वैरागी,

---

★'दातस्य नरकं यान्ति,
ब्राह्मणा ग्राम शुकराः।'

अर्थ :- अपात्र को ज्ञान देनेवाले की अधोगति होती है। ज्ञान ग्रहण करनेवाला अपात्र यदि ब्राह्मण भी हो, तो वह गाँव का सुअर बन जाता है।

सत्यप्रेमी, सत्यग्राही जीव के हृदयरूपी पात्र में ही डालूँगा। वह भी तब, जब वह आकर मेरे आगे जिज्ञासा प्रकट कर कहेगा कि, 'आपको यह ज्ञान मुझे देना ही पड़ेगा!' अन्यथा यह ज्ञान मायावी जीवों के योग्य नहीं है।

-(किरंतन, प्र. १२८/चौ.५९)।

।। हां रे मारा साध कुलीनां जो जो रे ।।

हां रे मारा साध कुलीनां जो जो रे ।। टेक ।।
कोहेडा अंधेर मोह मांहे,
मलवो छे साधो संत।
जेने रदेमां वस्या वालोजी,
मारा जनम संघाती ते मित्र ।। १ ।।

भावार्थ :- हे मेरे कलियुग के साधनशील साधु-सन्तों! आप सब कलियुग के बीच साधु बनकर सन्त कहलाकर भटकते फिरते हो। जरा यह भी तो विचार कर देखो कि आप कैसी भूमि पर बैठे हो? यह युग कैसा है? जीवन किस प्रकार का है? मार्ग कौन-सा तय करना है? जिस प्रकार बादलरूपी कोहेडे के छा जाने पर प्रत्यक्ष वस्तुएँ दिखाई नहीं देतीं और विषय-वस्तु अंधेरे में अज्ञात हो जाती है, उसी प्रकार यह संसार भी

एक कोहेडा है। हमारे हृदय में बादल सदृश मोह छा जाने के कारण हम सच्चे तथ्य को सच्चे रूप में न समझकर दूसरा ही रूप समझ बैठते है। इसीलिए इस संसार को कोहेडा कहा गया है, वह भी अंधेरस्रूप। इसी मोह-संसारस्रूपी कोहेडे के बीच हमें साधु-सन्त से मिलना है क्योंकि सच्ची वस्तु साधु-सन्तों के पास ही होती है, यह कथन शास्त्र सिद्ध है। अतः साधु-सन्तों से मिलकर अपना कल्याण किया जा सकता है। जिस साधु-सन्त के हृदय में वालोजी-परमात्मा तत्त्व का बोध है अर्थात् स्वयं परमात्मा बैठे हैं अथवा जिस साधक ने अपने अन्तःकरण में परमात्मा को बैठाया है, वह साधु-सन्त मेरा जन्म-जन्म का संघाती अर्थात् एक मार्ग पर साथ चलनेवाला मित्र-साथी है। संसार में जन्म प्राप्त कर मैं भी परमात्मा तत्त्व मान के चला और वह भी आस्तिक बनकर परमात्मा तत्त्व की खोज में चला। भले हमारे उपास्य स्वरूप भिन्न हैं, परन्तु मार्ग और लक्ष्य एक होने के कारण वह है तो मेरा साथी-दोस्त ही!

आ कोहेडा मांहे साध सुं करे,
जेणे बांध्यो चरणसुं चित।

रात दिवस रमे रदे मां,
तेने सुं करे प्रपंच ॥२॥

भावार्थ :- सच्चे साधु का यह संसाररूपी कोहेडा क्या बिगाड़ सकता है? जिसके हृदय के अन्दर वालाजी विराजमान हैं, संसार उसका बाल तक बाँका नहीं कर सकता। जिस साधु ने वालाजी के चरणों से अपने चारों अन्तःकरण, दसों इन्द्रियाँ और नवों अंगों को चित्त से एक पक्ष कर ममतारूपी गाँठ द्वारा बाँध लिया हैं, उसके हृदय अन्तःकरण में तो रात-दिन एक ही रस से वालाजी रमते रहते हैं। उसकी तो वह दशा होती है कि, *"एके सों एक चित्त"*। अतः ऐसे साधु-संत का झूठा-मिथ्या, प्रपंच, कोहेडा क्या बिगाड़ सके? जहाँ मध्याह्न का सूर्य उदित होकर अपना प्रकाश उद्योत कर रहा हो, वहाँ अंधकार का आना असंभव तो क्या उसका नाम भी मिथ्या है!

गोप रहेसे साध एणे समे,
ते प्रगट केणी पेरे थाय।
वेष वधार्‍या बहुविध तणां,
ते खोल्या केम करी जाय ॥३॥

भावार्थ :- ऐसे साधु होंगे, तो वे गोप्य ही रहेंगे और प्राप्त वस्तु के आनन्द में एक चित्त रहेंगे। जिस प्रकार *'पूर्ण घटो न करोति शब्दम्'* अर्थात् पूर्णतः भरे हुए घड़े में से आवाज नहीं आती, उसी प्रकार सच्चे साधु प्राप्त वस्तु के रसानन्द में डूबे रहते हैं। वे ढिंढोरा पीटकर चिल्लाते नहीं फिरते! उनके लिए प्रचार तो झूठ का ही होता है। सच्चे साधु तो सत्य वस्तु की प्राप्ति कर शान्त भाव से उसी आनन्द में मग्न रहते हैं। अतः ऐसे सच्चे साधु दुनिया के बीच हैं तो सही, परन्तु उन्हें पहचानकर प्राप्त करना ही कठिन है क्योंकि सभी साधु-सन्त विभिन्न भेष धारण करके चलते हैं। चीरक भेष एक होने के कारण इन भेषों के बीच में से सच्चे हृदय-अन्तःकरण के बीच रात-दिन वालाजी परमात्मा को बैठाकर गोप्य रूप से चिन्तन करनेवाले साधु को प्राप्त करना कठिन है। अतः ऐसे सच्चे साधु को कैसे ढूँढ़ा और प्राप्त किया जा सके?

सरखा सरखी सर्वे पृथ्वी,
मांहे विध विधना वहे नारायण।
नहीं आकार फरे साधतणो,
प्रगट नहीं एधाण ॥ ४ ॥

भावार्थ :- संसार के जीवों में देखा जाय, तो साधु-असाधु, संत-असंत, देव-दानव, मानव, पशु-पक्षी अपितु ८४ लाख योनियों के जीवों का शरीर एक ही प्रकार का समान दिखाई देता है क्योंकि पृथ्वी पर जन्मे सभी जीवों का विस्तार पाँच तत्त्वों के सम्मिश्रण से ही हुआ है। पाँच तत्त्व तो क्या छठे तत्त्व आत्मा में भी नारायण के अंश का विस्तार है। अतः ८४ लाख योनियों में तरह-तरह से पाँच तत्त्व और नारायण के अंश का ही विस्तार है। इसी पाँच तत्त्वों से युक्त पिण्ड में सच्चे साधक भी हैं, जिनके हृदय में रात-दिन वालाजी रमते हैं। जैसे "रमे रात दिन वालोजी"। ऐसे साधुओं के अन्दर मायाजन्य गुण-लक्षणों का अभाव होने से उनका आकार-शरीर क्षण-क्षण में विचलित नहीं होता अर्थात् ऐसे साधु का आकार बारम्बार-आवागमन के चक्कर को प्राप्त नहीं होता। दूसरे साधुओं की तरह उनके अन्दर काम, क्रोध, लोभ आदि मायावी चिन्ह तो देखने को भी नहीं मिलते, परन्तु उनके आत्मा में विद्यमान एधाण-चिन्हों में भी घट-बढ़ नहीं होती, विचलितता नहीं आती। वे तो रात-दिन एक रस-एक चित्त होकर गद्गद रहते हैं।

आ भोम अंधेरी माहें आमलां,
जीव वेध्यो सघली व्राध।
जेने ते जईने पूछिए,
ते मुखथी कहे अमे साध॥५॥

भावार्थ :- यह भोम तमोगुण अहंकार द्वारा खड़ी अंधकारपूर्ण है। इसके बीच त्रिगुण द्वारा उत्पन्न सारी सृष्टि त्रिताप की भागीदार है। यहाँ इस भोम के समस्त जीवों के हृदय को अज्ञान रूपी अंधकार ने परवश करके जन्म-मरणरूपी व्याधिरोग से बिंधा-छेद दिया है अर्थात् "जातस्य मरणं ध्रुवम्" उनका बारम्बार जन्मना और मरना निश्चित हो चुका है। ऐसी उलटी मायावी भँवरी के बीच फँसे जीवों में से जिन्हें भी पूछा जाय, वे अपने मुख से यही कहते हैं, 'मैं माया को त्याग कर, पहचानकर, ठुकराकर ही तो साधु बना हूँ।' वे ऐसा कह तो देते हैं, परन्तु माया किसको कहते हैं? साधक के गुण तथा लक्षण क्या हैं? माया किस कला अथवा रूप में रहती है? माया मुझमें है या नहीं? ब्रह्मतत्त्व क्या है? मैं कौन-सा मार्ग चल रहा हूँ? मैंने कहाँ तक माया का परित्याग किया है? मैं ब्रह्म के कितने नज़दीक पहुँचा हूँ? इन सब

तत्त्वों के बोध के प्रति तो वे शून्य के समान हैं!

खोजो खरा थई ते माटे,
आ रचियो मायानो फंद।
दुनी मुझाणी फेरा दिए,
मांहे पड्या रदेना अंध ॥ ६ ॥

भावार्थ :- यथार्थ सैकड़ों और हजारों की तो बात ही क्या, सच्चे साधु तो लाखों में भी मिलना दुर्लभ है। नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। हैं तो सही, परन्तु इस बाजार के बीच कैसे-कहाँ ढूँढ़ें? यथार्थ सच्चे साधु को दृढ़ता धारण करके उनके गुणों-लक्षणों के पारखी बनकर ढूँढ़ो । नकली वस्तु के बीच से असली वस्तु प्राप्त करनी है। माया ने साधु भेष की ऐसी वृद्धि तथा रचना की है कि जिसका पार ही नहीं है! माया के फन्द में फँसकर साधु भेष की बड़ी विकट रचना हुई है। ऊपरी-बाहरी उत्तमाई ने संसार को खा लिया है। संसार के झूठे साधुओं का रंग-ढंग देखकर गृहस्थी भाई पीछे हट गए हैं क्योंकि झूठे साधु सच्चे साधु के नाम पर धोखा दे रहे हैं। साधुओं को देखते ही गृहस्थी भाई दूर से ही प्रणाम कर कहते हैं, "साधु तो आज-कल ऐसे ही होते हैं!" साधुओं के चरित्र को देखकर

दुनिया माया में ही मकड़ी की तरह अर्थात् अपने गुथे हुए जाल में उलझकर आवागमन के चक्कर में पड़ रही है। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि जन्म-मरणरूपी फेरा छुड़ानेवाले साधु ही यदि रास्ता छोड़कर चलते हों, तो साध की संगत करने से अच्छा तो आवागमन में पड़ना ही गृहस्थी जन स्वीकार कर लेते हैं। अतः वे साधु की खोज छोड़कर हृदय में मायावी गुणों को भरकर कामान्ध, क्रोधान्ध तथा लोभान्ध अर्थात् त्रिनेत्रों से अंधे बनकर विषयजन्य सुख के भोग में लगे हुए हैं।

आप न ओलखे दुनिया पोते,
सूझे नहीं भोम गत।
ए फेर भोम अंधेर तणो,
तेणे रदे न आवे मत ॥ ७ ॥

भावार्थ :- उपर्युक्त साधुओं के धोखे में पड़कर दुनिया ने अपने आत्मा की पहचान, संजमपुरी की ओर जानेवाले सरल मार्ग की भयानकता की पहचान और इस पिण्ड-ब्रह्माण्डरूपी भूमि की क्षणभंगुरता तथा क्षणिक अवधि में प्राप्त होनेवाला भासरूपी विषयजन्य सुख उन्हें भूलाकर कहाँ घसीट रहा है ? इस बात के बोध को अर्थात् अन्त लक्ष्य की पहचान को

ही खो दिया है। इस अज्ञानता के फलस्वरूप मानव नर-पशु बन गया है। कोई भी अपना अकल्याण तो नहीं चाहता, किंतु इस भोम-संसार की गत ही ऐसी है अर्थात् गुण ही ऐसा है कि न चाहते हुए भी जीव बलात् कर्म में प्रवेश कर जाता है। बाहरी विषयों का एवम् भीतरी इन्द्रियों का खिंचाव ही ऐसा है कि ये जीव को हठात् निषेध कर्मों में प्रविष्ट करा देते हैं। तब चाहे साधु हो या संत, ज्ञानी हो या त्यागी, अन्दर और बाहर-दोनों ओर की वृत्तियों के संयोग के समय जब तक दो से तीन नहीं हो जाते, तब तक बुद्धि अन्तःकरणों को सँभाल नहीं सकती। मन हठात् प्रबोध कर आगे बढ़ाता है। मन तरह-तरह के दृष्टान्त देकर कहता है कि 'पूर्ण पराशर ऋषि को देख! क्या जनक विदेही नहीं थे? श्री कृष्णजी के प्रति ही विचार कर!! इसमें क्या है? चल आगे बढ़!!!' पुरुष का मन ऐसा कहता है तो स्त्री का मन भी द्रौपदी आदि स्त्रियों का दृष्टान्त देने से पीछे नहीं हटता। मन का ऐसा प्रबोध मिलते ही दोनों उस समय एक तो बन जाते हैं। पुनः बाद में साधु के साधु और सती की सती बनते हैं । परन्तु इन दोनों में अब साधुत्व और सतीत्व की शक्ति रही ही कहाँ?

अतः यह सारा दुष्कर्म पिण्ड और ब्रह्माण्ड में व्यापक अज्ञानजन्य अंधकार का प्रतिफल है। मानव तो ऐसा नहीं चाहते।

देखादेखी पंथ करे,
अने चालतां सहू कोय जाय।
जाणी साधन करे संजमपुरीनां,
मनमां चिंता न थाय ॥ ८ ॥

भावार्थ :- इस संसार में लोगों के चलन-व्यवहार के प्रति विचार किया जाय, तो पता चलता है कि सभी मार्ग तो वही चलते हैं, गुण-लक्षण भी एक ही दिखाई देता है। सब यही सोचते हैं कि 'वह ऐसा करता है, तो मैं क्यों न करूँ? वह झूठे व्यवहार से धन कमाता है, तो मैं क्यों न करूँ? सत्य से जीवन नहीं चलेगा, पेट नहीं भरेगा, धन नहीं आएगा!' इस प्रकार क्या साधु, क्या गृहस्थी? सारी सृष्टि ही अज्ञानजन्य बुद्धि के सहारे एक ही मार्ग पर चल रही है। मात्र भेष ही न्यारा-न्यारा है। वेद, पुराण, शास्त्रों का ज्ञान रखनेवाले विद्वान साधु-सन्त भी अज्ञानी दुनिया की तरह मायावी गुणों - लक्षणों को साधन बनाकर संजमपुरी के घाट उतर रहे हैं। परन्तु 'मात्र पेट के लिए हम जानते-

जानते, समझते-समझते भी वेदों, शास्त्रों द्वारा निषिद्ध मार्ग पर चल रहे हैं! आगे क्या होगा?' इस विषय की चिन्ता न गृहस्थियों में हैं और न साधुओं में ही!!

सूंने रदे दीसे सहु कोय,
सुध बुध नहीं विचार।
देखी कही रे दोष जमदूतना,
ए कोहेडा तणां अंधार ॥ ९ ॥

भावार्थ :- आज की दुनिया के लोगों का अन्तःकरण शून्य दिखाई देता है। दिल में जब सतगुण और रजोगुण गौण हो तथा तमोगुण प्रधान हो, तो दिल शून्य कहलाता है। पुनः तमोगुण अंधकार है। जिस प्रकार अंधकार छा जाने पर कुछ दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार तमोगुण की प्रधानता से विचार-विवेक, ज्ञान तथा बुद्धिहीन दिल शून्य हो जाता है। तब 'मैं क्या करने जा रहा हूँ ?' इस बात की न सुधि रहती है और 'यह कार्य करने से आगे प्रतिफल क्या होगा?' इस विषय में न बुद्धि ही काम कर पाती है। आन्तरिक विचार-विवेक द्वारा वस्तु को तौलने की शक्ति मारी जाती है। अतः हे सज्जनों! शास्त्रों - पुराणों में आपने देखा है कि

वहाँ क्या करने की विधि है और किन कर्मों को निषेध कहा गया है ! पुनः श्रोताओं ने भी वक्ता द्वारा चर्चा-कथा में सुने होंगे कि निषेध कर्म करने पर जमपुरी का दुःख मिलेगा और विधि-विधान के अनुसार कर्म करने पर स्वर्ग-वैकुण्ठ का सुख मिलेगा। इस प्रकार श्रोता और वक्ता दोनों पक्षों के लोग अशुभ कर्मों के फलस्वरूप ८४ में यमदूत द्वारा दिए जानेवाले दोष-दुःखों को जानते हैं, परन्तु नीच में नीच कर्म कर रहे हैं। एक हिंसक चमार से भी यदि पूछें कि उसे नर्क जाना है? तो वह यही कहेगा कि 'नहीं! स्वर्ग जाना है। इसीलिए तो मैं तौल में नीति से कर्म का पालन करता हूँ।' उसी प्रकार हम भी नीच में नीच कर्म करते हैं और तब भी आशा तो सुख की ही करते हैं। वास्तव में तो यह नीच कर्म जीव के न चाहते हुए भी कोहेडारूपी माया अर्थात् तमोगुण प्रधान मन करा रहा है। अतः इन नीच कर्मों की गति को जहाँ तक न समझें, वहाँ तक कैसे छोड़ सके!

कोई कोने पूछे नहीं,
छे कोई बीजो सेर।
साध पुकारे पाधरा,
पण आ अजाण्यो अंधेर॥१०॥

भावार्थ :- आज की दुनिया में कोई अज्ञानी नहीं है। सभी अपने को सेरभर ज्ञानी और दूसरे को तोलाभर ही समझते हैं। ऐसे अभिमान के आगे क्या कोई अपने से छोटे से पूछेगा कि 'इस संसार सागर के ८४ के दुःखों से बचने का कोई दूसरा सेर-मार्ग है, जिससे आवागमन छूट सके और अखण्ड में पहुँचा जा सके तथा प्रलय का भय मिट सके?' नहीं पूछेगा! क्योंकि जो खुद अपने को सेरभर समझ रहा है, वह अभिमान छोड़कर तोलाभर ज्ञानवाले को कैसे पूछ सकेगा? पूछे तो बड़ी लज्जा की बात हो जायेगी! साधु-सन्त प्रकट पुकार रहे हैं कि अभिमान, अहंकार, मान, प्रतिष्ठा बुरे हैं। लोभ, लज्जा को त्यागकर रत्न को प्राप्त करो। सच्चे साधु की संगत करो, तभी रत्न प्राप्त कर सकोगे। परन्तु रत्न प्राप्त करने के मौके पर अन्धकार सदृश मायावी गुणरूपी अग्नि यदि भभक उठे, तो वह अग्नि कैसे-कैसे ज्ञानियों को भी अज्ञानी बनाकर नीच कर्म करा डालती है। वास्तव में यह सारी करतूत मायावी मन की है। वह मौके पर प्रबोध करने लगता है और गुण, अंग, इन्द्रियों को फुसलाकर उन्हें अशुभ कर्मों में प्रविष्ट कराकर ठग लेता है।

कोट उपाय करे जो कोई,
तोहे सूझे नहीं सनंध।
कोहेडा तणी आंकडी न लाधे,
तो छूटे नहीं बंध ॥११॥

भावार्थ :- अतः इस माया से बचने का, माया के बीच से मार्ग तय कर ब्रह्मधाम जाने का करोड़ों उपाय करें, तब भी किस प्रकार क्या करने पर माया से छूटा जाय, मार्ग प्राप्त कर अखण्ड सुख में पहुँचा जाय, यह प्रकार नहीं सूझता! पुनः इस कोहेडारूपी ब्रह्माण्ड की सजावट-बनावट भी नहीं समझ में आती कि 'यह ब्रह्माण्ड किस प्रकार का है? किससे रचा गया है? पिण्ड भी उसी प्रकार का है, तो अन्दर चेतन कैसे गुथा गया है?' अतः यह न जानने पर यह कोहेडा ही सच्चा बना है। पुनः जिसे सच्चा ठहराया गया है, उसे कैसे छोड़ा जा सके? यसर्थ इस कर्मरूपी बंधन से छूट नहीं पाते!

एणे समे आप झलावीने,
अने साध थया मांहे संत।
संगत कीजे तेह तणी,
जेणे चोकस कीधुं छे चित ॥१२॥

भावार्थ :- इस वक्त काम, क्रोध, लोभ, तृष्णादि में अपनी आत्मा को पकड़ाकर-लगाकर भेष मात्र धारण किए हुए साधु और संत कहलानेवाले का तो बाजार लगा हुआ है। ऐसे बाजार में से रत्नरूपी सच्चे साधु को प्राप्त कर सच्चे साधु की संगत करो अर्थात् ऐसे साधु की संगत करो, जो *'एके सों एक चित्त'* रहता हो अथवा जिसने प्रेमस्वरूप परमात्मा को एक चित्त में निश्चय - दृढ़तापूर्वक धारण कर लिया हो!

सत जोऊं संतो तणुं,
अने साध तणी सिध्याई।
बाहेर चेहेन करे के साधना,
मांहे ते भांड भवाई ॥१३॥

भावार्थ :- अब मुझे संत कहलानेवाले संतों के अन्दर की सत्यता अर्थात् सत-परमात्मा के प्रति उनके दृढ़ाव और साधुत्व-सिद्धत्व को देखना है कि कितने साधनशील साधु सिद्धि प्राप्त कर थिर हुए हैं? परन्तु देखता हूँ कि आज-कल के साधु तो बाहरी चेहेन-रंग-ढंग बनाकर उत्तमाई छाँटते हैं और साधना का ढोंग रचते हैं। इनका भेष धारण कर साधन विषयक आडम्बर रचना, तो 'भांड भवाई' सदृश दिखाई

देता है। जिस प्रकार एक नटी अंग-प्रदर्शन कर नाचते हुए दर्शकों को प्रसन्न करती है और उनसे धन, मान और शाबाशी प्राप्त कर उस नाच की कमाई से ही गुज़र-बसर करती है, उसी प्रकार आज के साधु-संत भी अन्दर से तो माया से भरे हुए हैं, परन्तु बाहरी उत्तमाई दिखाकर वेश-भूषा द्वारा मान और धन प्राप्त कर जीवन गुजारते हैं।

चोकस चित केणी पेरे लाधे,
बाहेर देखाडे अनंत।
ते माटे आ कोहेडो अंधेर,
मारे जाइने संगत संत॥१४॥

भावार्थ :- ऐसे 'भांड भवाई' सदृश नाटक रचनेवाले साधु-सन्तों के बीच से चौकस-चित्तवाले सच्चे साधु को कैसे प्राप्त किया जाय? अत्यन्त कठिन है क्योंकि अमूल्य वस्तु प्राप्त करने में कठिनाई भी उतनी ही होती है और अमूल्य वस्तु-वालाजी तो चौकस चित्तवाले साधु के पास ही मिलेंगे। बाहरी रंग-ढंग रचनेवाले, दिखने में साधु दिखाई देनेवाले आडम्बरियों का तो पार ही नहीं है, वे तो अनन्त मिलेंगे, परन्तु अन्दर से वे एक चित्त रखनेवाले

हैं या अनन्त चित्त रखनेवाले? कौन जाने? राजहंस की तरह मोती चुनते हैं या सड़ी मछली? जिस प्रकार ऊपरी भेष को देखकर दुनिया भूल-चूक कर गलत साधु की संगत कर बैठती है और सच्चे साधु को प्राप्त नहीं कर पाती, उसी प्रकार अन्तःकरण में तमोगुणरूपी अंधेरे के छा जाने पर वही अंधेरा परमात्मा की दर्शन-प्राप्ति में पर्दा रूप बन जाता है। इसी कारण माया को 'अंधेर कोहेडा' कहा है। अतः ऐसे साधु-सन्तों की भांड-भवाई द्वारा सच्चे साधु-सन्तों की संगत मारी गई है। सच्चे साधु को भी लोग झूठे की तरह ही समझ बैठते हैं। सच्चे-झूठे की पहचान नहीं कर पाते।

साध सनंध केम जाणिए,
जेणे जीती छे जोगवाई।
प्रगट चेहेन करे नहीं पाधरा,
ते मांहे रहे समाई ॥१५॥

भावार्थ :- ऐसे 'भांड भवाई' करनेवाले साधु-सन्तों के बाजार में सच्चे साधु की पहचान करने की रीत-प्रकार क्या है, यह कैसे जाना जाय? अतः सच्चा साधु वह होगा, जिसने शरीर सम्बन्धी जोगवाई-सामग्रियों अर्थात् चारों अन्तःकरण, दस इन्द्रियाँ, प्राण आदि को अपने

वश में कर लिया हो, जो षट्राग, तीन गुणों से विचलित न होता हो, जो मन को अपने वश में चलाता हो, जो अन्य साधुओं की तरह बाहरी उत्तमाई से रहित हो, ऐसे साधु के हृदय में वह परमात्मा समाया होगा। अतः जिनके हृदय में 'प्रेमरूपी परमात्मा' रमते हों, उन्हें बाहरी उत्तमाई दिखाने का समय ही कहाँ होगा? वह तो *'एके सों एक चित्त'* ब्रह्मानन्द में मस्त रहेगा। उसे दुनियादारी का रंग-ढंग रचने की फुरसत कहाँ रहेगी?

मुखथी बोलावी ज्यारे जोइए,
तो गलित चित विस्वास।
फेर नहीं अंधेरतणो,
तेनां रदे मांहे प्रकास ॥ १६ ॥

भावार्थ :- ऐसे साधुओं को यदि मुख से बुलवाकर उनके शब्दों को विचारपूर्वक देखा जाय, तो अनुभव होगा कि शब्द-शब्द में परमात्मा के प्रति पूर्ण विश्वास होने के कारण वह गद्गद होकर बोलेगा, "जानता हूँ, करता हूँ, समझता हूँ।" वह अपने वचनों में 'मैं पन' का लेशमात्र भी आने नहीं देगा। "मैं क्या जान सकूँ? मुझसे भजन क्या होगा? मैं कैसे समझ सकता हूँ? वह परमात्मा तो सर्व-शक्तिमान् हैं।

उसका तथ्य वही जान सकता है।" ऐसे बोलेगा। अंधेर का फेर-आवागमन में पटकनेवाले मायावी लक्षणों का तो लेश मात्र भी उसमें नहीं दिखेगा। ऐसे साधु में बाहरी प्रकाश नहीं होगा। बाहर देखने पर तो शायद उसे साधु कहने में भी शर्म आयेगी, परंतु उसके हृदय में, जहाँ वालाजी विराजमान हैं, वहाँ ज्ञान और प्रेम का प्रकाश होगा। परमात्मा के ब्रह्मानन्द में वह सदैव निमग्न रहेगा। उसके आगे यदि हीरा और पत्थर रखकर उससे पूछें कि "दोनों में से हीरा कौन-सा है ?" तो वह या तो दोनों को हीरा कहेगा या दोनों को ही पत्थर कहेगा क्योंकि वह हीरा और पत्थर के भेद-भावस्रूपी चक्कर में नहीं है। वह देखनेभर मात्र गन्दे तन में है, वह भी हमारी दृष्टि में! वास्तव में तो वह एक में समा चुका है।

साध तणी गत दीसे निरमल,
रात दिवस ए रंग।
मोहजल लेहेरां मांहे मारे पछाडे,
पण केमे न थाय भंग ॥१७॥

भावार्थ :- ऐसे सच्चे साधु की गत-उसका रहन-सहन, उसका हाल उसके निर्मल हृदय द्वारा प्रकट - प्रत्यक्ष देखने में आएगा। ऐसे सच्चे

साधु को उसके साधुत्व से विचलित करने हेतु लोग उन्हें कइयों कसाला-दुःख कष्ट पहुँचायेंगे, दुष्ट लोग उनकी मौत कर देने पर तुल जायेंगे, परन्तु उनके अन्दर-अन्तःकरण की निर्मलता का प्रकाश देखकर थक जायेंगे-हार जायेंगे। परमात्मा के प्रति उनके स्वच्छ और दृढ़ ज्ञानरूपी प्रकाश के आगे कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। उदाहरणार्थ चैतन्य के जमाने के हरिदास को देखो! मुसलमानों ने श्री कृष्ण छुड़वाकर उनके मुख से "खुदा-अल्लाह" कहलवाने के लिए कितना उपद्रव मचाया था, परन्तु छुड़ा नहीं सके। कैसा दृढ़ाव था उनमें!! मीरा को विष पिलाया गया। परन्तु उन्हें मौत नहीं आई, जोश आ गया। उनके दृढ़ाव ने विष को अमृत बना दिया। अतः चैतन्य महाप्रभु, हरिदास, मीरा, जड़भरत, भर्तहरि जैसा दृढ़ाव रखनेवाले भक्त तो रात-दिन एक ही रंग में रंगे रहेंगे। प्रेम के जोश में ही छके रहेंगे। उनके दिल में दो रंग कभी नहीं उत्पन्न होगा। पुनः उपरोक्त कष्टों के साथ-साथ उन्हें प्रारब्ध कर्मरूपी मोहजल की लहरें भी शारीरिक कष्ट, त्रिताप आदि द्वारा भी पछाड़ती रहेगी, शारीरिक कष्ट भी उन्हें बराबर होता रहेगा, परन्तु इन मोहजल

के दुःखों से वे विचलित नहीं हो पायेंगे। अपने कर्मों का फल समझकर वे सब कुछ सहन करते जायेंगे और परमात्मा से प्रार्थना करते रहेंगे कि, "धन्य हैं परमात्मा आप! मेरे संपूर्ण कर्मों का फल यहीं भोगाकर पूरा करा देना, ताकि फिर तन धारण कर भोगना न पड़े। जितना कष्ट देना हो, दीजिए! मैं तैयार हूँ!!" अथाह दुःख सिर पर आने पर भी उनके हृदय के प्रकाश में,उनके दृढ़ाव में, उनके विश्वास में, उनके प्रेम में न्यूनता कभी नहीं आएगी। बल्कि उनके उक्त साधन और उग्र बन जायेंगे। उनका दृढ़ाव और प्रेम बढ़ता ही जायेगा। हिम्मत तीव्र होती जायेगी क्योंकि वे जानते हैं कि उनके प्रारब्ध का अन्त आ रहा है। परन्तु हममें तो थोड़ा कुछ भी दृढ़ाव, प्रेम अथवा विश्वास आता है, वह अभिमान के कारण धूल बनकर उड़ जाता है। न हम पूर्व के संचित कर्म ही देख पाते हैं और न प्रारब्ध कर्म के लक्षण ही समझ पाते हैं ।

साध तणी सनंध प्रगट,
लेहेरां लागे आकार।
भेदे नहीं ते भीतर रंग ने,
ए साध तणां प्रकार॥१८॥

भावार्थ :- सच्चे साधु की गत प्रत्यक्ष में तो हमारे जैसे ही है। वह भी हमारी ही तरह दुःख-सुख का भागी होगा। पाँच तत्त्व के शरीर में जब तक वह रहेगा, तब तक त्रिताप की पीड़ा से वह भी हमारी ही तरह दुःखी होगा। प्रारब्ध कर्मों के फल को अपने ही कर्म का फल जानकर संतोषपूर्वक भोगेगा। परन्तु ये मायावी लहर, दुःख-सुख उसके अंतःकरण के अन्दर निहित परमात्मा के प्रति के प्रेम, श्रद्धा, दृढ़ाव, निश्चयता को थोड़ा-सा भी विचलित नहीं कर सकेंगे। वह हमारी तरह 'सुख में परमात्मा को मानना, दुःख पड़े तो न मानना। अश्रद्धा करना। गाली-गलौज करना' ऐसा व्यवहार नहीं करेगा। अन्तिम श्वास तक उस साधु के अन्दर परमात्मा के प्रति दृढ़ता एकरस कायम रहेगी। ऐसा दृढ़ाव, ऐसी निश्चयता एक प्रकार से रहना ही सच्चे साधु के साधुत्व का प्रकार है।

आ तिमर घोर अंधेर मांहे,
वेष धरे बहु जन।
एणे सहु ने सत भास्यो,
ए साधने थयो सुपन ॥१९॥

भावार्थ :- इस संसार को तिमिर घोर अंधकार कहा है क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति अहंकार से है। अहंकार का वर्ण धूम्र होता है। यह तिमिर अंधकारस्रूप है। फिर अहंकार का साथी मन है। मन मायावी है। इसकी उत्पत्ति माया से है। माया का स्वरूप अज्ञान है। अज्ञान और अंधकार-दोनों एक हैं। उसमें भी मनरूप अहंकार का संयोग तमोगुण से हुआ है। तमोगुण घोर अनिष्टकारी और अधोपतन का कारणरूप होने के कारण अथाह है। यसर्थ तिमिर-अहंकार, घोर-तमोगुण और अंधार-मन अर्थात् मनरूप तमोगुण अहंकार द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति होती है। अतः उक्त तीनों ही अनिष्ट होने के कारण ही सारी दुनिया अधोपतन की ओर बढ़ रही है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड - दोनों की ही उत्पत्ति इस प्रकार है। ऐसी सृष्टि के बीच बहुजन-चार वर्ण, दो जाति - हिन्दू और मुसलिम, दोनों लिंग -स्त्री और पुरुष, दो मार्ग - गृहस्थ और साधु में नाना प्रकार के भेषवाले सभी जनों को पंचजन्य विषयों के संभोग से प्राप्त होनेवाला सुख ही सत्य भास रहा है। अतः वे छोड़ नहीं पा रहे हैं। परन्तु जो सच्चे साध हैं, उन्हें उपरोक्त सुख स्वप्नवत् लगेगा जैसे -

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।
-(गीता, अ. २/श्लो.६९)।

तो वैकुंठ नथी कांई वेगलुं,
जो द्रढाविए मन।
सत चरण भास्यो रदे मांहे,
त्यारे असत थयुं सुपन।।२०।।

भावार्थ :- जिन साध पुरुष ने ऐसे पञ्चजन्य सुख को स्वप्नवत् समझकर अन्तःकरण में परमात्मा विषय को दृढ़ कर लिया है, उसके लिए तो वैकुण्ठ दूर नहीं है, अलग नहीं है। समझ के सच्चे दृढ़ाव में दूरी नहीं रहती। मोक्ष और बन्धन - दोनों ही मन के दृढ़ाव पर निर्भर होते हैं। जिसने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया हो कि 'मुझे तन छोड़ते ही वैकुण्ठ जाना है' और उसके अन्तःकरण में यदि सत-परमात्मा के चरण का प्रकाश है अर्थात् हृदय में परमात्मा विराजमान हैं, तब असत्-सांसारिक पिण्ड-ब्रह्माण्ड का पंचजन्य सुख उसकी दृष्टि में स्वप्नवत् हो जायेगा।

अखंड सुख कोई रखे मूकतां,
जेणे द्रढ कीधुं छे घर।

अधखिणना सुपनातर माटे,
रखे निगमतां ए अवसर ॥२१॥

भावार्थ :- ऐसे सच्चे साधु की संगत प्राप्त करके ऐसा अखण्ड सुख प्राप्त करने का यह जीवन तुम्हें मिला है। यह सुख का दरवाजा अभी खुला है। इसी तन द्वारा प्राप्त कर सकते हो। यसर्थ हे साधु-सज्जनों! अखण्ड सुख मत छोड़ो। लाखों वर्षों का दुःख मत खरीदो। जिसे जमदूत की मार के दुःख से बचना हो, वह उस साधु को ढूँढ़कर उससे संगत करे, जिसने इसी तन द्वारा परलोक दृढ़ कर लिया है। वह तुम्हें भी तुम्हारा घर दृढ़ करा देगा। यह अवसर ऐसा अमूल्य है। पुनः क्या साधु-सन्तों की वाणी अथवा शास्त्रों में तुम्हारा जीवन लाखों वर्षों का बताया है? अर्ध क्षण के जीवन में स्वप्न के सुख में भूलकर लाखों के जीवन के सुख के बदले जागृत का दुःख क्यों ले रहे हो? आधे क्षण के स्वप्न के सुख के लिए बुद्धि कहाँ तक सोचती है! क्षणिक सुख के बदले अनन्त सुख प्राप्त करने के अवसर को गँवाकर दुःख क्यों लेते हो? तुम्हारी मूर्खता देखकर मैं चकित हूँ। अतः हाथ जोड़कर कहता हूँ, "उठो! सचेत हो जाओ!! ऐसा अमूल्य अवसर मत गँवाओ!!!"

सास्त्रे संसार कह्युं सुपना,
तो ते करी बेठां सहु सत।
साध वाणी रे जोतां नथी,
तो लेई जाय छे असत ॥२२॥

भावार्थ :- सभी आप्तपुरुषों ने शास्त्रों में संसार को स्वप्न कहा है। तुम्हारा यह तन, यह सुख सब स्वप्न का है। परलोक का संसार, वहाँ का जीवन, वहाँ का सुख सब जागृत का सच्चा है। ऐसा मैं नहीं, शास्त्र पुकार कर कह रहा है। शास्त्रों द्वारा स्वप्न कहे संसार को तुम सत मान बैठे हो? अब परलोक विषय की चिन्ता ही कहाँ रही? साधु की वाणी को तो देखते नहीं हो! क्या शुक, व्यास आदि शास्त्रकारों ने भी इस संसार को तुम्हारी तरह ही सत्य कहा है? यदि ऐसा ही है, तो तुम जो कर रहे हो, करो! परन्तु थोड़े दिनों बाद मरकर चले मत जाना, कमाया हुआ छोड़कर मत जाना!! अतः सभी साधु, सन्तों, ऋषि-महर्षियों ने इस झूठ से बचाने हेतु पुकार की है। परन्तु अभी के पंचजन्य स्वाद के आगे उनकी पुकार सुने कौन? तभी तो असत्य-भूलन हम सभी जीवों को विषयजन्य क्षणिक सुख की ओर खींचकर ले जा रहा है और चौरासी के भयावह दुःख में डाल रहा है।

एणे कोहेडो ते अवला फेरा,
सहु फरे छे एणी भांत।
सुध बुध सर्वे विसरी,
ए रच्यो माया द्रष्टांत ॥२३॥

भावार्थ :- यह शरीर अर्थात् पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों उलझानेवाले अर्थात् कोहेडा रूप है। आत्मा-परमात्मा के बीच का अंधकाररूपी बादल यही है। यसर्थ इसे कोहेडा रूप कहा है। जिस प्रकार अंधकार में मात्र एक कालापन ही दिखाई देता है और वास्तविक वस्तु छिप जाती है, उसी प्रकार इस शरीर में आते ही अपना सच्चा स्वरूप-परात्मा और परमात्मा-दोनों छिप जाते हैं। मात्र झूठा शरीर और संसार ही देखने में आता है। पुनः इस पिण्ड और ब्रह्माण्ड-दोनों की उत्पत्ति उलटी है। यसर्थ पिण्ड का खिंचाव सदा अधःपतन की ओर ले जाता है। यदि इसका खिंचाव अवला नहीं सवला अर्थात् ब्रह्म की ओर होता, तो उलटा चक्कर मिट जाता। परन्तु सृष्टि के प्राणी मात्र शरीर की इन्द्रियों द्वारा विषय की ओर जाकर परमात्मा के स्वरूप को भूलकर जन्म-मरणरूपी फेरे में फिर रहे हैं। फिरानेवाला यह शरीर है। इसकी गति ही ऐसी न्यारी है। इसने अपने स्वरूप की सुध, पुनः

'मुझे किसने उत्पन्न किया?' अर्थात् अपने को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा के विषय में सोचने की बुद्धि ही गँवा दी और सब कुछ भूलकर विषयों की धुन में रम गया। इस संसार के बीच माया, जीव, ईश्वर और ब्रह्म - ये चार ऐश्वर्य हैं। इन्हें सृष्टिकर्ता ने चार विभूतियुक्त ब्रह्म, ब्रह्मात्मा, ब्रह्मधाम और ब्रह्मशक्तिरूपी सिद्धान्त का बोध कराने के लिए दृष्टांत के रूप में रचा है। इह लोक के उक्त चारों ऐश्वर्य परलोक की चारों विभूतियों का बोध कराते हैं। जैसे हमारे लिए यह संसार विदेश है और स्वधाम स्वदेश है। एक संसार यह है, तो दूसरा संसार परलोक है। संसार दुःखमय है, स्वधाम सुखमय है। संसार अनित्य है, परलोक अखण्ड-नित्य है। अतः विदेश और स्वदेश, संसार और परलोक, दुःख और सुख तथा नित्य और अनित्य का बोध कराने हेतु ही उक्त चार ऐश्वर्यों को दृष्टान्त रूप में रचा गया है।

आ रे वेला एवी नहीं आवे,
साध ना सके पुकारी।
वचन ते अवला विचारसे,
केहेसे निंद्या करे छे अमारी ॥ २४ ॥

भावार्थ :- अहो साधु-सन्तों! उक्त दृष्टान्त द्वारा सिद्धान्तरूपी सत्यता को प्राप्त करने का ऐसा अमूल्य अवसर फिर नहीं मिलेगा। अतः साधन की इस सामग्री द्वारा हे साधकों! साध्य वस्तु की प्राप्ति करो। अभी तो विचार-विवेकयुक्त मानव तन प्राप्त है। साधु-सन्त तथा आप्तपुरुषों द्वारा शास्त्रों में लिखे वचनों को सुनकर उस पर विचार कर अपना कल्याण कर सकते हो। यह तन छोड़ने के बाद पशु योनि में जाकर साधु-सन्तों की संगत प्राप्त नहीं कर सकोगे और न पुकार ही सुन पाओगे। साधु वहाँ पशु योनि में पुकारने नहीं आएँगे। यदि मैं अभी तुम्हें तुम्हारा चलन-व्यवहार, कर्म-कर्तव्य, मद की मस्ताई प्रत्यक्ष दिखा दूँ, तो मेरे वचन तुम्हें उलटे और कठिन लगेंगे। 'महात्मा हमारी निंदा करते हैं' - ऐसा कहोगे, परंतु सत्य वचन समझने में कठिनाई लगेगी । किन्तु स्वयं अपने चलन को तो देखो कि क्या कर रहे हो ?

साध हसे ते विचारसे,
सवला रुदे वचन।
ए वाणी प्रकासुं ते माटे,
मारे मलवा ते साधु जन ॥२५॥

भावार्थ :- आज के युग में सत्य वस्तु किसी से सहन नहीं होती। लोग मेरी बातों को समझे बिना यही कहेंगे कि 'ये महात्मा तो हमारी निंदा करते हैं।' परन्तु मैं लोगों के डर से सत्य कहने से पीछे नहीं हटूँगा क्योंकि सृष्टि में सभी नासमझ तो नहीं हैं। हजारों में से एक समझदार तो अवश्य मिलेगा! अतः जो सच्चे साधु होंगे, वे मेरे वचनों को अवश्य समझेंगे। वास्तव में मेरा कहना भी उन्हीं के लिए है क्योंकि वे मेरे सीधे वचनों को सीधा ही समझेंगे। अतः यह सत्य वाणी मैं सच्चे साधकों के लिए ही प्रकाशित कर रहा हूँ क्योंकि मुझे हजारों में एक उस सच्चे साधु से मिलना है। पुनः सत्य की पहचान तो सत्य ही कर सकेगा। जिस प्रकार भेड़ अपने मालिक की आवाज पहचानकर अपने मालिक के पास लौट आता है, उसी प्रकार जो मेरे सम्बन्धी सच्चे साधक होंगे, वे मेरी वाणी सुनते ही उसे पहचानकर, अपना समझकर मेरे पास अवश्य दौड़ आएँगे।

प्रगट प्रकास न कीजे,
आपण देखी बाज।
गोप रही ना सकुं ते माटे,
सनमंधी मलवा साध ॥ २६ ॥

भावार्थ :- सही वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से जाहिर नहीं किया जा सकता । झूठे संसार के आगे यदि सत्य वचन जाहिर करने लगें, तो अपने को ही पछताना पड़ता है क्योंकि झूठे नाटक के बीच झूठ का बहुमत होने के कारण सत्य का तिरस्कार ही होता है। सत्य भी झूठ साबित हो जाता है। यह मध्य कलियुग है। अतः झूठे खेल में झूठी ही रुचि होती है। विषयी को विषय ही प्रिय लगता है। चोर-दुष्ट को साधु अथवा दानी कहे, तो बड़ा रुचिकर लगता है। किंतु वह जैसा है, वैसा कह दें, तो मारे जायेंगे। हमें तो ज्ञात है कि ये सब कोई तमाशा कर रहे हैं, परन्तु तमाशा करनेवाले को तमाशा करनेवाला कह दें, तो वह रूठ जायेगा। अपितु ये सब नाटक करके जिस ओर जा रहे हैं, उसका फल भी मैं जानता हूँ और इन्हें उसमें रुचि नहीं है, यह भी मैं जानता हूँ। परन्तु आगे खड्ढा है और ये उसमें गिर जायेंगे, यह जानकर मैं अपना धर्म समझकर उन्हें अवश्य सचेत करूँगा कि, 'आगे खड्ढा है, गिर जाओगे!' मेरे चिल्लाने पर भले ये रूठ जायें, परन्तु मैं अपने धर्म पर स्थिर रहूँगा। इनका चलन देखकर मैं चुप नहीं रह सकता। इसीलिए मैं बारम्बार कह रहा हूँ,

जिससे मेरे सम्बन्धी मेरी पुकार सुनकर अवश्य ही मुझसे आकर मिलेंगे। आत्मा साधन से परमात्मा को प्राप्त करनेवाले मेरे सम्बन्धी हैं। चाहे वे जिस रूप से साधन करें, मुझे तो मेरे सम्बन्धी साध से ही मिलना है।

जेणे दरसने नेत्र ठरे,
अने वचन कहे ठरे अंग।
अनेक विघन जो उपजे,
पण मूकिए नहीं साध संग ॥२७॥

भावार्थ :- अब सच्चे साधु को कैसे पहचाना जाय? सच्चे साधु के चिन्ह क्या हैं? अतः जो सच्चे साधु होंगे, दूर से उनके दर्शन करने से ही नेत्र में शीतलता प्रकट होगी। नेत्र बार-बार उनके दर्शन करना चाहेंगे। पुनः ऐसे साधु से वार्तालाप करने अथवा चर्चा-कथा सुनने से अंग-अंग में शीतलता भासने लगेगी। त्रिताप की जलन शांत हो जाएगी। आनन्द उमड़ने लगेगा। यसर्थ यदि ऐसे साधु मिल जायें, तो भले अपने ऊपर अनेकों सांसारिक आपत्ति-विपत्तियाँ आ पड़ें, तब भी उनकी संगत मत छोड़ना। उनकी संगत करने से संसार बिगड़े, तब भी डरना नहीं क्योंकि क्षणिक बिगड़ेगा।

वे साधु तो लाखों वर्षों के परलोक का जीवन सुधार देंगे। यस्थ ऐसे साधु का संग छोड़ना नहीं। उससे संगत करके अपना कल्याण कर ही लेना। यह साधु-संगत की घड़ी दुर्लभ है। संसार तो अनेकों बार भोगते आए हैं, परन्तु साधु-मिलन बार-बार नहीं होता।

साध संतो मली सांभलो,
वली विलम न करो लगार।
अधखिण मेलो संत तणो,
जेथी जीतिए अखंड अपार ॥२८॥

भावार्थ :- अतः हे साधु-सन्तों! आप सब मिलकर इन वचनों को सुनो और सुनकर साधु की संगत करने में जरा-सा भी विलम्ब मत करो। क्योंकि यह कलिकाल का जीवन क्षणभंगुर और धोखा देनेवाला है। इस क्षणिक जीवन का जरा-सा भी भरोसा नहीं है। साधु के साथ आधे क्षण का मिलाप भी इतना अमूल्य है कि उस आधे क्षण की संगत द्वारा अखण्ड-अपार फल की प्राप्ति की जा सकती है। ऐसे साधु अखण्ड के अपार सुखदायी जीवन में पहुँचा देंगे।

अखंड पार सुख अति घणुं,
जेने सबद न लागे कोय।
ए जाणी सुख केम मूकिए,
ए साध संगते सुख होय ।।२९ ।।

भावार्थ :- वैकुण्ठ के अखण्ड सुख से परे बेहद का सुख अत्यंत भारी है, जिस सुख का वर्णन करने में हद के शब्द लगते ही नहीं हैं। यहाँ क्षणिक संसार में बेशुमार दुःख सहन करते हैं, परन्तु बेहद तो अखण्ड का सुख देनेवाला है। यहाँ का क्षणिक सुख अपार दुःख का कारण है। ऐसा जानते हुए भी क्या हमें क्षणिक सुख में भूलकर अपार और अखण्ड सुख को छोड़ देना चाहिए? कदापि नहीं! अखण्ड सुख की प्राप्ति मात्र सच्चे साधु की संगत द्वारा ही संभव है। ऐसा जानकर भी संगत किये बिना अन्धे नहीं बनना चाहिए। ऐसा तो अनजान लोग करते हैं। अतः ऐसे अखण्ड सुख को साधु की संगत द्वारा क्यों न प्राप्त करें?

ए सुख केम प्रकासुं प्रगट,
बेहद सुख केहेवाए।
ए ब्रह्मांड सर्वे रामत,
उपनी छे एनी इछाए ।।३०।।

भावार्थ :- सच्चे साधु की संगत करने से वे साधु जिस अखण्ड (वैकुण्ठ) सुख में पहुँचा देते हैं, उससे भी परे का जो सुख है, जिसे बेहद कहा जाता है, जिसके वर्णन में हद-नश्वर जगत् के शब्द ही नहीं पहुँच पाते, उस सुख को मैं कहाँ तक प्रकाश करूँ? यसर्थ उसे बेहद कहा जाता है। ये हद-क्षर ब्रह्माण्ड की सभी सामग्रियाँ स्वप्नवत् रामतरूप उत्पन्न की गयी हैं। स्वप्न का अर्थात् वैकुण्ठ का सुख तो अखण्ड सुख कहलाता है, तो जिस सृष्टिकर्ता की इच्छा मात्र से ऐसे-ऐसे कइयों ब्रह्माण्ड बनते और मिट जाते हैं, उनके धाम का वास्तविक जागृत का सुख कैसा होगा?

ए रे वल्लभसुं वालपणे,
करी दिए साध संग।
ए रे संगत केम मूकिए,
मारा मूल तणो ए सनमंध ॥ ३१ ॥

भावार्थ :- उक्त सच्चा साधु तुम्हें संसार का स्वप्नवत् पदार्थ नहीं देगा। यदि सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करना हो, तो दूसरे साधु के पास जाना। वे साधु तो वल्लभ श्री कृष्ण परमात्मा-प्यारे धनी से तुम्हारा प्रेम सम्बन्ध जोड़ देंगे क्योंकि प्यारे-प्रेमस्वरूप श्री कृष्ण तो

प्रेम द्वारा ही प्राप्त होंगे। अन्य किसी साधन से नहीं! अतः वे साधु वल्लभ के चरणों से तुम्हारा प्रेम जोड़ देंगे। साधु की संगत द्वारा तुम प्रेम स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर सकोगे। ऐसे पारलौकिक परमात्मा प्राप्त करानेवाले साधु की संगत को कैसे छोड़ दिया जाय? हे मेरे मूल के सम्बन्धी साधु-सज्जनों! सत के ग्राहकों!! इस बात पर विचार करके तो देखो!!!

सारनो सार ते संगत,
जो ते साध मेलो थाए।
बेहद तणी निध लेइने आपे,
मूकिए ते केम पाए ।।३२।।

भावार्थ :- सृष्टि में मानव मात्र के लिए साधनों में सार में सार, श्रेष्ठ में श्रेष्ठ, सामर्थ्यशाली और कल्याणकारी साधन यदि कोई है, तो वह है 'संगत'! परन्तु 'सच्चे की संगत'!! यसर्थ संगत का दूसरा नाम है, 'सत्संग'। सच्चा ही सच्चे को प्राप्त करा सकता है, परन्तु यदि उपरोक्त सच्चे साधु प्राप्त होवें तो, नकली मिले तो नहीं। झूठा कभी सत्य प्राप्त नहीं करा सकेगा। क्या उल्लू कभी सूर्य दिखा सकता है? सच्चे साधु पाँच मिनट के संग

द्वारा बेहद के परमात्मारूपी निध की प्राप्ति करा सकते हैं। पुनः अपने ज्ञान द्वारा ऐसा दृढ़ बना देंगे कि फिर छुड़ाने पर भी नहीं छुट सकेगा। जैसे - मीरा, चैतन्य, बुद्धदेव आदि भक्तों को हाल आया था। अतः ऐसा अमूल्य धन प्राप्त कराकर जन्म-जन्मान्तर के जीवन को सुफल करानेवाले साधु यदि मिल जायें, तो उनके चरण कभी छोड़ना नहीं चाहिए। बल्कि दोनों हाथ से पकड़कर हृदय से लगा लेना चाहिए।

सनमंधी साचो ज्यारे मल्यो,
त्यारे जीवने थयो करार।
मेहेराज कहे धन धन ए घडी,
धन धन कोहेडो अंधार ॥३३॥

भावार्थ :- जब परलोक सम्बन्धी सच्चे साधु की संगत प्राप्त होगी, तब नेहेचल को प्राप्त होने से जीव को भी नेहेचल सुख-शान्ति होगी। जीव स्थिर होकर निडर बन जायेगा। अतः जिसने सच्चे साधु की संगत द्वारा जीव को सुख-शान्ति प्राप्त करायी, श्रीजी स्वरूप कहते हैं कि उस जीव की वह साध-संगत की घड़ी धन्य-धन्य है अर्थात् जिस घड़ी में सच्चे साधु की संगत द्वारा जीव ने सच्चे परमात्मा को प्राप्त किया,

वह घड़ी भी धन्य-धन्य है और उस जीव का कोहेडारूपी पाँच तत्त्व का वह शरीर भी धन्य-धन्य है, जिस शरीर के द्वारा उसने साधु की संगत की तथा जन्म-जन्मान्तर के शरीर को सुफल बनाया।

- (किरंतन, प्र. १२९/चौ. ३३)।

।। आवो अवसर केम भूलिए ।।

❖ राग वेराडी ❖

आवो अवसर केम भूलिए,
कारण एक कोलिया अन।
एटला माटे आप मुझाई,
केटला करो छो के कोट विघन ।।१।।

भावार्थ :- ऐसे अवसर को कैसे-क्यों भूल बैठना चाहिये? यह मानव तन तुम्हें परमात्मा ने क्यों दिया है? मानव तन के अलावा दूसरी योनि क्यों नहीं दी? मानव योनि और अन्य योनि में क्या अन्तर है? देखो! परमात्मा ने तुम्हें यह मानव तन किसी कारणवश ही दिया है। इस तन में तुम्हें विचार-विवेकरूपी आन्तरिक आँखें प्राप्त हैं, जो पशु योनि में नहीं है। इस

तन द्वारा जहाँ चाहो जा सकोगे, जो चाहो प्राप्त कर सकोगे। इस योनि द्वारा अक्षरातीत ब्रह्म तक प्राप्त कर सकोगे और अधः दिशा की ओर गये, तो ८४ लाख योनि भी प्राप्त कर सकोगे। इस तन की कमाई परमात्मा ने तुम्हारे हाथ में दी है। पशुयोनि की बागडोर परमात्मा के हाथ में रहती है। अतः ऐसी विशेषतापूर्ण अवसर को प्राप्त कर क्यों भूलना चाहिए? हे मानवों! जीवन तो सबका एक-सा है। परन्तु कर्म सब अलग-अलग करते हैं। शास्त्रों ने मानव जीवन के लिए विधि और निषेध - ये दो मार्ग बताए हैं। क्षणिक जीवन में नीति की कमाई खानेवाले और निषेध कर्म करके अनीति की कमाई खानेवाले - ये दोनों प्रकार के लोग होते हैं। किन्तु दोनों का आहार तो एक कौल (ग्रास,कौर) अन्न ही है। एक पेट के एक कौल के लिए अनीतिपूर्ण कर्म करके कहाँ की कमाई कर रहे हो? ८४ में पहुँचने की? निषेध मार्ग पर चलकर अनीतिपूर्ण कर्म करके एक पेट के गुजारे के लिए लाखों जन्म का दुःख मत कमाओ! एक पेट के लिए नाना प्रकार के अकृत कर्म करके अपनी आत्मा को कुकृत कर्मरूपी जाली में क्यों उलझा रहे हो? यहाँ के कर्मों के फलस्वरूप ८४ में पड़ोगे। वहाँ एक-एक योनि में कई करोड़ों जन्म-

मरणरूपी विघ्न आएँगे। अतः ऐसे करोड़ों जन्म-मरणरूपी विघ्न का मूल कर्म यहाँ क्यों कर रहे हो? एक पेट के लिए अपनी बुद्धिमत्ता को तो देखो!

प्रगट वचन सुणो उतम मानषो,
तमे वोहोरवा आव्या छो सुख।
पण आंणी भोमे मुझवण घणुं विसमी,
सुखने आडे अनेक छे दुख ॥२॥

भावार्थ :- हे मानवों! आप्तपुरुषों द्वारा वेद-शास्त्रों में कहे वचनों को सुनो, उस पर विचार करो और निर्णय कर देखो कि तुम्हें यह मानव तनरूपी उत्तम योनि क्यों प्राप्त हुई है? इस मानव तन को 'सुरदुर्लभ' क्यों कहा है? क्या पशुओं की तरह इस तन का भी लक्ष्य *'आहार निद्रा भय मैथुनं च'* ही है? यदि ऐसा ही है, तो तुम्हें पशु योनि न देकर मानव योनि देने का क्या मतलब है? हे मानवों! तुम्हारे पास बुद्धि है। बुद्धि द्वारा अन्दर विचार-विवेक करके उक्त तथ्य को समझने की कोशिश करो, जिससे आप्तपुरुषों की समझ से तुम्हारी समझ मिले। एक समय हमारा जीव ब्रह्म के अन्तःकरण (अन्तःपुर) में सुषुप्ति अवस्था में था। उसे

सुषुप्ति अवस्था से जागृत अवस्था में लाने के लिए ब्रह्म ने अपने अन्तःपुर से बाहर फेंक दिया अर्थात् अपने-से स्वरूप में उतार दिया और विचार-विवेक देकर कहा, "मानव तन से मुझे प्राप्त करना।" यसर्थ इस तन को 'सुरदुर्लभ' कहा है। अतः इस तन में तुम उस अखण्ड धाम का ब्रह्मानन्दरूपी सुख खरीदने के लिए आए हो, तो नरक का दुःख क्यों खरीद रहे हो? तुम क्या करने आए थे और क्या कर रहे हो? पुनः इसी शरीररूपी भोम के अन्तर, माहें और बाहेररूप में वेद, कुल और लोक मर्यादा भी है। ये बड़ी कठिन हैं। चाहते हुए भी छोड़ी नहीं जाती। फिर आत्मा सुख के आगे विषय का सुख आड़ा बना हुआ है। अर्थात् आत्म-सुख अहम् में है, तो चित्त, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, पंचविषय एक-दूसरे के ऊपराऊपर होकर आत्म-सुख के बीच पर्दारूप हुए हैं। इस प्रकार आत्मा-ब्रह्म के सुख के आगे अनेक प्रकार के दुःख पर्दारूप होकर आड़े बने हुए हैं।

सुखने रखोपे दुख वीटयां छे,
लेवाए नहीं केने काचे जन।
सूरधीर हसे खरो खोजी,
ते लेसे द्रढ करी मन ॥ ३ ॥

भावार्थ :- अहम् अन्तःकरण में बैठे जीव के सुख की रक्षा करनेवाले रक्षक अर्थात् चार अन्तःकरण, दस इन्द्रियाँ और पंचविषय के रूप में जीव को चारों ओर से दुःख ने घेर रखा है। अतः आत्मीय सुख और पंचविषयी सुख-दोनों वादी-प्रतिवादी रूप में होने के कारण बाह्य सुखों का परित्याग किये बिना अर्थात् बाह्य इन्द्रियों के सुख के प्रति लोलुप (लालची) जीव द्वारा आत्मीय सुख लिया नहीं जा सकता। यह सुख तो वे ही ले सकेंगे, जो त्याग और वैराग्य के मार्ग पर धैर्यतापूर्वक चलनेवाले शूरवीर जीव हों, सत्य वस्तु की जिज्ञासा जिनके सच्चे हृदय में पल-पल उमड़ती हो और जो खोज करने में बुधवन्त अर्थात् बुद्धि से निर्णय करनेवाला हो। अतः जिस जीव ने त्याग-वैराग्य रूपी मार्ग पर अपने मन को दृढ़ कर रखा हो, जिसके मन का संकल्प-विकल्परूपी गुण मिट गया हो और जिसने अपने मन को एक ही ओर स्थिर कर लिया हो, वही जीव विषय के पञ्चजन्य सुख को तिलाञ्जली देकर आत्मा-परमात्मा विषयक वास्तविक सुख ले सकेगा!

एकीगमां सुख वैकुंठ गरजे,

बीजीए दुख गरजे जमपुर।

ए बंने मांहेथी एक लेई वलसो,
रखे भूलतां तमे आ अवसर ॥४॥

भावार्थ :- संसार के मानव मात्र हेतु वेद, पुराण, शास्त्रों के अन्दर से एक ओर शुभ कर्म-विधि कर्म के प्रति गर्जना हो रही है कि यदि शास्त्रों में कहे प्रमाण चलोगे, तो वैकुण्ठ में अखण्ड सुख प्राप्त करोगे। पुनः दूसरी ओर जमपुरी के दुःखों की गर्जना भी हो रही है। इस प्रकार शुभ और अशुभ-दोनों प्रकार के कर्मों के फलस्वरूप वैकुण्ठ और जमपुरी जाने की गर्जना सुनाई दे रही है। इन दोनों में से कितने लोग वैकुण्ठ जाते हैं, तो कितने जमपुरी पहुँच जाते हैं। दोनों में से एक तो है ही! वैकुण्ठ पहुँचने का मार्ग लिया हो, तो वैकुण्ठ ही पहुँचोगे। अन्यथा जमपुरी जाओगे। एक ओर तो अवश्य ही पहुँचोगे। इस प्रकार इस मानव तन द्वारा ही दोनों ओर का रास्ता खुला है, अन्य योनि में नहीं! यसर्थ इस मानव तनरूपी अवसर को भूलकर वैकुण्ठ के अखण्ड सुख को प्राप्त न करके ८४ के दुःखों को मत खरीदो!!

चौदे लोक इछे आ वेला,
जोगवाई तमे पाम्यां छो जेह।

अहेनिस कष्ट करे कै देवता,
तोहे न आवे अवसर एह ।। ५ ।।

भावार्थ :- इस मानव तन के क्षणिक अवधियुक्त समय की वांछना १४ लोकों के जीव भी करते हैं। अरे! नीचे के अथवा अन्य लोकों के जीवों की तो बात ही क्या करना, त्रिदेवा तक मानव तन में जन्म प्राप्त करने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए ललचा रहे हैं। लेकिन क्यों? अतः इस भूमि में जो जोगवाई अर्थात् मानव तनरूपी साधन सामग्री तुम्हें प्राप्त है, उसका महत्त्व अथवा उसकी क़ीमत तो समझनेवाले ही समझ सकते हैं। इस मानव तनरूपी जोगवाई के एक-एक अंग इतने अमूल्य तथा क़ीमती हैं कि यदि कोई तुम्हें कहे कि 'तुम मुझे अपनी आँख निकालकर दे दो, मैं तुम्हें बदले में लाख रुपये दूँगा', तब भी तुम नहीं दोगे! उसी तरह इस तन को यदि चिन्तामणि कहा जाय, तब भी योग्य नहीं होगा क्योंकि चिन्तामणि तो जड़ पदार्थ है और यह तो चेतन है। जड़ कभी भी चेतन की बराबरी नहीं कर सकता है। परन्तु इस साधन-शरीररूपी जोगवाई तथा गुण, अंग, इन्द्रिय आदि को अमूल्य तभी कहा जाएगा, जब ये

आग्रह

तुम स्याने मेरे साथजी, जिन रहो विषे रस लाग ।
पाउं पकड़ कहे इन्द्रावती, उठ खड़े रहो जाग ।।

- (प्रकाश हिं, प्र.१७/चौ.२१) ।

अर्थः- हे मेरे धाम के सुमन सुन्दरसाथजी !

आप सभी तो अत्यंत ही बुद्धिमान्, होशियार एवं समझदार हैं । सुनो, देखो और विचार करो ! पंचविषय के इन्द्रियजन्य स्वाद में ही मत लगे रहो । मैं इन्द्रावती आप सबके चरण पकड़कर कहती हूँ कि अज्ञानरूपी निद्रा में से ज्ञान लेकर जागो ! उठो !! खड़े हो जाओ !!! क्योंकि अब अपने घर जाने का समय हो गया है ।

- भाष्यकार

पुनश्चः-

✤ आत्मीय प्रेमाग्रह ✤

सुख लेने को आए हो, नहीं भेजे सोवन को ।
बिचार देखो हादीय की, बानी ले दिलमों ।।

- (श्री खुलासा, प्र.१६/चौ. ७९)।

हे मेरी प्यारी धामस्थ आत्माओं ! आप लोग निजधाम से इस दुःखरूपी ब्रह्माण्ड में क्यों आए हो ? असत्, जड़, दुःख और सत्, चिद्, आनन्द का तारतम ज्ञान के माध्यम से संतुलनात्मक ज्ञानार्जित कर उस ज्ञान के द्वारा आत्म-जागृति करो क्योंकि आत्म-जागृति का अपूर्व, अवर्णनीय सुखानुभव करने के लिए ही आप सब श्री राजजी से वचनबद्ध होकर आये हो । दिए हुए वचन को याद करो ।

श्री राजजी ने आप लोगों को दिए हुए वचन को बिलकुल भूलकर कुम्भकर्णवत् मायावी नशे में चूर होकर सोवने के अथवा भूलने के लिए खेल में नहीं भेजा है । यदि आप सब धामधनी सम्बन्धी आत्माओं में से हो, तो अपने हादी - सद्गुरु निजानन्द श्री देवचंद्रजी और महामति श्री प्राणनाथजी प्रदत्त उक्त वाणी की चौपाई को कोमल चित्त में धारण करो और निश्चिंत होकर शीघ्रातिशीघ्र निर्णय कर लो कि आप लोग धाम से संसार में क्यों आए हो तथा श्री राजजी ने क्यों भेजा है ? खेल में आकर क्या करना था ? विचार-विवेक करके देखो ! क्या आप सब दिए हुए वचनानुसार चल रहे हो ?

हे आत्माओं !

चरण पकड़ कहे यशवन्ती,
उठो ! खड़े रहो जाग ।

- प्रणाम

साधक-जिज्ञासु जीव बनकर साध्य तत्त्व-परमात्मा प्राप्ति की ओर लगें। उलटे यदि विषय की ओर लगें, तो इस तन की क़ीमत मच्छर जितनी भी नहीं है। व्यर्थ ही है। त्रिदेवा-आदि १४ लोक के अन्य सभी देवी-देवता रात-दिन इस मानव योनि में तन धारण करने हेतु कष्ट कर रहे हैं। ब्रह्माजी को देखो, *'षष्टिवर्ष सहस्त्राणि मया तप्तं तपः पुरा।'* उद्धव की प्रार्थना को देखो!! तब भी वे ये अवसर प्राप्त कर यह तन नहीं पा सके। इस तन की मौलिकता विषय विचार तो करो! तभी तो इसे 'सुरदुर्लभ तन' कहा है। अतः प्रभु दया से सुलभ प्राप्त हुए अपने अहोभाग्य पर अज्ञानतावश पानी क्यों फेर रहे हो? अपनी मूर्खता-जड़ता को तो देखो!

घणी रे दोहेली छे जम जाचना,
तमे मूको रे परा छल छद्रम।
वार वार वारुं छुं तमने,
विस्मी रे जमपुरी विषम ॥ ६ ॥

भावार्थ :- देखो! शास्त्रों की पुकार कभी झूठी नहीं होती। अभी भले शास्त्रों की पुकार, मेरे वचनों पर तुम्हें विश्वास न आता हो, नाना प्रकार के मद में मस्त गुण, अंग, इन्द्रियों से युक्त

जीव अभी सत्य कबूल न भी करता हो, परन्तु सत्य तो सत्य ही रहेगा। मद में उन्मत्त होकर अभी भले मत मानो, परन्तु जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेंगी, मद उतर जायेगा, जीवन भर का कर्म आँखों के आगे नाचने लगेगा, लम्बी-लम्बी श्वास आने लगेगी और लम्बे होकर बिस्तर पर पड़ जाओगे, उस समय कहाँ जाओगे? जमदूत की 'जमजाचना' अर्थात् जमदूत की सजारूपी मार-कष्ट बहुत कठिन होगी। तब उस समय तो शास्त्रों की पुकार, मेरे एक-एक वचनों को कबूल करोगे, पछताओगे, याद करोगे। वहाँ तो कबूल किए बिना छुटकारा नहीं मिलेगा !! परन्तु उस समय कबूल करने से कुछ भी हाथ नहीं आएगा। अभी कबूल करोगे, तो जम के दुःख से बच सकोगे। जैसे :- 'कांटे चूभे दुख पाइए', 'ए क्यों सेहेसी जम मार।' 'ढोलतां ढोलाने सोहेलुं', 'पछे घरट दलासे हाड'। 'मार भूंडा छे जमदूतना' 'लोही मांस सरवे सूकसे।' अतः यदि इससे बचना चाहते हो, तो अभी मेरे वचनों को मानो और सर्वप्रथम दूसरों के प्रति छलछिद्र रचना छोड़ दो। तन से अथवा मन से दूसरों का बुरा मत सोचो। अपनी ओर देखो। महापुरुष तो कहते हैं, "तू कर तेरी, होत

अबेरी।" दूसरों में छिद्र ढूँढ़ने से तुम्हें लाभ नहीं, उलटा हानि होगी। अतः दूसरों का छिद्र ढूँढ़कर अपने-आप का घात क्यों करते हो? दूसरों का बुरा देखोगे, तो उस बुरे कर्म की छाप, तुम्हारे जीव पर पड़ेगी। वही कर्म की जाली तुम्हें अधः पतन की ओर ले जानेवाली बनेगी। यसर्थ यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो दूसरों के प्रति छल करना और छिद्र ढूँढ़ने का कर्म छोड़ दो। मैं बार-बार तुम्हें यह कर्म करने से रोक रहा हूँ क्योंकि यही कर्म तुम्हारे बन्धन और मोक्ष के कारण रूप हैं। पुनः यही कर्म जमपुरी पहुँचानेवाले हैं तथा जमपुरी का दुःख तो बड़ा कठिन और असहनीय है। यसर्थ मैं हाथ जोड़कर तुमसे कहता हूँ कि दूसरों को मत देखो! अपनी ओर देखो!!

आंणे आकारे कां नथी देखतां,
जेवडो लाभ तेवडो जोखम।
आंणे रे समे अखंड सुख भूल्यां,
बलसो रे लाख चोरासी अगिन ॥ ७ ॥

भावार्थ :- हे सज्जनों! प्रभु ने इस शरीर में तुम्हें विचार-विवेकरूपी आँखें दी हैं। बुद्धि दी है। शास्त्रों के वचनों, महापुरुषों के कथनों पर विचार कर सकते हो। दूसरों से पूछ सकते हो।

अतः भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनों को देखकर विचार करो कि तुमसे पहले जो महापुरुष हुए, उन्होंने क्या निर्णय लिया? क्या वेद, पुराण, उपनिषद् आदि सद्ग्रन्थों में मानव तन को इसी प्रकार पशुवत् व्यर्थ गँवा देने को कहा है? या पशु और तुम्हारे तन में कुछ फ़रक बताया है? इसी तन में होकर अन्दर की दृष्टि और विचार-विवेक द्वारा आगे-पीछे की ओर क्यों नहीं देखते? इस तन की यदि क़ीमत जान सको, तो इससे जो लाभ प्राप्त कर सकते हो, उसका कोई हिसाब नहीं है अर्थात् यदि इस तन को प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर चलाना आये, तो वैकुण्ठ पहुँचकर विष्णु भगवान स्वरूप होकर अखण्ड लाभ ले सकोगे। इसी तन द्वारा अखण्डानन्द के मालिक भी बन सकोगे। फिर यदि इस तन को उचित मार्ग पर चलाने नहीं आया और तुम इसे विषयजन्य क्षणिक सुख के मार्ग पर चलाने लगोगे, तो इससे उतना ही बड़ा नुकसान भी है क्योंकि यदि इस तन में १०० वर्षों तक क्षणिक विषयजन्य सुख का स्वाद लेते रहोगे, तो यहाँ के कर्म के फलस्वरूप ८४ के चक्कर में फिरना पड़ेगा। वह दुःख बड़ा कष्टदायी और असहनीय होगा। यसर्थ यह तन

तलवाररूप है। यदि इसे चलाना आया, तो यह शत्रुओं को मारकर अपनी रक्षा भी कर सकता है और चलाना नहीं आया, तो यही तलवार अपनी ही मौत का कारण भी बन सकती है। अतः इस बार ऐसे तन को प्राप्त करके भी विषयजन्य पशुवत् सुख में फँसकर यदि वैकुण्ठ का सुख प्राप्त न कर सकोगे, तो इस क्षणिक विषयजन्य सुख के पश्चात् ८४ के लाखों वर्षों के लम्बे जीवन में दुःख उठाना पड़ेगा। इस प्रकार यदि तुमने अखण्ड सुख प्राप्त करने जैसा दुर्लभ अवसर गँवा दिया, तो अंत में जाओगे कहाँ? इस तन की भूल के फलस्वरूप तुम ८४ लाख योनियों में *'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणम्'* सदृश फिरते ही रहोगे। दूसरी ओर ८४ नर्ककुण्ड तो तुम्हारी करनी अनुसार हैं ही!

अखंड सुख लीधांनी आ वेला,
कां न करो सबलां साधन।
परमेस्वर ने परा करी रे,
मा करो रे एवां करम अधम ॥८॥

भावार्थ :- वैकुण्ठ के अखण्ड सुख को प्राप्त करने का अवसर तुम्हें यहाँ प्राप्त हुआ है। पुनः इस तन मात्र द्वारा ही यह अखण्ड सुख संभव

नहीं है। मानव तन के साथ-साथ अन्य तीनों पदार्थ-जम्बू द्वीप के भरतखण्ड सदृश धन्य स्थान पर जन्म लेना, वह भी श्रेष्ठ कलियुग में तथा सिरदार - अग्रगण्य सद्गुरु का तारतम ज्ञान भी परमावश्यक है। अतः चारों पदार्थों के संयोग का शुभ अवसर भी तुम्हें प्राप्त है। यसर्थ हे मानवात्माओं! इस अवसर की मौलिकता को समझ कर इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि साधनों को पञ्चजन्य विषयों से फिराकर परमात्मा की ओर क्यों नहीं लगाते? परमेश्वर परमात्मा जगदीश को त्याग कर क्षणिक सुख के परवश होकर ८४ के दुःखदायी मार्ग पर क्यों चल रहे हो? तुम मानव हो। तुम्हारे अन्दर प्रभु प्रदत्त विचार-विवेक रूपी बुद्धि है। तुम्हारे लिए ही शास्त्रों में विधि - निषेध बताया गया है। अतः इतनी सामग्रियाँ पास होते हुए भी तुम ऐसा कर्म क्यों करते हो? तुम्हारे कल्याणार्थ मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जो कर्म तुम्हें लाखों वर्षों तक ८४ की अग्नि में जलाये, ऐसे अधम कर्म मत करो।

मंदिर मालिया अनेक निपाओ,
पण भरवुं एक तेह ज दो भरी।

अनेक उपाय करो कै बीजा,
ए साधन सरवे जमपुरी ।। ९ ।।

भावार्थ :- प्रभु भक्ति के बिना साधु चाहे समाज में मन्दिर बनाएँ तथा गृहस्थी भाई अनेकों भोमयुक्त घर खड़ा करें अथवा एक की जगह साधु दस मंदिरों का मालिक बन बैठे और गृहस्थी चाहे हजारों महलों का, किंतु खाते दोनों एक समान अर्थात् दो नलीभर (एक अनाज की नली और दूसरी पानी की नली) ही हैं न! इस प्रकार तुम दोनों खाते भी एक समान ही हो और जाते भी एक समान अर्थात् हाथ पसारते ही जाते हो, तो तुम्हारे द्वारा बनाया हुआ मंदिर और मालिया-महल तुम्हारे कुछ काम आया? साथ में तो 'धर्मानुगो गच्छति जीव एकः' ही साथ जाएगा। जिस कमाई के लिए तुम धर्म को भूलकर मेहनत कर रहे थे, उसे तो यहीं छोड़ दिया । तुम बुद्धिमान् हो या मूर्ख? एक मात्र प्रभु की अनन्य भक्ति के बिना जप, तप, दान-पुण्य आदि अनेकों उपाय कर लो, परन्तु इन सब से वह अखण्ड सुख प्राप्त नहीं होगा। जब तक आत्मा की पहचान करके, आत्मीय गुणों को धारण करके, मायावी विकारों का परित्याग करके त्याग, वैराग्यरूपी मार्ग से भक्ति न करो,

तब तक सारे साधन जमपुरी के हैं। भले उदय-अस्त का राज हो, सब नर्क का साज है।

कुटम सगां कीधां के समंधी,
अने घोलीकाने करी बेठां घर।
आपोपुं तिहां बांधीने आपे,
वृथा निगम्यां आ अवसर ॥१०॥

भावार्थ :- तुम संसार में आते समय भी अकेले आये थे और जाते समय भी अकेले ही जाओगे। यहाँ संसार में आकर मिथ्या सम्बन्ध जोड़ लिया है। ये झूठे सगे-सम्बन्धी न तुम्हारी आत्मा के साथ आये थे और न जायेंगे। सच्ची तो आत्मा है, जो तीनों काल में अजर-अमर है। उसके लिए तो कुछ भी नहीं किया। झूठे कुटुम्ब के सगे-सम्बन्धी तो कइयों बनाये। एक से हजार सम्बन्ध जोड़ बैठे और कहने लगे, "ये मेरे हैं।" और उन्हीं के लिए जीवन समर्पित कर रहे हो। परन्तु जब त्रिकाल सत्य- तुम्हारी आत्मा चलेगी, तब क्या तुम्हारे जीवन भर के कुटुम्ब के सगे-सम्बन्धी उसके साथी बनेंगे? नहीं! उस समय तो अकेले के अकेले!! १००० में से यदि एक निकल जाय, तो शून्य की कोई क़ीमत नहीं होती। अतः शून्य की ओर जीवन लगाकर

आत्मा - ९ को क्यों भटका रहे हो? अपने जीवन भर की बुद्धिमत्ता को किस वस्तु की कमाई में लगा रहे हो? तुम तो बच्चों की तरह झूठे, अस्तित्त्वहीन खिलौने को ही सच्चा समझकर उसी में रमने लगे। परन्तु बच्चे भी घोलीका-खेल में बनाये हुए बालू के घर, गुड्डा-गुड़िया आदि में ममता नहीं बाँधते। बनाते तो बड़ी मेहनत करके, परन्तु घोलिका-खिलौने को बिगाड़कर, तोड़कर, छोड़कर घर जाने में जरा-सा भी समय नहीं लगाते। इतनी मेहनत से बनाये हुए खिलौनों के प्रति भी उनके मन में लेशमात्र तक ममता नहीं दिखती। वे तो बड़े वेदान्तियों-सा बरताव करते हैं। तुम भी बच्चों की तरह ही घोलिका सदृश घर बनाते हो, फिर एक तोड़कर दूसरा महल खड़ा करते हो। परन्तु उसमें इतनी ममता बाँध लेते हो कि उसे तोड़कर चलना तो दूर की बात है, क्षण मात्र के लिए भी छोड़ नहीं पाते! क्या तुम उन बच्चों जितने भी ज्ञानी नहीं हो? मूर्ख हो? स्वयं ही उस मिट्टी - बालू के घरौंदे के प्रति अपने अंग-अंग को मोह, ममतारूपी रस्सी से बाँध रहे हो। सम्पूर्ण तन, मन, धन, इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि से उस अस्तित्त्वहीन सम्बन्ध पर कुर्बान हो रहे हो। झूठी

ममता में लिप्त होकर सच्ची आत्मा को जन्म-जन्मान्तर के लिए नीले बंध से बाँध रहे हो। साक्षात् जगदीश स्वरूप अखण्ड - अनन्त सुख को प्राप्त करने जैसे सुरदुर्लभ अवसर में सत्य को गँवाकर झूठ को पकड़कर बैठे हो। चिन्तामणि को कौड़ी में बदलकर स्वयं ही नुकसान मोल ले रहे हो!

ए घर जाणो छो अखंड अमारुं,
उपर ऊभो न देखो रे काल।
तमारी द्रष्टे कै रे जाय छे,
तो तमे रेहेसो केटलीक ताल ॥११॥

भावार्थ :- तुम तो मिट्टी के घरौंदे को सत्य मानकर ऐसे दीवाने बनकर उसके पीछे लगे हो कि कभी मरोगे ही नहीं! तुम्हारा घर भी अखण्ड ही रहेगा। ऐसी बुद्धि द्वारा तुम जीवन गुज़ार रहे हो। परन्तु अपने आगे के बाप-दादा को नहीं देखते कि वे कहाँ गये? क्या कालपुरुष, शास्त्र-पुराण आदि ऐसा कहते हैं कि तुम लाख वर्ष तक जीते रहोगे? साठ-सत्तर वर्षों तक मेहनत करके कमाना और ६०-७० साल बाद सब कुछ छोड़कर चल बैठना तथा लाखों वर्षों तक का दुःख मोल लेना! इस क्षणभंगुर जीवन में

कालपुरुष कब मुँह फाड़कर झपट लेगा, क्या भरोसा है, इस बात का? तुम्हारी आँखों से देखते-देखते कितने चले गये और कितने जा भी रहे हैं। तो फिर तुममें यह निश्चयता क्यों नहीं आती कि तुम्हें भी एक दिन जाना पड़ेगा? उस दिन के लिए चिंता क्यों नहीं करते? देखो! जीवन नित्य प्रति कम होता जा रहा है। इस तन की अवधि ज्यादा-से-ज्यादा १०० वर्ष है। उसमें से कितनी गयी और रही कितनी? बचे हुए समय का भी कोई भरोसा नहीं है। ऐसे अनित्य और क्षणभंगुर स्थान में होते हुए भी तुममें यह अभिमान कहाँ से आ गया कि तुम अजर-अमर हो? ऐसे लापरवाह और मदोन्मत्त होकर मत चलो!

ऊंचा वस्तर पेहेरी आकासे,
अंत्रीख राखे छे आकार।
भोम उपर पग भरतां नथी,
एणी पेरे बांध्यो ए संसार ।।१२।।

भावार्थ :- उन्मत्तता के चरित्र को तो देखो! धन मद में होकर कोई क़ीमती वस्त्राभूषण पहनते हो, कोई यौवन मद के मध्याह्न दशा में हो, तो कोई ज्ञान मद में उन्मत्त होकर अहंकार में डूबे हुए हो। जब ज्ञान मद, धन मद के साथ

यौवन मद हो और "कण्ठ बांहोडिया घाले" चलते हो, तब तन-शरीर तो अधर-हवा में ही उड़ते रहता है। मन में ऐसा अभिमान भरा रहता है कि सृष्टि में हूँ, तो एक मैं ही हूँ। न पीछे दुनिया के दूसरे जीवों के प्रति दया-दृष्टि ही रहती है और न आगे भविष्य-परलोक की ही चिन्ता!! मात्र एक अभिमान!! यही अंतरिक्ष में फिरना है। चलते समय पैर ही जमीन पर नहीं टिकते। दृष्टि नीचे देखती ही नहीं! विनय, नम्रता, गरीबी आदि सात्त्विक गुण तो मानो कभी सीखे ही नहीं!! मनमानी बोलना, मनमानी चलना, मनमानी करना!!! इस प्रकार संसार के मानव मात्र के अन्दर कलियुग ने प्रवेश कर जीवों को नाना प्रकार के मदों में उन्मत्त कर डाला है और माया संसार के जीवों को अभिमान-अहंकाररूपी रस्सी से बाँधकर अपने हाथ की कठपुतली की तरह नचा रही है और जीव मदमाते मरकट की तरह नाच रहे हैं।

आप पछाडी ल्याओ छो धन,
ऊँचा थावा रबदे करो छो दान ।
नहीं रे आवे ते अरथ जीवने,
लेई जाय छे वचे अभिमान ।।१३।।

भावार्थ :- अपनी आत्मा की परवाह किए बिना आत्म-कल्याण को पीछे छोड़कर दुर्लभ जीवन को नाशवान् धन बटोरने में लगा रहे हो! एक कुटुम्ब के पालन-पोषण के लिए दूसरों को मारकर भी अनीतिपूर्ण ढंग से उसका हिस्सा हथियाने में पीछे नहीं हटते। चोरी-डकैती कुछ भी बाकी नहीं छोड़ते। अपनी जान जाये, तो भले चले जाये, परन्तु धन आना चाहिए। कभी ये भी सोचा है कि दूसरों पर जुलम करके कमाया हुआ विशाल धन खानेवाले तुम्हारे कुल-कलत्र के लोग क्या तुम्हारे पाप के भी भागीदार बनेंगे? नहीं! पाप तो अकेले ही भोगना पड़ेगा। तब उस समय तुम्हारी क्या दशा होगी? परमात्मा के नाम पर धर्मक्षेत्र में धन तो खर्च करते हो, परन्तु गोप्य रूप से परलोक प्राप्ति हेतु नहीं, बल्कि समाज के बीच नाम कमाने के लिए। किंतु इस प्रकार के दान-पुण्य का फल परलोक में नहीं मिलेगा। गोप्य दान का फल ही परलोक पहुँचेगा। यदि कोई तुम्हें उक्त प्रकार से समझाने लगे, तो उसके साथ रबद-वाद-विवाद पर उतर आते हो। शास्त्रों में दान किस प्रकार करने को कहा है, धर्म में धन किस प्रकार खर्च करना चाहिए, यह तो तुम्हें देखना नहीं

है। शास्त्रों के उलटे चलते हो, कर्म भी उलटा करते हो। थोड़ा-सा पुण्य कर भी लिया, तो नाम के लिये! पहले की दुनिया काम की भूखी थी और आज-कल की दुनिया नाम की भूखी है। भिन्नता इतनी ही तो है। किन्तु नाम मात्र के लिए किए हुए धर्मकार्य को अभिमान खा लेता है। ऐसा धर्मकार्य जीव तक नहीं पहुँच पाता और न ऐसा धर्मकार्य परलोक में ही काम आता है। ऐसे देखा-देखी में अभिमानवश किये हुए जाहिरी दान-पुण्यरूपी कर्मों को बीचों-बीच अभिमान ही छीन लेता है। ऐसे दान-पुण्य करना, तो बालू में बीज बोने जैसा है। ईसा कहते हैं कि एक हाथ से किए हुए दान का पता दूसरे हाथ को भी नहीं चलना चाहिए। अतः ऐसे दान का पुण्य फल ही परलोक में काम आता है।

असुभ करम जेम लिए निंद्या,
सुभकरम नामना लेई जाय।
गोप साधन कीजे ते माटे,
जेम सुख जीवने पोहोंतुं थाय॥१४॥

भावार्थ :- अशुभ कर्म का प्रचार करने पर पाप कट जाता है और शुभ कर्म दूसरों को दिखाने पर नष्ट हो जाता है। यसर्थ शास्त्र

कहता है कि यदि तुमसे कोई कुकर्म हो जाय, तो उसे समाज के आगे प्रकट कर दो। दूसरों को सुनाने से अशुभ कर्म का पाप यहीं कट जाता है। उसे जमलोक जाकर भोगना नहीं पड़ता। पुनः यदि थोड़ा-सा भी शुभ कर्म किया हो, तो उसे दूसरों को पता मत चलने दो। तो इसका फल तुम्हें परलोक में मिलेगा। परन्तु हम इसका उलटा करते हैं। पाप को छिपाकर धर्म का प्रचार करते हैं। किन्तु शास्त्र कहता है कि भजन, भक्ति, दान-पुण्य, जीवों पर दया, सेवा आदि सारे पुण्य कर्म गोप्य-छिपाकर करो, जिससे कि इन पुण्य-कर्मों का फल तुम्हारे जीव को परलोक पहुँचा सके। तब जीव अखण्ड आनन्द प्राप्त कर सकेगा। नाम की इच्छा लेकर कर्म करोगे, तो उस कर्म का पुण्य यहीं समाप्त हो जायेगा और वहाँ पहुँचकर तमाचा मिलेगा। जैसा राजा ययाति को मिला था!

एके बंध एणी पेरे बांध्यां,
बीजानी ते केटली कहुं रे सनंध।
साध वाणी सांभलीने सहु को,
देखीतां बंधाणां रे अंध ॥१५॥

भावार्थ :- परलोक के लिए तुम जितना भी

दान-दया, धर्म-कर्म करते हो, वह तो अभिमानवश लोगों को दिखाकर वाहवाही कमाने की इच्छा से विफल कर बैठते हो। दूसरी ओर अशुभ कर्मों को हृदय में छिपाकर रखते हो, जाहिर होने नहीं देते। यह एक प्रकार का बन्धन है, जिसमें जीव कठिनता से बन्धा हुआ है। पुनः कुटुम्ब-परिवार को पालने के लिए जो कर्म - आडम्बर तुम मजबूर होकर करते हो, उन जाहिरी बन्धनों के प्रकार का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? तुम सोचते हो, *"झूठ बोलकर, चोरी करके, छलछिद्र रचकर कमाई न करूँ, तो एक के पीछे दस जीव भूखे मरेंगे। सिर चला जाय, परन्तु धन हाथ आना चाहिए।"* परन्तु यह तो निश्चित है कि उक्त सभी कर्मों के पाप के बन्धन में घर के अन्य जीव नहीं बँधेंगे, बल्कि मात्र कर्मकर्ता जीव बँधेगा! अतः इन्हीं बन्धनों से उबारने हेतु साधु-सज्जनों, आप्तपुरुषों की वाणी शास्त्र-पुराणों द्वारा सचेत कर रही है। शास्त्र-पुराणों की वाणी सुनकर भी अंधों जैसा कर्म क्यों कर रहे हो? ऐसे कर्मों का प्रतिफल कितना-भयंकर होता है। क्या तुम्हें इसका ज्ञान नहीं है ? है! शुभ मार्ग तुम्हें नहीं बताया है, ऐसा नहीं है!! जानते-जानते, सुनते-सुनते भी ऐसे कर्म-बंधन में बँधे जा रहे हो, तो विचार कर देखो कि तुम कितने अंधे हो!!!

बंध चोवीस बीजा एनी जोडे,
वली पंच इन्द्री ने नव अंग।
त्रणे पख त्रणे गुण करी रे,
ए बंध बांधी दुख लीधां रे अभंग ॥१६॥

भावार्थ :- इस जीवात्मा ने जब पंचतत्त्व-निर्मित शरीर में प्रवेश किया, तभी से वह बन्धन में पड़ गया। अब जीवात्मा को परात्मा की याद से वंचित कर अधोपतन की ओर खींचनेवाले गुण, अंग, इन्द्रियरूपी शारीरिक बन्धन भी जीव के साथ लग गए। चार अन्तःकरण, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, गुदा को छोड़कर चार कर्मेन्द्रियाँ, पुष्ट, मर्याद और परवाह - ये तीन पक्ष तथा सत, रज, तम - ये तीन गुण, अतः कुल चौबीस बन्धनों में अज्ञानवश पड़कर जीव ८४ का अखण्ड दुःख प्राप्त करनेवाला बन गया। आत्मा को भूलने पर यही ८४ का दुःख जीव के हाथ आया।

एणी पेरे बंध बांध्या वज्रमय,
चसकावी न सके पाय।
होंस करे सुख वैकुंठ केरी,
एणी सिखरे एम केम चढाए ॥१७॥

भावार्थ :- इस प्रकार उक्त पञ्चविषयजन्य साधनों ने जीव को नीच कर्म करवाकर वज्रमय- कठिन बंधन में बाँध दिया, जिसके फलस्वरूप कर्म-बन्धन में जकड़ी हुई जीवात्मा के लिए इस बन्धन को जलाकर उससे मुक्त होना बड़ा कठिन हो गया। यह विषयजन्य मायावी बन्धन जीव के लिए इतना कठिन हो गया कि साँकलरूपी बन्धन में जकड़ा जीव जरा-सा हिल भी नहीं पा रहा है। आत्मा की ओर ज्ञान, भजन-भक्ति में पग रखकर आगे बढ़ना तो दूर रहा, मन से सोच भी नहीं पा रहा है। अब जीव तो इस उलझन को सुलझाने में ही मस्त है। उसके पास आत्म-चिन्तन के लिए समय ही कहाँ है? ऐसा कर्म करते सब चल रहे हैं, तब भी सभी जीवों में मृत्यु के पश्चात् तो वैकुण्ठ में जाने की ही इच्छा रहती है। जीवन भर नर्क का मार्ग चलते हैं, परन्तु कोई भी नर्क जाना नहीं चाहते। यदि जीवन भर नर्क के मार्ग पर चले हो, तो अन्त में वैकुण्ठ कहाँ से पहुँचोगे? ऐसे कर्म करके वैकुण्ठरूपी शिखर (चोटी) पर नहीं पहुँचा जा सकता। उस चोटी पर पहुँचने के लिए तो सर्गुणादि गुण का परित्याग कर निर्गुणादि गुण धारण करके चलना पड़ेगा।

जे बंध बांध्या जोइए रे चरणसुं,
ते बंध बांध्या लेई पंपाल।
अखंड सुख आवे केम तेने,
जे रे पडे जई जमनी जाल ॥१८॥

भावार्थ :- जिन चौबीस प्रकृतियों द्वारा जीव को ममतारूपी बन्धन परमात्मा के चरणों से बाँधना चाहिए था, उन्हीं चौबीस प्रकृतियों द्वारा जीव ने पञ्चजन्य विषयों के साथ बन्धन बाँध लिया। यह विषयों का सुख पंपाल-झूठा है। जीव ने यदि सत के चरणों से बन्धन बाँधा होता, तो पंपाल - झूठ के बदले वह ब्रह्मानन्दरूपी सत सुख में पहुँच सकता था। झूठे पंचजन्य विषयों के सुख के प्रति ममता बाँधने से जीव अखण्ड सुख को कैसे प्राप्त कर सकेगा? जो सुख अन्त में जम की जाली में उलझानेवाला है, उसे भोगकर कोई जीव मृत्यु के पश्चात् वैकुण्ठ गया हो, ऐसा पूरी सृष्टि के किसी इतिहास में देखने को मिलता है? कभी नहीं मिलेगा! तो फिर ऐसे सुख के प्रति ममता बाँधकर वैकुण्ठ के सुख की आस क्यों करते हो?

जाणीने पडिया जम जाले,
आ देखो छो मायानो फंद ।

जे कारण तमे आप बंधावो,
तेसुं नथी रे तमारो सनमंध ॥ १९ ॥

भावार्थ :- शास्त्र-पुराण पुकार रहे हैं, महापुरुष समझा रहे हैं कि शास्त्रोक्त कर्म करो। निषेध कर्म करने से दुःख होगा। प्रभु-प्राप्ति के मार्ग से च्युत करानेवाले गुणों का परित्याग करो। पुनः हम भी जानते हैं और सुना भी है कि 'ऐसा मार्ग चलने पर वैकुण्ठ के सुख में नहीं पहुँच सकेंगे। इस तरह हम शास्त्रों के कथन से विपरीत चल रहे हैं।' ऐसा जानते हुए भी तुम जमपुरी के फाँस में पड़ने का ही कर्तव्य करते जा रहे हो। क्या तुम इस माया के फन्द को नहीं देखते? अतः कोई नहीं चाहता कि वह ऐसा कर्म करे और जमपुरी में लाखों वर्षों तक दुःख भोगे। परन्तु इस मायावी शरीर और इन्द्रिय-विषय के खिंचाव से हम अपने-आप को सँभाल नहीं पाते। यही माया है। यह खिंचावरूपी फंद अभी अमृत सदृश लग रहा है, परंतु *'परिणाम विषमेव'* अर्थात् जमजालीरूपी फंद में डालनेवाला है। जिस शरीर और शरीर सम्बन्धी स्त्री, पुत्रादि के पालन-पोषण के कारण तुम अपनी आत्मा को चोरी-डकैती, छलछिद्र, दगाबाज़ी-फ़रेब आदि नाना अनर्थ कर्मों के बन्धन में बँधा रहे हो,

वास्तव में शरीर सम्बन्धी वे लोग उक्त प्रकार से कुनीति द्वारा कमाया हुआ धन भोगने में तो तुम्हारा साथ देंगे, परन्तु उक्त कुकर्मों के प्रतिफल स्वरूप पाप का भागीदार तो तुम अकेले को ही बनना पड़ेगा। अतः हे चैतन्य आत्मा! शरीर सम्बन्धी झूठे कुटुम्ब-कबीलों से न तुम्हारा कोई सम्बन्ध पहले था और न अभी है एवम् न पीछे रहेगा। ये सभी डाकू बनकर तुम्हें अखण्ड सुख से वंचित करने हेतु तुमसे जुड़े हुए हैं। तुम उन्हें अपना जानकर उन पर जीवन अर्पण कर अपनी आत्मा को खो रहे हो। तुम्हारा सच्चा सम्बन्ध परमात्मा से है। उन्हें खुश करने के लिए तो तुमने कुछ किया ही नहीं! वास्तव में तुम स्वयं एक शुद्ध-निर्मल, बुधवन्त आत्मा हो। अतः शुद्ध-बुद्ध नेहेचल परमात्मा से सम्बन्ध जोड़कर भजन-भक्ति कर लो!!!

उतम जनम एवो पामी रे मानषो,
कां रे पडो पसुना जेम पास।
बीजा पसु सहुए बंधावे,
पण केसरी केम बंधावे रे आप ॥२०॥

भावार्थ :- हे मनुष्यों! ८४ लाख योनियों में से तुम्हें अर्थात् 'चतुर्लक्षाणि मानव' को उत्तम

जन्म प्राप्त हुआ है। तुम अपने और अन्य दूसरी योनियों के बीच संतुलन करके देखो! तत्त्व एक हैं, इन्द्रियाँ एक हैं, विषय एक हैं और भिन्नता भी एक ही है!! वह यह है कि अन्य योनियों में अच्छा-बुरा विषय विचार-विवेक करने की योग्यता नहीं है, जो तुममें है। यदि इतना होने के बाद भी हम पशुओं की तरह ही *'आहार निद्रा भय मैथुनं च'* में जीवन गँवा दें, तो पशुओं में और मानव में क्या भिन्नता रह जायेगी? शून्य हृदय के कारण पशु आगे-पीछे की सुध बिना विषयान्ध बनकर भोग भोगता है। क्या हमारा जीवन भी इतने भर के लिए ही है? मृत्यु के पश्चात् अजर-अमर अविनाशी जीव का क्या कोई अस्तित्त्व नहीं है? है - जरूर है। किंतु पशु भी तरह-तरह के होते हैं। अन्य सभी पशु बन्धन में आ सकते हैं, परन्तु केसरी सिंह कभी बन्धन में नहीं आता। वह अपनी जान दे देगा, पर दूसरों के बन्धन में नहीं रहेगा। अतः जिस प्रकार पशुओं में केसरी सिंह अपना धर्म पालन करने के प्रति दृढ़ रहता है, उसी प्रकार सृष्टि में तुम भी हो। लेकिन -

सुं रे बल केसरीनुं तम आगल,
तम समान नथी बलवंत।

छल करी छेतरे छे तमने,
रखे रे लेवाओ आणे प्रपंच ॥२१॥

भावार्थ :- हे मानवों! तुम्हें विचार और विवेक-दोनों प्रभुदत्त वस्तुएँ प्राप्त हैं। उसके द्वारा विचार कर अपनी जीवात्मा को जागृत कर सकते हो। पुनः जागृत आत्मा में कितनी शक्ति रहती है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। लाखों-करोड़ों केसरी सिंह भी जागृत आत्मा में निहित शक्ति का सामना नहीं कर सकते। फिर तुम सत्यात्मा में से भी सत्य हो। परन्तु इतना शक्तिशाली होते हुए भी माया तुम्हें आत्म स्मृति से वंचित कर ठग रही है। तुम केसरी सिंह होते हुए भी स्वयं को भेड़ समझ रहे हो, तभी तो माया तुम पर सवार हो गई है। अन्यथा सूर्य के आगे अन्धकार का रहना सम्भव ही नहीं है। यसर्थ माया के विभिन्न रूप को समझो, अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करो और इस झूठे प्रपंच के खिंचाव में मत पड़ो। इस तरह माया में बहना तुम्हारे योग्य नहीं है!! ऐसा करके तुम अनर्थ कर रहे हो!!!

आ देखीती बाजी मायानी,
प्रगट पोकार कहे छे साध।

मांहे रही आप अलगां थाजो,
जेमने छूटो ए बंध अगाध ॥२२॥

भावार्थ :- यह जो दिखाई देता है, वह बाजी-तमाशारूप है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड की वस्तुओं को तमाशा के रूप में रचा गया है। यह बाजीगर की बाजी सदृश है। इसी का बाजीगर सृष्टिकर्ता अक्षर है। उसकी अवधि के आगे यह बाजी क्षण मात्र की है। परन्तु हमें हमारे समय के अनुसार यह बाजी अनादि सदृश लम्बी भासित हो रही है। उत्पन्न का अन्त-नाश है। इस क्षणिक बाजी के मूल तत्त्व के समझदार आत्मदर्शी महापुरुषों ने पिण्ड-ब्रह्माण्ड, पञ्चजन्य विषय सुख सभी को समझकर अविनाशी जीव के लिए वेद, शास्त्र, पुराण आदि सद्ग्रन्थों में प्रकट पुकार करते हुए हमें चेतावनी दी है कि 'इस झूठे सुख से बचो। दुःख सहन करो। अनादि सुख की साधना में लगो, हे साधकों!' अतः यह पुकार सुनकर किस प्रकार रहना और क्या करना चाहिए? तो प्रभु द्वारा प्रदत्त शरीर के बीच रहकर, जहाँ तक प्रभु रखें, शरीर, इन्द्रिय, विषय से रहित-अलग होकर प्रभु-चरण में ममता बाँधकर रहो। शारीरिक दुःख सिर पर उतना ही लो, जितना उठा सको। आत्मीय सुख इतना

अक्षरातीत श्री कृष्ण परमात्मने नमः

(श्री कृष्ण प्रणामी धर्म-श्रीमन्निजानन्द संप्रदाय)

महामति श्री प्राणनाथ प्रणीत श्री कुलजम स्वरूप साहेब अंतर्गत

स्थित

श्री किरंतन और श्री प्रकाश ग्रंथ के

'पुराना किरंतन'
और
'भागवत का सार'

भाष्यकार -

"प्राणनाथ साहित्य भास्कर"-सम्मान से विभूषित

परमपूज्य "वाणी आचार्य"

श्री १०८ श्री दीनदयालजी महाराज

संरक्षक - श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चे. ट्रस्ट

बोरीवली (प.), मुंबई - ४०० ०९२

प्रकाशक -

१. हिन्दी - श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र के संस्थापक,
"प्राणनाथ साहित्य भास्कर"-सम्मान से विभूषित
परमपूज्य "वाणी आचार्य"
श्री १०८ श्री दीनदयालजी महाराज
बोरीवली (प.), मुंबई - ४०० ०९२

२. गुजराती - ज्ञान केन्द्र -
C/O श्री प्राणनाथ महिला मंडल (रजि.),
बोरीवली (प.), मुंबई - ४०० ०९२.

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. श्री १०८ प्राणनाथजी मंदिर
श्री ५ पद्मावतीपुरी धाम (मुक्तिपीठ),पन्ना,
मध्य प्रदेश - ४८८ ००१. संपर्क: ०७७३२-२५२०४६

२. श्री ५ महामंगलपुरी धाम
श्री कृष्ण प्रणामी मोटा मंदिर,
सैयदवाड़ा, सूरत - ३. संपर्क: ०२६१-२४२४९८६

३. श्री कृष्ण प्रणामी मूल मिलावा मानव मंदिर
वेड रोड, सूरत. संपर्क: ०२६१-२५१२७२२

४. श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चे. ट्रस्ट
३, सुंदरधाम बिल्डिंग, जामली गली, बोरीवली (प.),
मुंबई - ४०० ०९२. संपर्क: ०२२-२८९९ ८७५८

५. श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर
डिल्ली बाजार, काठमाण्डौ (नेपाल).
संपर्क: ००९७७-९८४१२३१०३५

६. श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर
सेवक रोड, सिलिगुड़ी, (पश्चिम बंगाल).
संपर्क: ०३५३-२६४२७२८

७. श्री कृष्ण प्रणामी साधनालय चे. ट्रस्ट
श्री प्राणनाथ वाणी प्रशिक्षण केन्द्र,
पोस्ट - गडऊमरिया, धरमपुर, दर्रामुरा,
रायगढ़, छत्तीसगढ़ - ४९६ ००१.
संपर्क: ०९९०७ ४४२ ४४२

वहन करो कि वह दुःख प्रभु-चरण के प्रति प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि कराये। संसार की वस्तुओं से ममता हटाकर उस ममता को प्रभु नामरूपी रस्सी द्वारा मजबूती से प्रभु-चरण में बाँधकर तो देखो! अन्त में शरीर छोड़ते समय अगाध माया के बीच से कर्मरूपी बन्धन को तोड़कर तुम संसार को गौपदवच्छ कर कैसे प्रभु-चरण में पहुँच जाओगे ? तब तुम्हारे आगे संसार कैसे नहीं के समान हो जायेगा, देखना!!!

वली वली आ वेला नहीं आवे,
वली वली न सांभलो पुकार।
बोध संगाते जागी परियाणी,
तमे लेजो रे सघलानो सार ॥२३॥

भावार्थ :- उपरोक्त प्रकार से अखण्ड सुख में पहुँचने का साधन करने का अवसर बार-बार नहीं मिलेगा। यह समय यदि अभी चूक जाओगे और यह जीवन गँवा बैठोगे, तो यह तन छोड़ने के बाद तुम जब दूसरी योनि में जाओगे, वहाँ ऐसा साधन और अमूल्य अवसर प्राप्त नहीं कर सकोगे। तुम्हारे भाग्य से अखण्ड सुख में जाने के लिए चार पदार्थरूपी चार दरवाजे अभी खुले हुए हैं, यदि समझ सको तो। इस तन

द्वारा शास्त्र-पुराणों की पुकार, सन्त-महापुरुषों का प्रबोध-सत्संग सुनकर समझ सकते हो। अन्य योनि में नहीं! शास्त्र-पुराणों तथा महापुरुषों की उपदेशरूपी बुद्धि-बोध को ग्रहण कर अपनी बुद्धि द्वारा जीवात्मा को जागृत करो और जागृत जीव की जागृत बुद्धि द्वारा अपने इंद्रियरूपी साथियों के साथ परियाण-सलाह मशविरा करो। इस प्रकार सभी इन्द्रियों को अपनी बुद्धि के साथ जीवात्मा के अनुकूल चलाकर हे जागृत आत्माओं! इसी तन द्वारा इसी भूमि में होते हुए सम्पूर्ण पिण्ड-ब्रह्माण्ड के सार-आत्मा और आत्मा के सम्बन्धी परमात्मा को अन्तःकरण में विराजमान कर लो!! परमात्मा को ग्रहण करके उनके चरणों में वज्रमय स्नेह-ममतारूपी बंधन बाँध लो। तुम्हारा त्रिकाल सत्य धन यही है!!!

सारना सारसुं बंध बांधजो,
करजो रे नित नवलो रंग।
नहाजो माया मांहे कोरा रेहेजो,
छूटतां आयस जेम न आवे रे अंग ॥२४॥

भावार्थ :- हे मानवों! अज्ञानरूपी नशे का परित्याग करके स्वप्नवत् सृष्टि के बीच अपने कल्याणार्थ कर्तव्य-कर्म को ग्रहण करो। सृष्टि

में अपने नित्य, अमर और अविनाशी चैतन्य परमात्मा के अंशरूप सार वस्तु आत्मा के कल्याण विषय में सोचो। सार वस्तु एक मात्र आत्मा है। उसके अलावा सब कुछ विषरूप है। आत्मा के सम्बन्धी परमात्मा-जगदीश सार के भी सार हैं। अतः उन परमात्मा के चरण में आत्मा के स्नेह-ममतारूपी बंधन की ऐसी गाँठ बाँधना कि *'प्रले न थाए भंग'* और प्रभु कृपा से जब तक इस शरीर में रहो, तब तक नित्य प्रति नये-नये रंग का अनुभव करो अर्थात् सभी जीवों को चेतन-एक प्रभु का अंश समझकर उनका कल्याण सोचो और उन्हें सुख पहुँचाओ। जीव को सुखी करने से प्रभु खुश होंगे। जब प्रभु खुश होंगे, तो उन प्रभु के अंशरूप तुम्हारी आत्मा में प्रभु का आनन्द प्राप्त होगा। तब तो यहीं रहते हुए तुम्हारा कर्तव्य-कर्म और तुम्हारा जीव दोनों धन्य-धन्य हो जाएँगे। तब क्या होगा? अतः शरीर मायावी है। इसमें जन्म सिद्ध त्रिताप साथ ही लगा हुआ है। यसर्थ जब तक तुम्हारी आत्मा इसमें रहेगी, तब तक उस पर मायावी आपत्ति-विपत्तियाँ आती ही रहेंगी और इन्द्रिय-अन्तःकरण विषय की ओर मोहित होते ही रहेंगे। अतः उन्हें विषयों से निग्रह करना सरल नहीं है। वास्तव में माया के विकट-कठिन

अनुभव का स्वाद लेना ही माया में नहाना है। माया का वास्तविक स्वाद भोगनेवाले जीव यह अनुभव नहीं कर पाते। दृढ़ होकर माया देखनेवाले को ही उक्त अनुभव का स्वाद मिलता है। जैसे कि नदी के बहाव के परवश होकर बहनेवाला जीव नदी के सत्य वेग का अनुभव कभी नहीं कर सकता। नदी के सत्य वेग का परिचय तो वही दे सकेगा, जो बीच धार में खड़ा रहकर अनुभव करेगा। अतः आत्मा और परमात्मा के बीच शरीर धाररूप है। एक ओर संसार तथा दूसरी ओर परमात्मा को समझकर जब दृढ़ आत्मा शरीर उठाकर चले, तभी वह दूसरे ठिकाने पर पहुँच सकेगी। ऐसी आत्मा को न आयस-संसार के प्रति ममता रहेगी और न मृत्यु के पश्चात् जमपुरी का डर सतायेगा। वह तो हँसते हुए प्रभु के पास पहुँच जायेगी!

दुख दावानल दुरगत मेलो,
रदे मांहे चरण करो प्रकास।
अखंड सुख एणी पेरे आवे,
मेहेराज कहे जीव जाणो विस्वास ।। २५ ।।

भावार्थ :- यसर्थ काम, क्रोध, लोभरूपी दावानल अग्नि का परित्याग करो, जो अहर्निश बिना रुई, बाती और तेल के भी जलती रहती है। यही दावानल अग्नि जीवात्मा को बार-बार जन्म-मरण में डालकर दुःख पहुँचाती है। इसे तुरंत हृदय से हटाकर उस हृदय में प्रभु-चरण के प्रकाश को दृढ़ता से स्थापित कर लो। अन्तःकरण में स्नेह-ममता और विश्वास-ईमान भर लो। ऐसा करने पर हृदय में अखण्ड सुख का अनुभव होगा। अतः श्री मेहराज कह रहे हैं कि यदि तुम सब अपना कल्याण चाहते हो, तो इस ज्ञान को समझकर, इस पर विश्वास कर जीव को जागृत करके अखण्ड सुख प्राप्त करो!

-(किरंतन, प्र. १३१/चौ. २५)।

* श्री भागवत का सार *

सुनियो साथ कहूं बिचार,
फल वस्त जो अपनों सार।
सोए देखके आओ वतन,
माया अमल से राखो जतन ॥१॥

भावार्थ :- श्री मेहराज ठाकुर के शरीरस्थ विराजमान, श्री इन्द्रावती आत्मा कहती है कि हे मेरी धाम की प्यारी आत्माओं! "मैं आप लोगों को एक बात विचार-विवेकवत् कह रही हूँ। आप लोग अपनी सार वस्तु अथवा शास्त्ररूपी वृक्ष का जो फल है, उस सार फल को देखकर,समझकर पुनः अपना जानकर ग्रहण कीजिये, जिससे कि दुस्तर माया के नशीले प्रभाव से युक्तिपूर्वक दूर-अलग होकर अपने श्री परमधाम जा सको।"

इन अमल को बडो विस्तार,
सोए देखना नहीं निरधार।
पेहेले आपन को बरजे सही,
श्री मुखबानी धनिएं कही ॥२॥

भावार्थ :- इस जबरदस्त माया का नशा बड़ा प्रबलकारी है। निश्चित ही आप लोग इस ठगिनी माया की ओर देखिये भी नहीं। हमारे धनी परब्रह्म स्वामी प्रियतम श्री राजजी ने इस दुस्तर माया में आने से पूर्व ही हम लोगों को रोका तो था। पुनः स्वयं सद्गुरु स्वरूप ने यहाँ आकर ये वचन अपने श्री मुखारविंद से कहे भी थे।

तिन कारन तुमें देखाऊं सार,
मूल वतन के सब प्रकार।
धनी अपनों धनीको विलास,
जिनथें उपज अखंड हुओ रास ॥ ३ ॥

भावार्थ :- यसर्थ मैं आप लोगों को सार तत्त्व की बात बताकर-समझाकर अपने मूल वतन-श्री परमधाम की लीलाओं को सम्पूर्ण प्रकार से प्रकट करती हूँ। परात्पर अपने प्रियतम परब्रह्म स्वरूप और ब्रह्मात्माओं के नित्य विहार की रास लीला का उदय हुआ तथा वह लीला भी अखण्ड हो गयी है।

ए सुनिओ आतम के श्रवन,
सो नाहीं जो सुनिए ऊपर के मन।

वेद को सार कह्यो भागवत,
ए फल उपज्यो सास्त्रों के अंत ।। ४ ।।

भावार्थ :- हे श्री परमधामस्थ साथजी! अखण्ड महारास लीला के रहस्य को आप लोग अन्तर्मुखी होकर आत्मा के श्रवणों द्वारा सुन लीजिये। यह कोई ऐसी साधारण-सी चर्चा नहीं है, जिसे ऊपरी दृष्टि और मन से ग्रहण किया जा सके। आद्य-मूल वेद आदि ग्रन्थों का सार श्रीमद्भागवत कहा गया है क्योंकि सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान ग्रन्थों के वृक्ष का फलरूप यह अन्तिम ग्रन्थ श्रीमद्भागवत महापुराण वेदान्त रूप में प्रकट हुआ है।

सो फल सार सुकजीएं लियो,
सींच के अमृत पकव कियो।
ए फल सार जो भागवत भयो,
ताको सार दसम स्कंध कह्यो ।। ५ ।।

भावार्थ :- इस सार-वेदान्तरूपी फल श्रीमद्भागवत को अवधूतमुनि श्री शुकदेवजी ने सर्वप्रथम ग्रहण किया और उन्होंने प्रेमामृत से सींचकर उसे परिपक्व किया। अतः सम्पूर्ण

शास्त्रों का सार श्रीमद्भागवत और भागवत का भी सार उसका दसवाँ स्कन्ध माना गया है।

दसम के नबे अध्या,
तिनका सार भी जुदा कह्या।
ताको सार अध्या पैंतीस,
जो ब्रजलीला करी जगदीस ।। ६ ।।

भावार्थ :- श्रीमद्भागवत ग्रंथ के अन्तर्गत दशम स्कन्ध में नब्बे अध्याय हैं, उनका सार भी अलग बताया गया है। उनका सार है - पूर्वार्ध के पैंतीस अध्याय, जिसमें श्री जगदीश - श्री कृष्ण जी के बाल स्वरूप की ब्रजलीला का वर्णन है।

जगदीस नाम विस्नुका होए,
यों न कहूं तो समझे क्यों कोए।
ए जो प्रेम लीला श्रीकृष्णजीएं करी,
सो गोपन में गोपियों चित धरी ।। ७ ।।

भावार्थ :- यों तो यह नश्वर जगत् के ईश-जगदीश नाम श्री विष्णु भगवान का है। परब्रह्म अक्षरातीत श्री कृष्ण को जगदीश नहीं कहा जा

सकता। किन्तु संसार के लोग जगदीश को ही सबसे बड़ा जानते हैं, यसर्थ यहाँ श्री कृष्ण को जगदीश कहा है। ऐसा न कहूँ, तो लोग मेरी बात को कैसे समझ सकेंगे? परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण ने व्रज में जो ग्यारह वर्ष बावन दिन तक प्रेमलीला की, उसे गोप वंश की गोपबालाओं ने हृदय में धारण किया।

ए ब्रह्मलीला भै जो दोए,
ब्रजलीला रासलीला सोए।
तामें तीस अध्या जो बाल चरित्र,
ए ब्रह्मलीला उतम पवित्र ॥ ८ ॥

भावार्थ :- इस मृत्युलोक के बयालीस पुरा ब्रजमण्डल में और योगमाया के ब्रह्माण्ड के वृन्दावन में व्रज और रास क्रमशः - ये दो लीलाएँ हुई हैं। श्रीमद्भागवत में श्री कृष्णजी की बाल लीला का वर्णन तीस अध्यायों में हुआ है, जो उत्तम और परम पवित्र परब्रह्म लीला सम्बन्धित है।

पंच अध्याई ताको सार,
किसोरलीला जोगमाया विस्तार।

ब्रजलीला को जो ब्रह्मांड,
रात दिन जित होत अखंड ।। ९ ।।

भावार्थ :- श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के पैंतीस अध्यायों का सार श्री रास लीला के पाँच अध्याय हैं। बेहद में योगमाया के चिन्मय वृन्दावन में परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण की रास लीला सम्पन्न हुई। ब्रजलीला जिस कालमाया के ब्रह्मांड में हुई, उसके भी रात-दिन अखंड हुए हैं।

जोगमाया जो लीला रास,
रात अखंड सब चेतन विलास।
ए लीला सुके आवेसमें कही,
राजा परीछतें सही ना गई ।। १० ।।

भावार्थ :- योगमाया की शक्ति से रचे हुए चिन्मय ब्रह्माण्ड में जो रास लीला हुई, रास लीला की वह रात्रि अक्षर ब्रह्म के हृदय में अखण्ड हो गई। वह चिन्मय विहार की अक्षय पवित्र लीला का वर्णन श्री शुकदेव मुनिजी के आध्यात्मिक आवेश द्वारा किया गया है। इह लोक के मायावी जीव-राजा परीक्षित उसे सहन करके ग्रहण नहीं कर सके।

ए लीला क्यों सही जाए,
बैकुंठ को अधिकारी राए।
सुक के अंग हुओ उलास,
जानूं बरनन करूंगो रास ।। ११ ।।

भावार्थ :- राजा परीक्षित का अंकुर वैकुण्ठ धाम के सुख को प्राप्त करने मात्र का अधिकारी पात्र था। इसलिए वह अखण्ड रास की लीला के सुख को कैसे सहन कर सकते थे? परम पवित्र अवधूत भगवत् आत्मा श्री शुकदेवजी का मन तो अखण्ड रास लीला का वर्णन करने के लिये अत्यधिक उल्लसित था।

या समे प्रस्न कियो राजन,
सुक को जोस दियो तिन भान।
प्रस्न चूक्यो भयो अजान,
रास लीला ना बरनवी परवान ।। १२ ।।

भावार्थ :- इसी समय बीचों-बीच ही राजा परीक्षितजी ने श्री कृष्ण की गोपियों के संग हुई प्रणयमय लीला के औचित्य (सच्चाई) को लेकर प्रश्न कर दिया। उनकी शंका ने श्री शुकमुनिजी के आवेश को भंग कर दिया। प्रश्न कर देने से

राजा चूक गये और रास लीला के अखण्ड आनन्द से वंचित और अनजान रह गये। श्री शुकमुनिजी अखण्ड रास लीला का वर्णन कर ही नहीं पाये।

तब हाथ निलाटें दियो सही,
सुकें दुख पाए के कही।
मैं जोगी तें राजा भयो,
रास को सुख न जाए कह्यो ॥१३॥

भावार्थ :- तब अवधूत श्री शुकमुनिजी अपने मस्तक पर हाथ मारते हुये अत्यधिक दुःखी हुये और असह्य दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने कहा - हे राजा! अब मैं योगी और तू राजा ही रह गया। परब्रह्म का आवेश प्राप्त होने से मैं राजा होकर तुझे महारास के जिस सुख का वर्णन सुनाना चाह रहा था, अब वह कहा नहीं जा सकता।

ए बानी मेरे मुखथें ना पडे,
ना तेरे श्रवना संचरे।
ए जोग आपन नाहीं दोए,
तो इन लीला को सुख क्यों होए ॥१४॥

भावार्थ :- वह दिव्यातिदिव्य अखण्ड वाणी अब मेरे मुख से या जबान द्वारा कही नहीं जा

सकेगी और न ही तेरे कान इसे सुन पायेंगे। हम दोनों ही इस वाणी के योग्य पात्र नहीं हैं। यसर्थ इस चिन्मय लीला का सुख कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

याके पात्र होसी इन जोग,
या लीला को सो लेसी भोग।
केसरी दूध ना रहे रज मात्र,
उतम कनक बिना जो पात्र ॥१५॥

भावार्थ :- जो इस अखण्ड चिन्मय महारास लीला के अधिकारी पात्र होंगे, वे ही इस लीला के अपूर्व सुखानन्द को भोग पायेंगे। कारण जिस प्रकार केसरी सिंहनी (शेरनी) का दूध उत्तमातिउत्तम स्वच्छातिस्वच्छ सोने के पात्र के सिवाय अन्य किसी पात्र में नहीं रह सकता, वैसे ही यह ब्रह्मलीलामय महारास का सुख है।

एह बचन सुनके राए,
पड्यो भोम खाए मुरछाए।
कंपमान होए कलकले,
रोए बोहोत अंतस्करन गले ॥१६॥

भावार्थ :- श्री शुकमुनिजी के ऐसे वचन सुनकर राजा परीक्षित बड़े क्षुब्ध हो गए और वे तुरन्त ही मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। वे प्रायश्चित के कारण रोते हुए दुःख से रोमान्चित होकर काँपने लगे। वे इतना अधिक रोये कि उनका अन्तःकरण ही गलकर आँसुओं में बह गया।

तलफ तलफ दुख पावे मन,
अंग मांहें लागी अगिन।
तब सुकजीएं दिलासा दिया,
आंसू पोंछ के बैठा किया ॥१७॥

भावार्थ :- राजा परीक्षित का मन तड़प-तड़पकर अत्यधिक व्याकुल हो गया। पश्चाताप की अग्नि में जब उनका सारा शरीर धधकते हुए जलने लगा, तब दयावन्त अवधूत श्री शुकदेव मुनिजी ने उन्हें सान्त्वना दी और उनके आँसू पोंछकर उन्हें बैठाया।

सुन हो राजा द्रढ कर मन,
अंतरगत केहेता बचन।

सो केहेने वाला उठके गया,
मैं अकेला बेठा रह्या ।।१८।।

भावार्थ :- त्यागी अवधूत श्री शुकदेव मुनिजी ने कहा - हे राजन्! अपने मन को दृढ़ करके ध्यानपूर्वक सुनो! मेरी अन्तरात्मा में विराजमान होकर कोई अपूर्व शक्ति मुझसे ये वचन कहला रही थी। तेरे प्रश्न कर देने के कारण वह शक्ति मेरे अन्दर से उठकर चली गयी और मैं यहाँ अकेला ही बैठा रह गया।

अब राजा पूछत मोहे कहा,
तुझ सरीखा मैं हो रह्या।
तब परीछत चरन पकड के कहे,
स्वामी ए दाझ जिन अंगमें रहे ।।१९।।

भावार्थ :- हे राजन्! अब तुम मुझसे क्या पूछोगे? मैं भी तुम्हारे जैसा ही हो गया हूँ। तब राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव मुनि के युगल चरण पकड़कर कहा-हे स्वामी! प्रश्न कर देने से इस महारास वर्णन रूपी वाणी को न सुन पाने की असह्य दाह मेरे मन में न रहने दीजिए।

मुनीजी मैं बोहोत दुख पांउं,
एह दाझ जिन लिए जांउं।
तब भागे जोस कही पंच अध्याई,
रास बरनन ना हुओ तिन तांई ।। २० ।।

भावार्थ :- हे श्रेष्ठ मुनिवर! मैं अत्यंत ही दुःखी हूँ। कहीं यह भयंकर आग दिल में लेकर ही न मर जाऊँ। तब दयालु ऋषि शुकदेवजी ने जोश उतर जाने पर भी पाँच अध्याय कहे, किन्तु चिन्मय महारास लीला का पुनः वर्णन न किया जा सका। ये पाँच अध्याय उस चिन्मय रास लीला का वर्णन नहीं है।

ना तो पंच अध्याई क्यों कहे सुक मुन,
रासलीला अखंड बरनन।
ए लीला क्यों अधबीच रहे,
एकादस द्वादस स्कंध कहे ।। २१ ।।

भावार्थ :- अन्यथा अखण्ड महारास लीला का वर्णन अवधूत श्री शुकदेव मुनि मात्र पाँच ही अध्याय में क्यों कहते? इस अखण्ड महारास लीला अर्थात् महत्त्वपूर्ण रहस्यमयी लीला का वर्णन बीच में ही छोड़कर श्री शुकदेव मुनि

ग्यारहवें और बारहवें स्कन्ध में अन्य ज्ञानपूर्ण बातों की चर्चा कैसे करते गये?

ए रास लीला को छोड़ के सुख,
आधा लुगा न निकसे मुख।
पर ए केहेवाए धनीके जोस,
सो उतर गया बचनके रोस ॥२२॥

भावार्थ :- महारास लीला के परमानन्द को छोड़कर किसी अन्य विषय पर अर्ध शब्द भी श्री शुकदेव मुनि न कह पाते। अखण्ड महारास लीला का वर्णन परब्रह्म स्वामी के आवेश से कहा जा रहा था। किन्तु राजा परीक्षित के अयोग्य प्रश्न को सुनकर उनके क्षुब्ध हो जाने के कारण वह आवेश उतर गया।

क्या करे अधबीचमें लिया,
अखंड सुख पूरा केहेने ना दिया।
दोष नहीं राजा को इत,
ब्रह्मसृष्टि बिना ना पाहोंचे तित ॥२३॥

भावार्थ :- अरे ! वे बिचारे शुकदेव मुनि भी क्या करते ! वे श्री रास का अधूरा सुख ही ले पाये। राजा परीक्षित ने उसे पूरा करने ही नहीं

दिया। परन्तु राजा परीक्षित का भी क्या दोष? ब्रह्मात्माओं के बिना उस महारास के अखण्ड लीला विलास में कोई अन्य पहुँच ही नहीं सकता।

जाको जाना बैकुंठ वास,
सो क्यों सहे अखंड प्रकास।
तो पार दरवाजे मूंदे रहे,
हद के संगी खोलने ना दिए।।२४।।

भावार्थ :- जिन जीवों का वास वैकुण्ठ धाम में ही होना पूर्व निश्चित है, वे जीव परब्रह्म के अखण्ड महारास लीला विलास को कैसे सहन कर सकते हैं? यसर्थ पार बेहद धाम की लीला में पहुँचने का द्वार बंद ही रह गया। श्री शुकदेवजी के इह लोक के साथी ने उन्हें खोलने नहीं दिया।

अब सुकजीके केती कहूं बान,
सार काढने ग्रह्यो पुरान।
सबको सार कह्यो ए जो रास,
ए जो इन्द्रावती मुख हुओ प्रकास।।२५।।

भावार्थ :- अवधूत श्री शुकदेवजी की वाणी की अब मैं कितनी चर्चा करूँ? समस्त शास्त्र

ग्रन्थों का सार उनके श्रीमद्भागवत पुराण में है। उस भागवत ग्रन्थ का सार यह रास लीला कही गयी, जिसका प्रकाश एवम् विस्तार रूप में वर्णन श्री इन्द्रावती के मुखारविंद से श्री कुलजम स्वरूप के प्रथम ग्रन्थ श्री रास के माध्यम से हुआ।

अब कहूं इन रासको सार,
जो तारतम बचन है निरधार।
तारतम सार जागनी बिचार,
सबको अरथ करसी निरवार॥ २६ ॥

भावार्थ :- अरे! जिस प्रकार श्रीमद्भागवत का सार रास पञ्चाध्यायी है और उसका स्पष्टीकरण "श्री रास ग्रन्थ" के माध्यम से हुआ। उसी प्रकार 'श्री रास' का सार तारतम मंत्र की छः चौपाइयों में है। तारतम मंत्र आत्म-जागृति तथा जागनी के साथ-साथ सम्पूर्ण आप्तपुरुषों के धर्मग्रन्थों की भूमिका अकाट्य रूपेण निश्चित करके सबके प्रति निश्चित अविकल्प मत देता है। तारतम सम्पूर्ण धर्म ग्रन्थों के गुह्यातिगुह्य गूढ़ार्थ स्पष्ट करने में सामर्थ्य-शाली कुंजी है। इसी का नाम "सनाखत कुंजी" है।

निराकार के पार के पार,
तारतम को जागनी भयो सार।
अक्षर पार घर अक्षरातीत,
धामके यामें सबे चरित ॥२७॥

भावार्थ :- यह तारतम ज्ञान क्षर जगत् के पार शून्य, निराकार आदि से परे, अक्षर ब्रह्म से भी आगे का सार *'सा काष्ठा सा परागतिः'* रूपी ब्रह्म तत्त्व बताकर आत्मा की जागृति करता है। कूटस्थ अक्षर धाम के भी पार स्थित अक्षरातीत धाम की यावत् लीलाओं का वर्णन तारतम वाणी में है।

इत ब्रह्मलीला को बडो विस्तार,
या मुखथें कहा कहूं प्रकार।
ए तारतम को बडो उजास,
धनी आएके कियो प्रकास ॥२८॥

भावार्थ :- अक्षरातीत परमधाम में होनेवाली परब्रह्म लीला का विस्तार बेशुमार है। इस मुख-जबान से उस ब्रह्मलीला का कितना और किस तरह वर्णन करूँ? इस तारतम की ज्योति का बड़ा भारी तेज है, जिसे श्यामावतार श्री सद्गुरु स्वरूप ने वहाँ से यहाँ आकर प्रकट एवम् प्रकाशित किया है।

संसे काहूं ना रेहेवे कोए,
ए उजाला त्रैलोकी में होए।
प्रगट भई पर आतमा,
सो सबको साख देवे आतमा ॥२९॥

भावार्थ :- त्रिलोक अर्थात् मृत्युलोक, नीचे पाताल और ऊर्ध्व वैकुण्ठ में तारतम ज्ञानरूपी उजाले के फैल जाने से किसी के भी मन में किसी भी प्रकार के कोई संशय नहीं रह जायेंगे। अतः जब परब्रह्म धाम मूल मिलावे में विराजमान परात्म का स्वरूप प्रकट होगा, तो सबकी आत्माएँ सज्ञानी होकर इसकी साक्षी देंगी।

उड्यो अंधेर काढयो बिकार,
निरमल सब होसी संसार।
ए प्रकास ले धनी आए इत,
साथ लीजो तुम मांहें चित ॥३०॥

भावार्थ :- इस तारतम ज्ञान के तेज के समक्ष अज्ञानान्धकार कपूर की तरह उड़ जायेगा (गया है)। मन के सारे कलिमलरूपी (पापरूपी) विकार छूट जाने से समस्त संसार निर्मल-पवित्र

हो जायेगा। श्यामाजी अवतार सद्गुरु स्वामी तारतम का यह प्रकाश लेकर आये हैं। हे मेरी धामस्थ आत्माओं! इसे तुम श्रद्धा-विश्वास के साथ चित्त में ग्रहण करो।

इन घर बुलावें ए धनी,
ब्रह्मसृष्टि जो हैं अपनी।
खेल किया सो तुम कारन,
ए बिचार देखो प्रकास बचन ।। ३१ ।।

भावार्थ :- अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा स्वामी श्री राजजी अपनी आत्माओं को वापस अपने घर परमधाम में प्रेमपूर्वक बुला रहे हैं। अरे! आप सब ब्रह्मात्माओं के लिए ही उन्होंने इस जगत् नाटक, नश्वर गुणयुक्त ब्रह्माण्ड की रचना करवाई है। आप सब "श्री प्रकाश ग्रन्थ" के वचनों को अच्छी तरह विचार-विवेकवत् देखो!!

देख्यो खेल मिल्यो सब साथ,
जागनी रास बडो विलास।
खेलते हंसते चले वतन,
धनी साथ सब होए परसन ।। ३२ ।।

भावार्थ :- यह नश्वर क्षणभङ्गुर जगन्नाटक-

रूपी खेल को देखकर तीनों जमात के सुन्दरसाथ पन्ना धाम में एकत्र हुए हैं। जागनी रास में अधिकाधिक और उत्तमातिउत्तम बड़ा भारी सुख विहार है। आत्मा-जागृति की इस जागनी लीला में से हँसते, खेलते और नाचते हुए हम अक्षरातीत परमधाम चलें, जहाँ प्रियतम परमात्मा श्री राजजी और ब्रह्मात्माएँ पुनः मिलकर निजानन्द में आनन्दित हों।

इतहीं बैठे जागे घर धाम,
पूरन मनोरथ हुए सब काम।
उड्यो अग्यान सबों खुली नजर,
उठ बैठे सब घर के घर ।। ३३ ।।

भावार्थ :- यहीं इस नश्वर क्षणभङ्गुर संसार के बीच में इसी पञ्चभौतिक तन में बैठे-बैठे ही अपने मूल घर-अक्षरातीत परमधाम में, अपने परात्मा स्वरूप में जागें, तो मन की सभी इच्छा-कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। सम्पूर्ण ब्रह्मात्माओं का अज्ञान निर्मूल होकर मिट गया। उनकी आत्म-दृष्टि खुल गई और वे सब अपने वास्तविक मूल घर-परमधाम में अपनी परात्मा में केन्द्रित हो गई, जहाँ वे आदिकाल से सदैव विद्यमान हैं।

हांसी ना रहे पकरी,
धनिएं जो साथ पर करी।
हंसते ताली देकर उठे,
धनी महामत साथ एकठे॥ ३४॥

भावार्थ :- अरे सखियों! हमारे विनोद सम्राट प्रियतम ने उनकी अपनी अंगनाओं से यानी हमसे जो हँसी-मजाक किया था, उसे जागनी के ब्रह्माण्ड में आकर तारतम द्वारा समझा तो गया, परन्तु पकड़ा नहीं जा सका। यहाँ से खिलखिलाकर हँसते हुए, ताली देकर सभी सुन्दरसाथ महामति (इन्द्रावती) अथवा प्रियतम प्राणनाथ स्वामी के संग मिलकर अपने धाम में उठ खड़े हुए - होंगे।

-(श्री प्रकाश हिन्दी, प्र. ३३/ चौ. ३४) ।

- पुराना किरंतन और भागवत का सार समाप्त ।

नोट :-

यशवन्ती कहे मेरे श्रद्धा सुमन साथजी !

आपश्री घर में ही बैठे-बैठे,

जरूर यह मनन करनाजी ।

मनन करके प्रेम धरके,

शीघ्र ही परमधाम आनाजी ।।

यशवन्ती सखी कहे............

- प्रणाम

आह्वान

↓

निसदिन रंग मोहोलन में, साथ स्यामाजी स्याम ।

याद करो सुख सबों अंगों, जो करते आठों जाम ।।

- (परिक्रमा, प्र.४/चौ.५) ।

अर्थः- हे मेरे धामस्थ सुन्दरसाथजी !

हम सब अक्षरातीत ब्रह्मधाम-श्री रंगमहल में रात - दिन श्री श्यामश्यामाजी के साथ कैसे रहा करती थीं ? अपने अंग - प्रत्यंग से उन सुखों को याद करो, जिन्हें हम आठों पहर - चौबीसों घण्टों की लीलाओं द्वारा निरंतर प्राप्त किया करतीं थीं ! इतना तो करो !!

- भाष्यकार

- श्री राज -

श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चे. ट्रस्ट तथा
श्री प्राणनाथ महिला मंडल (रजि.) बोरीवली, मुंबई

का ई. स. १९९८ से २०१४ तक का प्रकाशन -

१.	विवरण पत्रको समीक्षा	-	नेपाली
२.	विवरण पत्र की समीक्षा	-	हिन्दी
३.	मोहजलको पाँच प्रकरण	-	नेपाली
४.	समीक्षा- संसार और मेरा भर्तार की	-	हिन्दी
५.	समीक्षा- संसार और मेरा भर्तारनी	-	गुजराती
६.	Samiksha - A reply to Sansar Aur Mera Bhartar	-	English
७.	संसार और मेरा भर्तार की समीक्षा का 'उपसंहार'	-	हिन्दी
८.	संसार और मेरा भर्तारनी समीक्षाना 'उपसंहार'	-	गुजराती
९.	विराट विज्ञान दर्पण	-	हिन्दी
१०.	विराट विज्ञान दर्पण	-	गुजराती
११.	अपना धाम दर्शन (दीनदयालकृत मझली वृत्त)	-	हिन्दी
१२.	आपणुं घर परमधाम (दीनदयालकृत वचली वृत्त)	-	गुजराती
१३.	आफ्नै घरको वर्णन (दीनदयालकृत नेपाली वृत्त)	-	नेपाली
१४.	चर्चनी के प्रश्नोत्तर (दीनदयालकृत)	-	हिन्दी
१५.	चर्चनीना सवाल - जवाब (दीनदयालकृत)	-	गुजराती
१६.	विराट विज्ञान दर्पण के सवाल-जवाब (दीनदयालकृत)	-	हिन्दी

१७. विराट विज्ञान दर्पणना प्रश्नोत्तर
(दीनदयालकृत) - गुजराती
१८. अष्टादशोऽध्यायः (कुलजम स्वरूप साहेब के)- हिन्दी
१९. अष्टादशोऽध्यायः (" " " ") - गुजराती
२०. अष्टादशोऽध्यायः (" " " ") - नेपाली
२१. पञ्चरोशनी (" " " ") - हिन्दी
२२. पंचरोशनी (" " " ") - गुजराती
२३. पञ्चरोशनी (" " " ") - नेपाली
२४. त्रिरंगी बोध (" " " ") - हिन्दी
२५. त्रिरंगी ज्ञान (" " " ") - गुजराती
२६. द्वादश प्रकाश (कुलजम स्वरूप साहेब के) - हिन्दी
२७. द्वादश प्रकाश (" " " ") - गुजराती
२८. मेहेर सागर - नित्य पाठ (" ") - हिन्दी
२९. मेहेर सागर - नित्य पाठ (" ") - गुजराती
३०. सेवा पूजा (दैनिक) - हिन्दी
३१. सेवा पूजा (दैनिक) - गुजराती
३२. चर्चनी पट दर्शन -
३३. अभिनन्दन ग्रंथ (१०८ श्री दीनदयालजी
महाराज हीरक जयन्ती) - हिन्दी
३४. सेवा - पूजा (अर्थ सहित) - गुजराती
३५. अष्ट प्रहर सेवा-पूजा (अर्थ सहित) - गुजराती
३६. स्वामी श्री लालदासजी महाराज प्रणीत
बीतक साहेब के श्री दीनदयालकृत - हिन्दी
- सवाल जवाब ३ खण्डों में
१. पूर्वांश - प्रथम खण्ड - मजल शुरूआत से सूरत पर्यन्त
२. मध्यांश -द्वितीय खण्ड - मजल सूरत से उदयपुर पर्यन्त

३. उत्तरांश - तृतीय खण्ड - मजल मंदसोर से बीतक समाप्ति

३७. स्वामी श्री लालदासजी महाराज प्रणीत

बीतक साहेबना श्री दीनदयालकृत - गुजराती

- प्रश्नोत्तर ३ खण्डोमां

१. पूर्वांश - प्रथम खण्ड - मजल शरूआतथी सूरत पर्यन्त

२. मध्यांश - द्वितीय खण्ड - मजल सूरतथी उदयपुर पर्यन्त

३. उत्तरांश - तृतीय खण्ड - मजल मंदसोरथी बीतक समाप्ति

३८. श्री प्राणनाथजी प्रणीत कुलजम स्वरूप साहेब अंतर्गत स्थित श्री किरंतन और श्री प्रकाश ग्रंथ के 'पुराना किरंतन' और 'भागवत का सार' - हिन्दी

३९. श्री प्राणनाथजी प्रणीत कुलजम स्वरूप साहेब अंतर्गत स्थित श्री किरंतन अने श्री प्रकाश ग्रंथना 'पुराना किरंतन' अने 'भागवत नो सार' - गुजराती

❖ प्रणाम ❖